Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हिन्दू विवाह मीमांसा

लेखक :
डॉ० प्रीति प्रभा गोयल

प्रकाशक :
राजस्थानी ग्रन्थागार
सोजती गेट के बाहर, जोधपुर (राज०)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लेखिका परिचय

डॉ० प्रीति प्रभा गोयल का जन्म एवं शिक्षा लखनऊ में हुई। एम०ए० (संस्कृत) की शिक्षा ज्ञानपुर महाविद्यालय (वाराणसी) में हुई और १९५८ की परीक्षा में आगरा विश्वविद्यालय से फर्स्ट क्लास फर्स्ट उत्तीर्ण हुई। सन् १९६१ में विवाहोपरान्त जोधपुर आईं एवं १९६३ से जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापिका पद पर कार्यरत हैं। १९७१ में जोधपुर विश्वविद्यालय से 'संस्कृतसाहित्यान्तर्गत विवाह संस्कार' नामक शोधकार्य पर डॉ० ऑफ फिलासफी की उपाधि मिली। यही शोधप्रबन्ध अपने परिवर्धित एवं संशोधित रूप में 'हिन्दू विवाह मीमांसा' नाम मे प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व लेखिका की एक और पुस्तक 'दूत-वाक्यम्—व्याख्या सहित' प्रकाशित हो चुकी है।

सम्प्रति, लेखिका 'राजस्थान की विभिन्न मुख्य जातियों में विवाह का बदलता स्वरूप' विषय पर कार्य कर रही हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हिन्दू विवाह मीमांसा

लेखक :

डॉ० प्रीति प्रभा गोयल

BHARATIYA BOOK CORPORATION
1-U.B., JAWAHAR NAGAR, BUNGALOW ROAD
DELHI-7

प्रकाशक :

राजस्थानी ग्रन्थागार

सोजती गेट के बाहर, जोधपुर (राज०)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकाशक :

राजस्थानी ग्रन्थागार

पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता,

सोजती गेट के बाहर, जोधपुर

सर्वाधिकार : **डॉ० प्रीति प्रभा गोयल**

5408

संस्करण : 1982

मूल्य : पचास रुपया मात्र

मुद्रक :

साधना प्रेस

हाईकोर्ट रोड़,

जोधपुर.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राक्कथन

जोधपुर विश्वविद्यालय में 'संस्कृतसाहित्यान्तर्गत विवाह संस्कार' नामक शोध-प्रबन्ध पर श्रीमती प्रीति प्रभा गोयल को डॉक्टर ग्रॉफ फिलासफी को उपाधि प्रदान की थी। इसी शोध-प्रबन्ध का परिवर्धित रूप अब 'हिन्दू विवाह मीमांसा' के नाम से प्रकाशित हो रहा है। मैंने इस पुस्तक को स्थाली पुलाकन्याय से अच्छी तरह देखा है और मुझे इसको विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त ही प्रसन्नता है। इसमें श्रीमती गोयल ने हिन्दू विवाह की प्रामाणिक मीमांसा प्रस्तुत की है।

अन्य अधिकारी विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों में हिन्दू विवाह की पर्याप्त चर्चा की है। इस सम्बन्ध में जी० बैनर्जी का The Hindu Law of Marriage and Stridhana, 1986; अल्फ्रेड हिलब्रैण्ड का Ritual—Literature Vedische Opfer und Zauber, 1897; श्री पी० टी० एस० ग्रायन्गर का Life in Ancient India, 1912; डॉ० ए० एस० अल्तेकर का The position of women in Hindu Civilization, 1938; डॉ० बी० एम० ग्राप्टे का Social and religious Life in Grhya Sutras, 1939; डॉ० राजबली पाण्डेय का Hindu Sanskara, 1949; डॉ० रामगोपाल का India of Vedic Kalpa Sutras, 1959 तथा डॉ० वेदमित्र का Happy Married Life in Ancient India, 1969 उल्लेखनीय है।

यह सर्वविदित है कि वैदिक धर्म का मूल स्वरूप यज्ञ प्रधान था। वैदिक धर्म के अनुसार लौकिक तथा पारलौकिक सभी कामनाओं की पूर्ति यज्ञ सम्पादन द्वारा सम्पन्न होती थी। आर्यों और द्रविड़ों के सम्मिलित प्रयास से जब एक विशाल भारतीय संस्कृति का निर्माण प्रारम्भ हुआ उस समय भारत में रहने वाली भिन्न-भिन्न जातियों में विभिन्न रीति-रिवाज तथा विवाह-परम्पराएँ प्रचलित थीं। आर्यों ने आर्य संस्कृति के विस्तार के लिए समन्वय की एक विशिष्ट नीति घोषित की; कि कोई भी जैसे चाहे विवाह कर ले किन्तु उस विवाह को सामाजिक मान्यता तभी मिलेगी जब वर एवं वधू वैदिक विधि-विधान के अनुकूल अग्नि की साक्षी में पाणिग्रहण, सप्तपदी आदि करेंगे। धीरे धीरे कालक्रम से हिन्दू विवाह में अनेक परम्पराएँ तथा स्थानीय रीति-रिवाज सम्मिलित होते गए और उनके वैदिक तथा अवैदिक स्वरूप को पहिचानना प्रायः कठिन होता गया। श्रीमती गोयल ने इन समस्त विवाह प्रकारों का बहुत ही रोचक तथा शास्त्रीय विवेचन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीमती गोयल ने वेद-वेदाङ्ग तथा स्मृति ग्रन्थों के आधार पर सामाजिक तथा ऐतिहासिक परिवेश में हिन्दू विवाह संस्कार का नए ढंग से सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत किया है। आठ प्रकार के विवाहों की परम्परा के मूल तथा कालक्रम का

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विचार करते हुए स्वयंवर पद्धति, वर-वधू की आयु, विधि निषेधात्मक चयन प्रणाली. वर-वधू के गुण-अवगुण की समीक्षा, वैदिक परम्परा से विवाह पद्धति. विवाह-विच्छेद, पुनर्विवाह तथा नियोग आदि सभी विषयों का बहुत अच्छा विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है।

संस्कृत शोध के क्षेत्र में मूल्यवान् योगदान करने के लिए मैं श्रीमती प्रीति प्रभा गोयल का अभिनन्दन करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ विद्वान् पाठकों को सन्तोष करेगा और नई पीढ़ी के शोधार्थियों का उत्साह बढ़ाएगा। पाद टिप्पणी में उल्लेख ग्रन्थों की विस्तृत संख्या श्रीमती गोयल के संस्कृत साहित्य तथा वैदिक साहित्य के पाण्डित्य और उनकी आधुनिक शोध पद्धति के गहरे परिचय को प्रमाणित करती है। आशा है, संस्कृत, समाजशास्त्र, इतिहास तथा विधिशास्त्र के विद्वान् इस ग्रन्थ का स्वागत करेंगे।

—रसिक बिहारी जोशी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक मूलतः मेरा शोध प्रबन्ध रही है। यह शोध मैंने संस्कृत साहित्यान्तर्गत विवाह सस्कार' शीर्षक से की थी। पुस्तक रूप में प्रकाशित होते समय इसमें अधिक परिवर्तन नहीं किए गए हैं। किन्तु अन्त में एक नवीन अध्याय—पति एवं पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध—अवश्य जोड़ा गया है जो शोध प्रबन्ध में नहीं था।

मेरे शोध-कार्य के प्रकाशन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली से मुझे 3000) रु. की अनुदान राशि स्वीकृत हुई। इस उदारता के लिए मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ। इस पुस्तक के विभिन्न तर्कों, निर्णयों एवं अन्य सिद्धान्तों के प्रगटोकरण के लिए केवल मैं ही पूर्णतया उत्तरदायी हूँ। इसके लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् के ऊपर किसी भी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं है।

संस्कृत साहित्य में प्राप्त विवाह के विभिन्न पक्षों से सम्बद्ध सामग्री का विश्लेषण, विवेचन एवं प्रस्तुतीकरण ही इस पुस्तक का उद्देश्य है। इससे पूर्व विभिन्न विद्वानों ने संस्कृत साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों अथवा ग्रन्थ समूहों और हिन्दू समाज में स्त्री के स्थान का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। समाजशास्त्र के कुछ मनीषियों ने भारत में विवाह एवं परिवार पर कार्य करके वर्तमान स्थिति तक विवेचन किया है। किन्तु एक तो उन विद्वानों की दृष्टि एकान्तिक—ऐतिहासिक या सामाजिक—रही; दूसरे विवाह का क्या स्वरूप रहा; किस प्रकार उसका रूप विकसित हुआ और परिवर्तित होते-होते किस रूप में परिणत हुआ; विवाह की आवश्यकता ही क्या थी— आदि प्रश्नों का अध्ययन केवल संस्कृत साहित्य के आधार पर किसी ने नहीं किया। प्रस्तुत पुस्तक में ऋग्वेद से लेकर स्मृतियों तक के संस्कृत साहित्य में प्राप्त सामग्री का ही विवेचन किया गया है। इस काल में भी वेद, ब्राह्मण, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा स्मृतियों के साथ-साथ आर्ष काव्यों रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत तथा अन्य प्रमुख लौकिक काव्यों एवं नाटकों को आधार बनाया गया है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में जिन भी पुस्तको एवं सन्दर्भ ग्रन्थों की सहायता ली गई उन सबके विद्वान् लेखकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

अपने शोधकार्य एवं प्रकाशन के समय मुझे विभिन्न स्रोतों से प्रेरणा एवं सहायता मिली। परमादरणीय गुरुवर्य डॉ. सुधीर कुमार गुप्त (प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय) की मैं चिरऋणी हूँ जिनके निर्देशन में मैं अपना शोधकार्य पूर्ण कर सकी। उन्होंने अग्रज का स्नेह देकर मुझे सम्मानित किया है। प्रोफेसर डी. एन. एलहान्स (प्रोफेसर एवं डीन, वाणिज्य संकाय, जोधपुर विश्वविद्यालय) एवं डॉ. एस. के. लाल (रीडर, समाजशास्त्र विभगा, जोधपुर विश्वविद्यालय) की निरन्तर प्रेरणा और एवं दिशा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निर्देश के अभाव में यह प्रकाशन सम्भव ही नहीं था। डॉ. रसिक बिहारी जोशी (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय) ने इस पुस्तक की संक्षिप्त एवं सारगर्भिक भूमिका लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है। डॉ० महावीरसिंह गहलोत (हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय) की मैं चिर कृतज्ञ रहूँगी जिनके विशाल पुस्तकागार का मैंने यथेच्छ उपयोग किया एवं जिनके अमूल्य सुझावों से मेरा कार्य सुगम बना।

मेरे शोध छात्र श्री बी. आर. विश्नोई मेरे साधुवाद और प्रशंसा के चरम पात्र हैं। पुस्तक के प्रूफ देखने एवं सन्दर्भ सूची बनाने में उन्होंने अथक परिश्रम किया। साधना प्रेस के व्यवस्थापक श्री लालचन्द गुप्ता को अनेकशः धन्यवाद; जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में यथा सम्भव सहायता की।

परिवार एवं विवाह, पति एवं पत्नी—यही मेरी पुस्तक के विषय हैं। इस समस्त कार्य में मेरे पति श्री एस. के. गोयल का कितना लक्ष्य-अलक्ष्य योगदान रहा, इसको सम्पूर्णतया आंक सकना मेरे लिए सम्भव ही नहीं। फिर भी उन्हें धन्यवाद देने या उनका कृतज्ञ होने का मेरे पास कोई अवसर नहीं क्योंकि अपने पति से अलग मैं हूं ही कहाँ ?

अस्तु, यह पुस्तक अब आप सबके समक्ष है, आशा है सभी प्रकार के पाठकों को यह सन्तोष दे सकेगी।

—प्रीति प्रभा गोयल

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संकेत सारिणी

अ०	अत्रि	प०	पराशर
अ०वे०	अथर्ववेद	पा०	पारस्कर
अभि०शा०	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	बृहदा०	बृहदारण्यक उपनिषद्
आप०	आपस्तम्ब	बृह०	बृहद्देवता
आ०	आश्वलायन	बौ०	बौधायन
आ०	आरण्यक	ब्रा०	ब्राह्मण
उ०रा०	उत्तररामचरितम्	भा०	भारद्वाज
उप०	उपनिषद्	म०	मनु
ऋ०वे०	ऋग्वेद	मा०	मानव
एस०बी०ई०	सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट	मा०मा०	मालती माधव
ऐ०	ऐतरेय	य०वे०	यजुर्वेद
का०सू०	कामसूत्र	या०	याज्ञवल्क्य
कु०स०	कुमारसम्भव	लौ०	लौगाक्षि
कौ०अर्थ०	कौटिल्य अर्थशास्त्र	व०	वसिष्ठ
कौ०	कौषीतकी	वा०रा०	वाल्मीकि रामायण
खा०	खादिर	वि०	विष्णु
गृ०	गृह्यसूत्र	वि०पु०	विष्णु पुराण
गो०	गोपथ	वी०मि०सं०प्र०	वीर मित्रोदय संस्कार प्रकाश
गो०	गोभिल	व्या०	व्यास
गौ०	गौतम	शत०	शतपथ
छा०	छान्दोग्य	शं०	शंख
जै०	जैमिनी	शा०	शातातप
ता०	ताण्ड्य	शां०	शांखायन
तै०	तैत्तिरीय	सं०	संहिता
द०	दक्ष	स्मृ०	स्मृति
ध०	धर्मसूत्र	स्मृ०च०	स्मृति चन्द्रिका
ना०	नारद		
नै०च०	नैषधीय चरित	हि०	हिरण्यकेशी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय : गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता 1-12

चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता : चारों आश्रमों के विभिन्न मत-1, ऋग्वेद में गृहस्थाश्रम का महत्त्वगान-3, महाकाव्यों आदि में गृहस्थाश्रम का महत्त्व-3, गृहस्थाश्रम के महत्त्व के कारण : सन्तति लाभ-6, पंचयज्ञ-7, कामतृप्ति एवं अर्थोपार्जन-11.

द्वितीय अध्याय : विवाह का प्रारम्भ, आवश्यकता, स्वरूप एवं प्रयोजन 12-38

विवाह की आद्यावस्था अथवा प्रारम्भ-15, विवाह की आवश्यकता एवं अनिवार्यता-21, विवाह की परिभाषा-24, विवाह एक धार्मिक संस्कार है-25, विवाह प्रयोजन : धर्म-28, पुत्र प्राप्ति : प्रजा-30, रति-35.

तृतीय अध्याय : विवाह के प्रकार 39-70

वेदों तथा गृह्यसूत्रों में विवाह-41, ब्राह्म विवाह-42, दैव विवाह-43, प्राजापत्य विवाह-45, आर्ष विवाह-49, राक्षस विवाह-50, आसुर विवाह-53, गान्धर्व विवाह-56, पैशाच विवाह-60, विवाह प्रकार विवेचन-61, ऐतिहासिक कालक्रम-63, स्वयंवर-66.

चतुर्थ अध्याय : विवाह में चयन एवं विधि-निषेध 71-90

बहिर्विवाह-73, सगोत्र विवाह निषेध-75, सप्रवर विवाह निषेध-78, सपिण्ड विवाह निषेध-81, अन्तर्विवाह-84, अनुलोम विवाह-85, प्रतिलोम विवाह-88.

पञ्चम अध्याय : विवाह में वर-वधू की आयु 91-108

वैदिक साहित्य में विवाह की आयु-94, सूत्रों एवं स्मृतियों में विवाह की आयु-98, रामायण एवं महाभारत में विवाह की आयु-101, काव्यों तथा नाटकों में विवाह की आयु-103, कन्या की विवाह आयु कम होने के कारण-105.

षष्ठ अध्याय : वर एवं वधू के गुण तथा अवगुण 109-128

वर के गुण-111, वर के अवगुण-114, वधू के गुण-116, वधू के अवगुण-123.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सप्तम अध्याय : विवाह विधि १२६-१५८

ऋग्वेद में विवाह विधि-१३१, अथर्ववेद में विवाह विधि-१३४, गृह्यसूत्रों में विवाह विधि : विस्तार एवं विभिन्नता के कारण-१३६, गृह्यसूत्रों में विवाह विधि का स्वरूप एवं विभिन्न कृत्य-१३७.

अष्टम अध्याय : विवाह विच्छेद, पुनर्विवाह एवं बहु विवाह १५६-१७२

विवाह विच्छेद-१५६, पुरुष का पुनर्विवाह एवं बहु विवाह-१६५, स्त्री का पुनर्विवाह-१६७.

नवम अध्याय : नियोग १७३-१८८

विवाह एवं नियोग का सम्बन्ध-१७५, उद्देश्य एवं आधार-१७६, नियोग के लिए उपयुक्त पुरुष : देवर, सपिण्ड, सगोत्र-१७८, ब्राह्मण-१८०, देवता-१८१, नियोग सम्पन्न करने के नियम-१८१, नियोग से उत्पन्न पुत्र-१८४, उत्पन्न पुत्र पति का है-१८४, उत्पन्न पुत्र नियुक्त पुरुष का है-१८५, उत्पन्न पुत्र दोनों का है-१८६, नियोग की निन्दा एवं क्रमशः ह्रास-१८६, निषेध के कारण-१८७,

दशम अध्याय : पति एवं पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध १८६-२००

अविच्छेद्यत्व-१९२, अन्योन्याश्रय सम्बन्ध-१९४, अनुराग एवं सौहार्द्र्य-१९७,

उपसंहार २०१-२०२

परिशिष्ट 'अ' : विभिन्न गृह्यसूत्रों में विवाह विधि के क्रमबद्ध कृत्यों की तालिका २०३-२०६

परिशिष्ट 'ब' : वैवाहिक होम में आज्याहुति एवं महाव्याहृति २०७

पुस्तक सूची २०८-२११

सन्दर्भ अनुक्रमणिका २१२-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रथम अध्याय

गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता

चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता
चारों आश्रमों के विभिन्न मत
ऋग्वेद में गृहस्थाश्रम का महत्त्वगान
महाकाव्यों आदि में गृहस्थाश्रम का महत्त्व
गृहस्थाश्रम के महत्व के कारण

- सन्तति लाभ
- पञ्च यज्ञ
- कामतृप्ति एवं अर्थोपार्जन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता

चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता :

भारतीय विचारकों एवं मनीषियों ने व्यक्ति एवं समाज के उदात्त स्वरूप के लिए चार पुरुषार्थों का विधान किया था। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इस चतुर्वर्ग की प्राप्ति ही मनुष्य के जीवन का प्राप्तव्य लक्ष्य था। इस चतुर्वर्ग में से भी मोक्ष प्राप्ति तो स्थूल देहान्त के उपरान्त ही होती थी, अतः जीवन में धर्म, अर्थ और काम का परस्पर समन्वित पालन ही मनुष्य का उद्देश्य कहा गया है। मरणोपरान्त मोक्ष-प्राप्ति के लिए मनुष्य को धर्म का आचरण आवश्यक था और ऋषियों ने धर्मपालन के लिए स्त्री और पुरुष-पत्नी और पति – दोनों को समान और संयुक्त रूप से उत्तरदायी माना, अतः गृहस्थाश्रम का स्थान संस्कृत साहित्य में बहुत श्रेष्ठ हो गया।

चतुर्वर्ग पुरुषार्थ की साधना के लिए एवं जीवन के सतत सौख्य के लिए चार आश्रमों की स्थापना की गई थी। धर्म को सर्वोत्तम पुरुषार्थ मानने के फलस्वरूप भारतीय ऋषियों द्वारा स्थापित चार आश्रमों में से तीन आश्रम – ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास – धर्म की साधना के ही साधन रूप बन गए। केवल गृहस्थाश्रम ही एक ऐसा आश्रम था जिसमें मनुष्य अपनी स्वभाविक काम प्रवृत्ति की सन्तुष्टि और अर्थोपार्जन के कार्यों को पूर्ण कर सकता था।

चारों आश्रमों के विभिन्न मत :

चारों आश्रमों के सम्बन्ध में धर्मसूत्रों, स्मृतियों एवं महाभारत आदि में तीन प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। महाभारत में इन तीन भिन्न मतों के सम्बन्ध में नामनिर्देश नहीं है किन्तु इन विभिन्न मतों का प्रतिपादन करने वाले धर्मसूत्रों अथवा स्मृतियों ने इनका नाम निर्देश किया है।

(i) समुच्चयवाद
(ii) विकल्पवाद
(iii) बन्धवाद या बाधवाद

समुच्चयवादियों के अनुसार प्रत्येक आश्रम का अनुसरण क्रमपूर्वक होना चाहिए[1]। ऐसा नहीं है कि ब्रह्मचर्य के बाद वानप्रस्थ आश्रम हो और फिर गृहस्थ आश्रम हो। आश्रमों के क्रम को भङ्ग करने वाला क्षण भर भी द्विज नहीं रहता–उसे प्रायश्चित करना पड़ता है।[2] ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास–यह क्रम ही अनुसरण योग्य है। मनु ने इस समुच्चयवाद का प्रबल समर्थन किया

---

१. द०स्मृ० १.९.१० यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः।
न यतिर्न वनस्थश्च स सर्वाश्रमवर्जितः॥

२. द०स्मृ० १.१०. आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है ।[१] महाभारत ने एक स्थल पर इसी क्रम का अनुसरण करते हुए व्यवस्था दी है कि 'गुरू से अनुमति पाया हुआ शिष्य समावर्तन करे और अनुरूप भार्या को यथाविधि ग्रहण करे ।'[२]

विकल्पवादियों के अनुसार मनुष्य ब्रह्मचर्य के उपरान्त अपनी इच्छानुसार किसी भी आश्रम को ग्रहण कर सकता है । यह आवश्यक नहीं है कि वह ब्रह्मचर्य के उपरान्त गृहस्थ धर्म का अवलम्बन करे । इसका समर्थन आपस्तम्ब, वसिष्ठ एवं याज्ञवल्क्य आदि ने किया है ।[३]

गौतम तथा बौधायन जैसे प्राचीन धर्मसूत्रकारों ने बन्ध या बाध नामक तृतीयवाद का समर्थन करते हुए केवल गृहस्थाश्रम को ही एकमात्र सेवन योग्य आश्रम माना है ।[४] ब्रह्मचर्य तो गृहस्थाश्रम की तैयारी मात्र है । गौतम धर्मसूत्र के व्याख्याकार हरदत्त ने मिताक्षरा टीका में स्पष्ट लिखा कि 'जो गृहस्थाश्रम का पालन करने में अशक्त हैं. उन्हीं के लिए अन्य आश्रमों का विधान है ।'[५] महाभारत के अनुशासनपर्व एवं शान्ति पर्व में स्थल-स्थल पर गृहस्थाश्रम की बहुमुखी प्रशंसा है जिसमें 'गृहस्थः प्रवरस्तेषां' की ध्वनि ही गूंजती है । गृहस्थधर्म का उचित पालन कर लेने वाले लोग प्रजापति, बृहस्पति अथवा इन्द्र के लोक की उत्तम गति को प्राप्त होते बताए गए हैं ।[६]

जीवनक्रम में गृहस्थाश्रम दूसरा आश्रम है । संस्कृत साहित्य में आदि से लेकर अब तक गृहस्थाश्रम के महत्त्व और उसकी सर्वोत्कृष्टता का बहुमुखी वर्णन और प्रशस्ति गान है । गृहस्थाश्रम की इस उच्चता के मूल में इस आश्रम का सामाजिक मूल्य ही कारण है । अन्य आश्रमों में प्रमुखतः मनुष्य के व्यक्तिगत उत्थान पर ही बल दिया गया है किन्तु गृहस्थाश्रम में सामाजिक कल्याण, सृजन एवं विकास की योजना है । संस्कृत साहित्य के किसी भी चरण में, विकास के किसी भी सोपान में गृहस्थाश्रम सर्वाधिक प्रशंसनीय आश्रम के रूप में प्राप्त होता है । व्यक्ति का समाज से सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध गृहस्थाश्रम में ही रहता है । गृहस्थ का जीवन ज्ञान तथा कर्त्तव्य का एक अनवरत निर्झर है जहाँ स्वार्थरहित सेवा अनुराग, स्नेह तथा समाज के प्रति कर्त्तव्य का मधु निरन्तर प्रवाहित है । ब्रह्मचर्याश्रम में उपार्जित ज्ञान का यह क्रियात्मक प्रयोगस्थल है ।

---

१. म०स्मृ० ४.१.; ६.१.; ६.३३.; ६.३४.; ६.८७.; ६.८८.

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ।।

२. महाभारत १२.६१.२-५.; १३-१२८.३७.

गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः समावर्तेत वै द्विजः ।
विन्देतानन्तरं भार्यामनुरूपां यथाविधिः ।।

३. आप०ध० २.९.२१.८.; या०स्मृ० ३.५६.;
व०ध० ७.३. ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् । आशरीरविमोक्षाद् ।।

४. गौ०ध० १.३.१ तस्याऽऽश्रमविकल्पमेके ब्रुवन्ते ।
बौ०ध० २.६.२९ ऐकाश्रम्यं त्वाचार्या अप्रजननत्वादितरेषाम

५. गौ०ध० १.३.३५. पर हरदत्त की मिताक्षरा—
'ततः सर्व एवाऽचार्या गार्हस्थ्यस्यैकाश्रम्यं प्राधान्यं
मन्यन्ते । तत्राशक्तानामितराश्रमधर्मा विधीयन्ते ।

६. महाभारत १२.३०९.६० प्रजापतेः सलोकतां बृहस्पतेः शतक्रतोः ।
व्रजन्ति ते परां गतिं गृहस्थधर्मसेतुभिः ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद में गृहस्थाश्रम का महत्वगान :

संस्कृत साहित्य में ऋग्वेद के ही समय से गृहस्थाश्रम अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। इन्द्र की स्तुति करते हुए ऋषि कहता है 'हे इन्द्र, सोम पान कर लेने के पश्चात् अब तुम अपने घर जाओ जहाँ तुम्हारी सुन्दर और कल्याणकारी पत्नी है।'[1] इन शब्दों में ऋग्वेदकालीन गृहस्थ सुख का सुन्दर वर्णन है। पति की आज्ञाकारिणी एवं पति सेवा में संलग्न रहने वाली पत्नि,[2] बच्चों से अगाध प्रेम रखने वाली तथा उनका पालन पोषण करने वाली गृहिणी[3], घर की गाय एवं अन्य पशुओं की देखभाल करने वाली पत्नी[4] पति के साथ-साथ बैठ कर गार्हपत्याग्नि में आहुतियाँ देने वाली सहधर्मिणी[5] – ये सारे चित्र ऋग्वेद में गृहस्थाश्रम के पालन की पूर्ण साक्षी देते हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल का पचासीवाँ सूक्त सूर्या और सोम के विवाह की सम्पूर्ण विधि को आज तक सुरक्षित रखे हुए है। इसी विवाह सूक्त से तत्कालीन गृहस्थाश्रम के जीवन और कर्तव्यों का विस्तृत विवरण प्राप्त हो जाता है। नवविवाहिता वधू को कहा गया है–'हे गृहपत्नी। अपने (नए) घर जाओ। वहाँ प्रजादि द्वारा समृद्ध होकर अपने गार्हपत्थ (गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों) के प्रति जागरूक रहना।[6]

महाकाव्यों आदि में गृहस्थाश्रम का महत्व :

संस्कृत साहित्य में विद्या प्राप्ति कर लेने के पश्चात् ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर स्नातक के उचित विधि से कन्या के साथ विवाह करके गृहस्थाश्रमी बनने का वर्णन है।[7] गृहस्थ जीवन एक सार्वजनिक सामाजिक कर्तव्य था। केवल ऐसे मनुष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश वर्जित था जो शारीरिक दृष्टि से अक्षम, या मूर्ख या अन्य किसी दोष से युक्त होते थे। गृहस्थाश्रम से ही व्यक्ति के आर्थिक और सामाजिक जीवन का लौकिक अस्तित्व प्रारम्भ होता था।[8] अनेक संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवाह संस्कार से यह गृहस्थाश्रम प्रारम्भ होता था।[9] राजा रघु से धन याचना करने के लिए गए हुए वरतन्तु शिष्य कौत्स मुनि से राजा ने साग्रह पूछा था – 'हे ब्राह्मण विद्या ग्रहण कर लेने के पश्चात् गुरु ने तुम्हें सर्वोपकारी द्वितीय आश्रम – गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की आज्ञा दे दी अथवा नहीं, क्योंकि तुम्हारी आयु अब द्वितीय आश्रम में संक्रमण करने की है।[10]

---

१. ऋ०वे० ३.५३.७. अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।

२. ऋ०वे० १.१२२.२.

३. ऋ०वे० ७.८१.४.

४. ऋ०वे० १०.८५.४४.

५. ऋ०वे० ८.४३.१५.; ८.१३.१३.;

६. ऋ०वे० १०.८५.२६.२७. गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनो त्वं विदथमा वदासि इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि।

७. महाभारत १३.१२८.३७.

८. म०स्मृ० ९.२५. एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा।
प्रेत्येह च सुखोदर्कान् प्रजाधर्मान्निबोधत॥

९. महाभारत १२.२३५.१. द्वितीयमायुषो भागं गृहमेधी गृहं वसेत्।

१०. रघुवंश ५.१० कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं,
सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गृहस्थाश्रम के सर्वभोग्य होने का भाव शाकुन्तलम् के द्वितीय अङ्क में भी प्रगट होता है जहाँ दो ऋषिपुत्र राजा दुष्यन्त की प्रशंसा करते हुए उसे श्रेष्ठ ऋषि के समान बताते हैं।[1]

संस्कृत साहित्य में वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, सूत्र स्मृतियाँ, महाकाव्य, नाटक आदि सभी ग्रन्थ गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते नहीं अघाते। इस आश्रम का उचित परिपालन करने वाले को घर में ही समस्त तीर्थों की प्राप्ति कहीं गई है—'समस्त आश्रमों में गृहाश्रम ही श्रेष्ठ है। उचित प्रकार से इस आश्रम का पालन करने वाले को सब तीर्थों का फल प्राप्त होता है। जितेन्द्रिय होकर गृहस्थधर्म पालन करने से मनुष्य को घर में ही कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, हरिद्वार, केदारनाथ आदि तीर्थों की प्राप्ति हो जाती है।'[2] ऋषियों द्वारा विधान किये गए चारों आश्रमों को यदि पारस्परिक भारवत्ता की दृष्टि से तौला जाए तो एक पलड़े में गृहस्थाश्रम एवं दूसरे पलड़े में अन्य तीनों आश्रम—ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास—आते हैं।[3] वाल्मीकि रामायण तो आदर्श गृहस्थ परिवार का सुन्दर महाकाव्य है, अतः उसका गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ बताना उचित ही है।[4]

गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता उसके सामाजिक मूल्य एवं महत्त्व पर आधारित थी। इसकी महत्ता का सर्वप्रमुख कारण यह था कि गृहस्थ व्यक्ति ही अन्य तीनों आश्रमों का पालन करने वाले मनुष्यों की भोजन, वस्त्रादि द्वारा व्यवस्था किया करता था। गृहस्थाश्रमी अपने परिवार के लिए तो विभिन्न व्यवस्थाएँ करता ही था, किन्तु ब्राह्मण को उपहारादि देना, छात्र को विद्याध्ययनार्थ शुल्क देना, अतिथि-शिशु-गर्भिणी नारी आदि की परिचर्या करना—ये सारे कार्य गृहस्थ को अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा श्रेष्ठ बना देते हैं। अन्य तीनों ही आश्रम इसी एक आश्रम के सहारे अपनी स्थिति बनाए रखते हैं। ब्रह्मचारी, भिक्षु और वैखानस–तीनों को ही उत्पन्न करने वाला गृहस्थ आश्रम है।[5] 'यावज्जीवं जुहुयात्' आदि वैदिक वचनों ने गृहस्थाश्रम का पालन यावज्जीवन करने का आदेश दिया था, इसी कारण कई धर्मसूत्रों ने वानप्रस्थ और संन्यास को वैदिक वचनों का विरोध करने के कारण अमान्य तक ठहराया।[6] केवल गृहस्थाश्रम का ही सम्यक् प्रतिपालन करने से स्वर्ग अथवा मोक्ष की प्राप्ति सम्भव बताई गई। महाभारत के शान्तिपर्व में राजा जनक और

---

१. अभि०शा० २. १४. अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये।

२. व्या०स्मृ० ४. २. गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः।
सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत्॥

वही ४. ४. स्वदारे यस्य सन्तोषः परदारनिवर्तनम्।
अपवादं न कुर्वीत तस्य तीर्थफलं गृहे॥

वही ४. १३., ४–१४.;

३. महाभारत १२. १२. ११. आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः।
एकतस्ते त्रयो राजन्! गृहस्थाश्रम एकतः॥

४. वा०रा० २. १०६. २२. चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्॥

५. गौ०ध० ३.२.३. ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानसः।
तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम्।

६. गौ०ध० ३.३५ पर हरदत्त की मिताक्षरा वृत्ति
बौ०ध० २.६.२९, पर गोविन्दस्वामी की विवरण टीका
यदुक्तं चतुर्धाभिदमेक आहुः इति तन्न, ऐकाश्रम्यं
एकश्चाऽसावाश्रमश्च तदभा ऐकाश्रम्यम्। तच्च गार्हस्थ्ये।
प्रजननमत्र पुत्रोत्पत्तिः। सा चेतरेषां नाऽस्ति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संन्यासिनी सुलभा का संवाद यह स्पष्ट करता है कि वानप्रस्थ अथवा संन्यास ग्रहण मोक्ष की प्राप्ति के लिए आवश्यक नहीं है।[1] स्वयं राजा जनक गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए भी योगियों में अग्रगण्य और जीवन्मुक्त माने गए। वसिष्ठ ने गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते हुए लिखा कि 'गृहस्थ यथाशक्ति अन्नदान देता हुआ सब जीवों को प्राणधारण कराता है – यही गृहस्थ की तपस्या है और यही गृहस्थ का यज्ञ है। जिस प्रकार माता का आश्रय लेकर सब जन्तु जीवित रहते हैं, ऐसे ही भिक्षा के सहारे जीवनचर्या करने वाले सब व्यक्ति गृहस्थ के सहारे रहते हैं।'[2] माता अपने स्तनपान द्वारा नवजात शिशु को पुष्ट करती है, बालक के रोगी होने पर सावधानीपूर्वक उसकी परिचर्या करती है बच्चे के वस्त्र एवं भोजन तथा धन सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण किया करती है। बिल्कुल इसी प्रकार माता के समान ही गृहस्थाश्रमी व्यक्ति ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम की सब समस्याओं एवं कठिनाइयों को यथाशक्ति दूर करता है और अन्नदान, धन-दान आदि द्वारा इन आश्रमों को पुष्ट करता है। मनुस्मृति में गृहाश्रमी को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। वायु के द्वारा सारे प्राणी प्राण धारण करते हैं, ऐसे ही तीनों आश्रम गृहस्थाश्रम के सहारे ही जीवित रह पाते हैं। जैसे सारे नद एवं नदियाँ समुद्र में स्थिति ग्रहण करते हैं, ऐसे ही गृहस्थाश्रम में अन्य तीनों आश्रम स्थिर होते हैं। अन्य आश्रमों का भरण-पोषण करने के कारण गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ आश्रम है।[3]

महाभारतकार ने गृहस्थाश्रम को केवल महत्ता ही नहीं दी है अपितु संन्यास आश्रम को पापिष्ठा वृत्ति तक कह डाला है। कारण कि वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में व्यक्ति मुख्यतः अपने आध्यात्मिक कल्याण की ही कामना किया करते हैं, वहां संसार के हित की चिन्ता गौण होती है। एक अकेला व्यक्ति पुत्र, पौत्र, ऋषि, देवता, अतिथि आदि के भरण पोषण की चिन्ता न करते हुए तनिक से प्रयत्न से जीवित रह कर स्वार्थ के लिए आध्यात्मिक चिन्तन कर के मोक्ष प्राप्त कर सकता है, किन्तु ऐसे व्यक्ति से समाज का सर्वतोमुखी हित नहीं होता।[4] वह पराश्रित भी होता है, आत्मनिर्भर नहीं। यहां यज्ञादि कर्म भी छूट जाते है। अतः अन्य सब आश्रमों का ध्यान

---

१. महाभारत १२.३०८........

२. व०ध० ८.१३.१४.१६. यथाशक्ति चान्नेन सर्वभूतानि।
गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।
चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते॥
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः॥

३. म०स्मृ० ३.७७.७८ यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वाश्रमाः॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥

वही ६.९० यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

शं०स्मृ० ५.५.६.; वि०ध० ५९.२८.२९.

४. महाभारत १२.१०.२२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रखने वाला और सामाजिक कल्याण की ओर उन्मुख रहने वाला गृहस्थाश्रम ही अन्य सब आश्रमों का मूल माना गया है।[१] स्व के त्यागपूर्वक परोपकार को सिद्ध करने वाला यह गृहस्थाश्रम इसीलिए दुष्कर है क्योंकि गृहस्थ का दायित्व अपेक्षाकृत बहुत अधिक है।[२] संसार त्यागने और सन्यास ग्रहण करने को तत्पर युधिष्ठिर को व्यास आदि ने विभिन्न उदाहरण देकर समझाया था कि गृहस्थाश्रम को त्यागने से कोई लाभ नहीं होता। भीमसेन ने राजा युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा था – 'यदि कोई राजा संन्यास से सिद्धि प्राप्त कर सकता, तब तो पर्वतों और वृक्षों को शीघ्र ही सिद्धि मिल जाए, क्योंकि ये पर्वत और वृक्ष नित्य संन्यासी, उपद्रवशून्य, परिग्रहरहित तथा निरन्तर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले देखे जाते हैं।[३]

महाभारत में गृहस्थाश्रम के महत्व को प्रदर्शित करने वाले अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं, यहाँ उनमें से एक ही प्रस्तुत करना पर्याप्त है।[४] ऋषि कुणिगर्ग की एक अतीव रूपवती कन्या थी। उस कन्या ने पिता के प्रयत्न करने पर भी विवाह नहीं किया और तपस्या करती रही। तपस्या और क्षीण होती आयु ने उसे वृद्धा बना दिया। जब दुर्बलता के कारण उसने परलोक गमन की इच्छा की, तब नारद मुनि ने उससे कहा – 'असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकस्तवानघे' – विवाह संस्कार से संस्कृत न होने के कारण तुम्हें पुण्यलोक कैसे प्राप्त हो सकते हैं ?' यह जान कर उस कन्या ने अपनी तपस्या का अर्धभाग गालव के पुत्र शृङ्गवान् को देकर उससे विवाह किया और तभी वह पुण्यलोकों की अधिकारिणी बन सकी।

गृहस्थाश्रम के महत्त्व के कारण– सन्तति लाभ :

संस्कृत साहित्य में आदि से ही मनुष्य के लिए धर्मपालन सर्वाधिक काम्य पुरुषार्थ माना गया था। धर्मपालन करने के लिए पुत्र प्राप्ति आवश्यक थी। अतः सन्तति लाभ के कारण इस गृहस्थाश्रम को अन्य आश्रमों की अपेक्षा अधिक महत्व प्राप्त हो गया। स्नातक बने शिष्य को आचार्य स्पष्ट आदेश देते थे– 'प्रजारूपी तन्तु को कभी विच्छिन्न मत करना।[५] पितरों को पिण्डदान देने के लिए, अपने कार्यों में सहायता के लिए और वृद्धावस्था में परिचर्या के लिए सन्तति उत्पन्न करना अनिवार्य था और सन्तति प्राप्त करने के लिए गृहस्थाश्रम आवश्यक था, क्योंकि अन्य तीनों आश्रमों में से किसी भी आश्रम में सन्तानोत्पति सम्भव नहीं थी।[६] तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि उत्पन्न

---

१. महाभारत १२.१८४.१०. तद्धि सर्वाश्रमाणां मूलं उदाहरन्ति।
   महाभारत १२.२३.५. तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।
२. महाभारत १२.११.२०. तस्माद् गार्हस्थ्यमुद्वोढुं दुष्करं प्रब्रवीमि वः।
   वही १२.१२.२१. तस्माद् गार्हस्थ्यमेवेह दुष्करं दुर्लभं तथा।
३. महाभारत १२.१०.२४.२५. यदि संन्यासतः सिद्धिं राजन् कश्चिदवाप्नुयात्।
   पर्वताश्च द्रुमाश्चैव क्षिप्रं सिद्धिमवाप्नुयुः॥
   एते हि नित्यसंन्यासा दृश्यन्ते निरुपद्रवाः।
   अपरिग्रहवन्तश्च सततं आत्मचारिणः॥
४. महाभारत ९. ५२. ३....२३
५. तै०उप० – प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।
६. बौ०ध० २. ६. २९.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुए मनुष्य पर जन्म से ही तीन ऋण होते हैं।[१] पितृ ऋण से उऋण होने के लिए मनुष्य को गृहस्थाश्रमी होकर सन्तति उत्पन्न करनी होती है। पुत्र प्राप्त होने पर ही मनुष्य पितृऋण से मुक्त हो पाता है। जिस व्यक्ति के पुत्र न हो वह धर्मपुत्र गोद लेता था जिससे पितृ ऋण से मुक्त हो सके। पितृ ऋण से मुक्त करने के कारण सर्वत्र ही पुत्र पिता को नरक से बचाने वाला माना गया है।[२]

गृहस्थाश्रम के महत्व का संवर्धन करने वाला पुत्र प्राप्ति रूप कारण भी महाभारत में अनेक कथाओं द्वारा वर्णित है। महाभारत के आदि पर्व के तेरहवें अध्याय में जरत्कारु नामक मुनि का आख्यान है जिन्होंने पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए विवाह करके गृहस्थधर्म का पालन किया। महाभारत में ही वनपर्व में अगस्त्य मुनि का आख्यान है।[३] किसी दूसरे स्थल को जाते हुए अगस्त्य मुनि ने एक गढ्ढे में नीचा मुँह किए लटकते हुए अपने पितरों को देखा। इसका कारण पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया 'सन्तान परम्परा लोप की सम्भावना के कारण हमारी यह दुर्दशा है। यदि तुम उत्तम सन्तान उत्पन्न करो, तो हमारा भी इस नरक से छुटकारा हो जाएगा और तुम्हारी भी सद्गति होगी।[४] अगस्त्य ने यह सुनकर अपने अनुरूप भार्या का अनुसन्धान किया किन्तु वैसी स्त्री नहीं मिली। तब अगस्त्य ने हर सत्व के उत्तमोत्तम अंगों को अपनी भावना से संग्रहीत करके, एक परम सुन्दरी स्त्री का निर्माण करके, वह कन्या विदर्भराज को दे दी। समय आने पर अगस्त्य ने उस कन्या—लोपामुद्रा— से विवाह करके उससे एक विद्वान् पुत्र उत्पन्न किया और वंशपरम्परा की रक्षा करके पितरों को चिन्ता मुक्त किया।

पंच यज्ञ :

त्रिऋणों में भी प्रमुखतः पितृऋण से मुक्त होने के अतिरिक्त गृहस्थाश्रम के सार्वत्रिक महत्व का एक कारण यह भी थी कि मनुष्य पञ्च महायज्ञों को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए बिना नहीं कर सकता। प्रत्येक गृहस्थ को पञ्चयज्ञों के अनुष्ठान का आदेश दिया गया।[५] वैदिक समय में भी इन पञ्च यज्ञों का अस्तित्व था किन्तु इनका व्यवस्थित रूप गृह्यसूत्रों एवं स्मृतियों में ही प्राप्त होता है। मनु स्मृति ने विशेष रूप से इन पञ्चयज्ञों को करणीय बताया है और इनका विशद विवेचन किया है—

---

१. तै०सं० ६.३.१०.५. जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभि ऋणवान् जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्य, प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणो यः पुत्रो यज्वा ब्रह्मचारिवासी। — यहाँ ब्राह्मण सब वर्णों का बोधक है।

शत०ब्रा० १.७.३.११. ऋणं ह वै जायते योऽस्ति। स जायमान एव देवेभ्यः ऋषिभ्यः पितृभ्यः मनुष्येभ्यः।

२. वा. रा. २.१०७.१२. पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन्यः पाति सर्वतः॥

३. महाभारत ३.९४.११ ..,

४. महाभारत ३.९४.१४. यदि नो जनयेथास्त्वमगस्त्यापत्यमुत्तमम्।
स्यान्नोऽस्मान्निरयान्मोक्षस्त्वं च पुत्राप्नुया गतिम्॥

५. आप०ध० १.४ १२.१५.; १.४.१३.१.;
बौ०ध० २.६.१. अथेमे पञ्च महायज्ञास्तान्येव महासत्राणि—
देवयज्ञः, पितृयज्ञो, भूतयज्ञो, मनुष्ययज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

'वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधिः ।
पञ्चयज्ञविधानं च पंक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥ मनु० ३.६७
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ 'मनु० ३.७०.

अर्थात् 'विवाह समय की अग्नि में विधिपूर्वक गृह्यकर्म, पञ्चमहायज्ञ और पाकादि करे । (वेद का अध्ययन और) अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण करना (माता पिता को सेवा से संतुष्ट करना) पितृयज्ञ है, हवन करना देवयज्ञ है, (प्राणियों को) बलि देना भूतयज्ञ है, एवं अतिथियों का भोजन आदि से सत्कार करना नृयज्ञ है ।' वेदपाठ से ऋषियों की विधिपूर्वक हवन से देवताओं की श्राद्धों से पितरों की, अन्न से मनुष्यों (अतिथियों) की और बलिकर्म से भूतों की पूजा (तृप्ति-सन्तुष्टि) करनी चाहिए—

'स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधिः ।
पितृन्श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ मनु ३. ८१.

ब्रह्म यज्ञ :

इसका प्राचीनतम उल्लेख इस रूप में सम्भवतः शतपथ ब्राह्मण में पाया जाता है ।[1] इसमें प्रतिदिन का वेद का स्वाध्याय ही ब्रह्मयज्ञ बताया गया है ।[2] इसका उद्देश्य सबको वेदाध्ययन आदि में प्रवृत्त कराना था । इससे वैदिक ज्ञान की प्राचीन परम्परा सुरक्षित रह कर निरन्तर सहस्रों वर्ष रक आगे बढ़ती रही । दयानन्द सरस्वती ने सन्ध्या (ईश्वर-चिन्तन) को भी ब्रह्मयज्ञ माना है ।

देव यज्ञ :

तैत्तिरीय आरण्यक ने लिखा कि 'जो समिधा से अग्नि में हवन करता है वह देवयज्ञ करता है ।[3] अतः अग्नि में विभिन्न देवताओं— सूर्य, अग्नि, प्रजापति आदि के प्रति स्वाहा पूर्वक आहुतियाँ देना देवयज्ञ है । गृहस्थ द्वारा अग्नि में डाली गई आहुति सम्यक् रूप से सूर्य तक पहुंचती है; इसका रस सूर्य के प्रभाव से वर्षा बन कर बरसता है; वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से प्रजाएँ जीवन धारण करती हैं । अतः देवयज्ञ सम्पन्न करने वाला गृहस्थ चराचर जगत् का धारण और पोषण करता हैं ।[4] गृहाश्रमी व्यक्ति का यज्ञ व्यक्तिगत स्वार्थ में सीमित न होकर सामाजिक श्रय के लिए होता है ।

भूत यज्ञ :

घर में प्रतिदिन बनाए जाने वाले अन्न में से भूतों के लिए जो बलि निकाली जाती है वह भूतयज्ञ कहलाता है । भारतीय विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण चराचर सृष्टि में एक ही परब्रह्म

---

१. शत० ब्रा० ११.५.६.३....८.

२. तै० आ० २.१०. यत्स्वाध्यायमधीयते कामप्यृचं यजुः साम वा तद् ब्रह्मयज्ञः संतिष्ठते ।

३. तै० आ० २.१०. यदग्नौ जुहोत्यपि समिधं तद्देवयज्ञः सन्तिष्ठते ।

४. म० स्मृ० ३.७५.७६. दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपनी शक्ति से ओतप्रोत है, अतः भूतयज्ञ सबके प्रति उदारता और सहिष्णुता का प्रतीक है। ऋग्वेद के समय से ही यह धारणा प्रचलित थी कि अकेले खाना पाप है। ऋग्वेद ने स्पष्ट कहा 'अविवेकी विफल अन्न को कमाता है। वह (अन्नप्राप्ति) उसके नाश— अकल्याण की सूचक है। जो मित्र और देवता को न देता हुआ स्वयं ही भोजन करता है वह मूर्ख पापमात्र का भक्षण करता है।[1] गीता में भी यही ध्वनि है—

'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्' (गीता ३.१३.) यह भूतयज्ञ सारे जीवों के लिए वलि निकाल कर त्याग पूर्वक भोग का प्रतीक है।

पितृ यज्ञ :

इस यज्ञ में प्रतिदिन पितरों का सम्मान किया जाता है। मनु स्मृति ने प्रतिदिन तीन प्रकार से पितरों का सम्मान करके पितृयज्ञ सम्पन्न करने का विधान किया।

अ. प्रतिदिन (जलदान करके अथवा) तर्पण करके पितृयज्ञ सम्पन्न करना चाहिए।[2] (अगली दोनों विधाएँ इसका ही विस्तार हैं।)

ब. अन्नादि, दूध, मूल, फलों से प्रतिदिन पितरों को सन्तुष्ट करे और यदि अधिक सम्भव न हो तो भी पितरों के निमित एक ब्राह्मण को भोजन अवश्य कराए।[3]

स. सर्वात्मक जीव को वलि देने के बाद बचे हुए सब अन्न से दक्षिण दिशा में पितरों के लिए स्वधा वलि देनी चाहिए।[4]

नृ यज्ञ अथवा मनुष्य यज्ञ :

इस नृ यज्ञ की सामाजिक महत्ता पञ्च महायज्ञों में सर्वाधिक है। अतिथि सेवा ही नृ यज्ञ है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य आतिथ्य की महिमा से भरा हुआ है। वैदिक युग से ही अतिथि को देवरूप माना जाता रहा है— 'अतिथि देवो भव' —अथर्ववेद में कहा गया कि 'अतिथि गृहस्थ का अन्न नहीं खाता है वरन् उसके पापों का भक्षण कर लेता है।'[5] घर पर आए हुए अतिथि को आसन, पादोदक, स्वादिष्ट अन्न आदि देकर उसका सत्कार करना चाहिए। भोजनादि से अतिथि

---

१. ऋ०वे० १०.११,७.६. मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥

२. म०स्मृ० ३.७०. पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥

३. म०स्मृ० ३-८२.८३. कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥
एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके।

इस उद्धरण की अन्तिम पंक्ति का पहली दो पंक्तियों से विरोध स्पष्ट है, अतः यह पीछे से मिलाई प्रतीत होती है। मनु को जीवित माता-पिता को श्रद्धापूर्वक तृप्त करना ही अभीष्ट है। कालान्तर में जीवित पितरों की उपेक्षा और मृत पितरों की तृप्ति और श्राद्ध ही लक्ष्य बन गए।

४. म०स्मृ० ३.९१. पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत्।

५. अ०वे० ९.६.५.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की सेवा धन, आयु, यश और स्वर्ग का कारण बनती है।[1] महाभारत के शान्ति पर्व में कबूतरी को पकड़ लेने वाले शाकुनिक का भी सत्कार करते हुए कबूतर ने कहा है— 'घर पर आए हुए अतिथि का यत्नपूर्वक सत्कार सभी को करना चाहिए किन्तु पञ्चयज्ञ में प्रवृत्त गृहस्थ का तो यह प्रधान धर्म है। जो गृहाश्रम में रहता हुआ भी पञ्चयज्ञ सम्पन्न नहीं करता, उसे धर्मतः न तो यह लोक प्राप्त होता है और न ही परलोक।'[2]

अतिथिसत्कार के मूल में प्राणिमात्र के प्रति दया और अनुकम्पा की सहज प्रवृत्ति है। अतिथि प्रायः यात्री होता है।[3] आज की यात्रा एक सीमा तक निरापद हो गई, किन्तु पहले यात्रा इतनी सुगम और निरापद नहीं होती थी। अपरिचित स्थान में व्यक्ति क्षुधा-पिपासा एवं श्रम से आर्त एवं असहाय होता है। अतः ऐसे अतिथि के प्रति गृहस्थ व्यक्ति सहज दया के वशीभूत होकर उसकी सेवा करता है। ऋषियों ने इस अतिथि सेवा को कर्तव्य में परिगणित कर दिया और इसे 'महान् धर्म' की संज्ञा दी।[4]

इन पांचों यज्ञों पर यदि विवेचनात्मक विचार करें तो स्पष्ट होता है कि गृहस्थाश्रम में विभिन्न तत्त्वों का सामञ्जस्य उपस्थित किया गया है। डा० शिवदत्त ज्ञानी के शब्दों में 'वेदाध्ययन द्वारा बुद्धि और आत्मा का विकास, पितृ यज्ञ द्वारा मृत पितरों की स्मृति का नवीनीकरण, देवयज्ञ द्वारा धार्मिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन, भूत यज्ञ द्वारा जीवमात्र के प्रति दया का भाव तथा अतिथियज्ञ के द्वारा नागरिकता के भाव की परिपुष्टि आदि के द्वारा'[5] प्रत्येक गृहस्थ अपने जीवन के विभिन्न अंगों को परिपुष्ट करके विकसित करता था।

मनु ने इन पञ्चमहायज्ञों का उद्देश्य विविध प्रकार की हिंसा से मुक्त होना बताया।[6]

---

१. म० स्मृ० ३. ९९. सम्प्राताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥
३. १०६. धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्।

२. महाभारत १२, १४२, २५. २६. शरणागतस्य कर्तव्यमातिथ्यं हि प्रयत्नतः
पंजयज्ञप्रवृत्तेन गृहस्थेन विशेषतः॥
पञ्चयंज्ञांस्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमे।
तस्य नायं न च परो लोको भवति धर्मतः॥
वि० ध० ६७. ३३. अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
तस्मात्सुकृतमादाय दुष्कृतं तु प्रयच्छति।

३. निरुक्त ४. ५.

४. महाभारत १२. १४२. ३९. ऋषीणां देवतानाञ्च पितृणां च महात्मनाम्।
श्रुतः पूर्वं मया धर्मो महानतिथिपूजने॥

५. शिवदत्त ज्ञानी— वेदकालीन समाज —पृष्ठ १०१

६. म० स्मृ० ३. ६८. ६९ पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्ज बध्यते यास्तु वाहयन्।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गृहस्थी में चूल्हा चक्की झाड़ू, ओखली एवं जलकलश— इन पाँच वस्तुओं के कारण गृहस्थ से अनायास बहुत हिंसा होती है। पञ्चमहायज्ञ करने से गृहस्थ इस हिंसा एवं पाप से मुक्त हो जाता है।

कामतृप्ति एवं अर्थोपार्जन :

धर्म प्रमुख पुरुषार्थ है ही, साथ ही काम एवं अर्थ भी पुरुषार्थ माने गए हैं। लोक में ये तीनों पुरुषार्थ यद्यपि परस्पर विरोधी हैं तथापि गृहस्थाश्रम में व्यक्ति धर्म अर्थ एवं काम का एक साथ सेवन करता है और यह एकत्र सेवन भी गृहाश्रम के महत्व का एक कारण है। देव पूजा, न्यायपूर्वक जीविकोपार्जन, अन्य आश्रमों की सहायता और पत्नी से सन्तानोत्पति करके वंशपरम्परा को अविच्छिन्न रखते हुए गृहस्थी पुरुष धर्म के साथ-साथ अर्थ और काम की भी पूर्ति कर लेता है। महाभारतकार ने इन परस्पर विरोधी पुरुषार्थों का मञ्जुल समन्वय-पत्नीयुत् गृहस्थ में ही बताया था।[1] इसीलिए गृहस्थ को अलग कर देने से चतुर्वर्ग में अर्थ एवं काम स्थितिरहित हो जाते हैं।

गृहस्थाश्रम के महत्व का एक कारण यह भी है कि संस्कृत मनीषियों ने मनुष्य के लिए जिन चार आश्रमों का विधान किया था— वह हर व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हैं। क्योंकि हर व्यक्ति बौद्धिक दृष्टि से इतना सक्षम हो कि चारों आश्रमों का उचित निर्वाह कर सके, और हर व्यक्ति को चतुराश्रम पालन के लिए सौ वर्ष की आयु मिले ही— यह दोनों बातें सम्भव नहीं दीखती हैं। विद्याध्ययन करके गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो सकना सबके लिए सुकर एवं सम्भव है। अतः संस्कृत साहित्य में गृहस्थाश्रम की क्षमता और महत्ता इसीलिए गाई गई है कि मनुष्य इसी आश्रम में धर्म, अर्थ, काम— इन तीनों पुरुषार्थों को सिद्ध करके मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बन सकता है।

गृहस्थाश्रम की महत्ता एवं उपादेयता के सम्बन्ध में ऋग्वेद से आरम्भ होकर संस्कृत साहित्य में जो गुणप्रशस्ति चली आ रही थी, वह उपनिषद् एवं आरण्यक काल में कुछ मन्द पड़ गई। किन्तु गृहस्थ का महत्व समाज में वास्तविक और अनिवार्य था अतः आरण्यकों और उपनिषदों ने लोक में जो वैराग्य की भावना प्रसारित की थी, उसी की प्रतिक्रियास्वरूप वाल्मीकि ने रामायण की रचना करके गृहस्थाश्रम के गौरव को अमर कर दिया। लौकिक संस्कृत साहित्य का प्रथम महाकाव्य—रामायण—ही गृहस्थाश्रम की गुरुता का ऐसा गान कर गया कि वह भारतीय जनजीवन का आदर्श व मान्य ग्रन्थ बन गया है।

---

१. महाभारत ३.३१३.१०१.१०२. (बम्बई एडीशन)

धर्मश्चार्थश्च कामश्च परस्परविरोधिनः।
एषां नित्यविरुद्धानां कथमेकत्र संगमः॥
यदा धर्मश्च भार्या च परस्परवशानुगौ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगमः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वितीय अध्याय

विवाह का प्रारम्भ, आवश्यकता, स्वरूप एवं प्रयोजन

विवाह की आद्यावस्था अथवा प्रारम्भ
विवाह की आवश्यकता एवं अनिवार्यता
विवाह की परिभाषा
विवाह एक धार्मिक संस्कार है
विवाह का उद्देश्य
धर्म
पुत्र-प्राप्ति – प्रजा
रति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह का प्रारम्भ, आवश्यकता, स्वरूप एवं प्रयोजन

विवाह की आद्यावस्था अथवा प्रारम्भ :

संस्कृत साहित्य के रचयिताओं ने मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति 'काम' को चार पुरुषार्थों में समाविष्ट कर के इसकी महत्ता को मान्यता प्रदान की है। विशुद्ध कामभावना मनुष्य तथा पशु दोनों में सहज नैसर्गिक प्रवृत्ति के रूप में पाई जाती है। मुक्त कामतृप्ति जहाँ अमर्यादित पशुजीवन की परिचायक है, वहाँ मर्यादित कामभावना मनुष्य की सृजनशीलता, सौन्दर्यवृद्धि तथा पारस्परिक सहयोग का मूल सम्बल है। काम एवं यौनसम्बन्धों को मर्यादित रूप प्रदान करने के लिए ही सभ्यता के आदिम छोर पर ही सम्भवतः विवाह संस्कार प्रतिष्ठित हुआ।

संस्कृत साहित्य ही क्या, विश्व के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद के अध्ययन मनन से भी विवाह संस्कार के उद्भव अथवा प्रारम्भ के विषय में कुछ निश्चित तथ्य नहीं मिलते। ऋग्वेद में विवाह एक सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित एवं गौरवमण्डित संस्कार के रूप में उपलब्ध होता है। कन्या को पत्नी रूप में ग्रहण करते समय पति कहता है— 'मैं सौभाग्य की प्राप्ति के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू भी मुझ पति के साथ जरावस्था को प्राप्त हो। ऐश्वर्ययुक्त, न्यायकारी, उत्पत्तिकर्ता एवं संसार का पोषण करने वाले ईश्वर तथा देवताओं ने गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान के लिए तुमको मुझे दिया है।'[1] यह मेरी सुमङ्गली (शुभलक्षणवती अथवा कल्याणयुक्ता) पत्नी है। आकर इसको देखो। इसको आशीर्वाद दो और अपने अपने घरों को प्रस्थान करो।'[2] 'हे देवताओं अथवा सभा में उपस्थित विद्वानों! आप निश्चय जानें कि हम दोनों के हृदय जल के समान मिले हुए हैं। जैसे प्राणवायु प्रिय होती है, ऐसे ही हम दोनों एक दूसरे से प्रसन्न रहेंगे। जगत् धारण करने वाले परमात्मा के समान हम एक दूसरे को धारण करेंगे। उपदेशक जैसे श्रोताओं से प्रीति रखता है ऐसे ही हम दोनों परस्पर दृढ़ प्रेम धारण करें।'[3]

---

१. ऋ०वे० १०.८५.३६. ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

२. ऋ०वे० १०.८५.३३. सुमंगलीरियं बधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेतन॥

३. ऋ०वे० १०.८५.४७. ओं समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद में ही जब विवाह संस्कार का ऐसा सुन्दर एवं सूत्रबद्ध रूप प्राप्त होता है तो उसके उद्भव के सम्बन्ध में विभिन्न मतों एवं तर्कों की पुष्टि संस्कृत साहित्य में कहाँ से परिलक्षित हो ? तथापि ऋग्वेद में कुछ देवों का अपनी भगिनी के साथ दैहिक सम्बन्ध का-सा संकेत प्राप्त होता है। समाजशास्त्रीय विद्वान् इस आधार पर विवाह स्थापना से पूर्व मुक्त कामचार की स्थिति का प्रतिपादन करते हैं। किन्तु इन प्रसंगों के विवेचन से उन विद्वानों की यह धारणा पुष्ट नहीं होती।

ऋग्वेद के षष्ठ मण्डल में देव पूषन् का वर्णन है। पूषन् तथा अग्नि सूर्य के रूप हैं। 'क्योंकि वे उषा का अनुसरण करते है, अतः अपनी बहन के जार कहलाते हैं।'[१] अग्नि को भी अपनी बहन उषा के समीप गमन करने वाला वर्णित किया गया है।[२] सवितृ और उषस् (जो स्वयं भाई बहन थे) के पुत्र अश्विनीकुमार युगल ने अपनी बहन सूर्यासावित्री से विवाह किया।[३] ऋग्वेद में यम-यमी संवाद को विद्वान् भाई-बहन के प्रणय सम्बन्ध का ज्वलन्त उदाहरण मानते हैं।[४] ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों में ही वर्णन है कि दुष्ट आत्माएँ स्त्री तक सहज पहुँच पाने के लिए भाई, पति या प्रेमी का रूप धारण कर लेती हैं।[५] इस वर्णन से यह सम्भावना की जाती है कि भाई का बहन से सम्बन्ध सामान्य माना जाता था। पिता-पुत्री के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रमाण रूप में प्रजापति के अपनी पुत्री के साथ सहवास का प्रमाण दिया जाता है।[६]

वेदों तथा ब्राह्मणों में पाए जाने वाले उपर्युक्त उदाहरणों से तुरन्त यह निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं है कि विवाह संस्कार की स्थापना से पूर्व विमुक्त कामचार के ये प्रमाण हैं। वैदिक आख्यानों की भाषा साहित्यिक होने के स्थान पर प्रतीकात्मक अधिक होती थी। इनमें स्वसृ पद स्वयंवरण करने वाली का, जार पद जरयिता का और दुहिता पद दोग्धव्या के वाचक होकर बहन और पुत्री के साथ यौनसम्बन्ध की कल्पना को समाप्त कर देते हैं। जिन देवों के सम्बन्ध में ये कथन आए हैं, उनके स्वरूपाविवेचन से ही यौन सम्बन्ध की कल्पना व्यावर्तित हो जाती है। वैदिक काल में, जैसा डॉ० मैक्समूलर ने लिखा है, अभी पदों के अर्थ रूढ़ नहीं हुए थे। वे द्रवावस्था में थे। अतः स्वसृ और दुहितृ के अर्थ भी रूढ़ नहीं लिए जा सकते।

ऋग्वेद के यम-यमी सूक्त को भाई बहन के पारस्परिक प्रणय का आख्यान मान लेना समीचीन नहीं है। यद्यपि स्वामी दयानन्द आदि यहाँ यमी को यम की बहन नहीं मानते, नियोग की

---

१. ऋ०वे० ६.५५.४. पूषणं न्वजाश्वमुप स्तोषां वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते।

२. ऋ०वे० १०.३.३. भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
वही १०.९४.४.

३. इरावती कर्वे किनशिप थूसेजेस् एण्ड द फैमिली ऑरगनाइजेशन— एनल्स ऑफ भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट्—वाल्यूम २०, पृष्ठ २२०

४. ऋ०वे० १०.१०.

५. ऋ. वे. १०.१६२.५ यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि॥
अ. वे. ८.६.७ यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटनः॥

६. ऋ.वे. १०.६१.५-७ प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वा उषसं वा
शत०ब्रा० १.७.४.१. मिथुन्येनया स्यामिति। तां सम्बभूव..........
ऐ०ब्रा० ३.९.२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कामना करने वाली कोई स्त्री मानते हैं, तथापि सामान्य अर्थ मानने पर भी सम्पूर्ण सूक्त में यद्यपि वासनान्ध यमी ने बारम्बार यम को सहवास के लिए प्रेरित किया है, किन्तु यम ने इस प्रार्थना को स्पष्टतः ठुकराते हुए दृढता से कहा—'तुम मेरी सहोदरा हो। हमारे लिए यह अभीष्ट नहीं है। जो पहले कभी नहीं किया गया, उसे क्या हम करेंगे ?' तुम अन्य किसी पति की कामना करो।[२] अपनी भगिनी के समीप जाने वाला पाप करता है।[३] अथर्ववेद ने भी स्पष्ट कहा कि 'जो भगिनी से पाप करता है वह पापी है।'[४] यम का यह प्रत्याख्यान मुक्त कामचार का समर्थन नहीं, वरन् विरोध ही करता है।

यद्यपि प्रजापति के अपनी दुहिता के अभिमर्शन के आख्यान में ही दुहितृ को दिव् या उषस् कह कर लौकिक अर्थ व्यंजना को समाप्त कर दिया है तथापि इस भाव को दृढ़तर करने के लिए इस प्रजापति आख्यान की भी शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण में चरम सीमा तक निन्दा की गई है। प्रजापति द्वारा किए गए इस गर्हित कार्य को ऋषियों ने किसी भी प्रकार तर्कसंगत बनाने का प्रयत्न नहीं किया है, वरन् इस कार्य को निन्दित और नीच कह कर प्रजापति को बाणविद्ध करके दन्डित किया है।[५]

यम-यमी आख्यान और प्रजापति आख्यान की अनैतिकता के प्रति जनगर्हा और भर्त्सना उस समय की प्रचलित प्रथा का निश्चित संकेत करती है कि वैदिक युग में भी स्वतन्त्र कामचार की स्थिति नहीं थी। विवाह एक सुप्रतिष्ठित एवं बहुइच्छित संस्कार था। इन आख्यानों के आधार पर विवाह से पूर्व मुक्त कामाचरण के मत की स्थापना नहीं की जा सकती।

वैदिक युग के उपरान्त परवर्ती इतिहास-साहित्य के अन्तर्गत महाभारत में यत्र तत्र कुछ ऐसे प्रसंग प्राप्त होते हैं, जिनके आधार पर यह ज्ञात होता है कि सम्भवतः विवाह संस्कार की प्रतिष्ठा के पूर्व विमुक्त कामाचार प्रचलित था।

महाभारत में उपलब्ध जिन प्रसंगों के आधार पर वैवाहिक संस्कार से रहित एक मानव समाज की कल्पना की जाती है; उन प्रसंगों का इस स्थल पर विवेचन करना अप्रासंगिक न होगा।

सर्वप्रथम महाभारत के आदिपर्व के एक सौ तेरहवें अध्याय में कुन्ती को नियोग के लिए प्रेरित करते हुए पाण्डु कहते हैं कि प्राचीन काल में भी स्त्रियाँ कामचारिणी होतीं थीं और उत्तर-कुरु में आज भी स्त्रियों में स्वतन्त्र कामचार पाया जाता है। पहले यही धर्म था अतः यदि तुम

---

१. ऋ. वे. १०.१०.२

२. ऋ. वे. १०.१०.१० उप बबृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ।

३. ऋ. वे. १०.१०.१२ पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।

४. अ. वे. १०.१२८.२

५. शत०ब्रा० १.७.४.२–३. तद्वै देवानामाग आस—य इत्थं स्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोतीति।
ते ह देवा ऊचुर्योऽयं देवः पशूनामीष्टे–अतिसन्धं वा अयं चरति-य इत्थं
स्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोति, विध्येममिति।
तं रुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मेरी आज्ञा से नियोग द्वारा पुत्र उत्पत्ति करो तो कोई अधर्म नहीं होगा।[१]

महाभारत आदिपर्व में ही उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु द्वारा विवाह मर्यादा प्रतिष्ठित किए जाने का वृत्तान्त उपलब्ध होता है। एक बार श्वेतकेतु अपने माता-पिता के समीप बैठे थे। उसी समय एक अन्य ब्राह्मण वहाँ आया और श्वेतकेतु की माता का हाथ पकड़ कर ले जाने लगा। श्वेतकेतु को उस ब्राह्मण के आचरण पर क्रुद्ध होते देख कर उद्दालक ऋषि ने स्त्रियों के स्वैराचार के सम्बन्ध में आश्चर्य और कोप न करने का निर्देश किया— 'मा तात कोपं कार्षीस्त्वं एष धर्मः सनातनः।' किन्तु श्वेतकेतु ने उनका प्रतिकार करते हुए क्रोध से कहा— 'आज से मैं यह धर्मसम्मत मर्यादा स्थिर करता हूँ कि स्त्री पुरुष में से यदि कोई भी स्वच्छन्दाचरण करेगा तो भ्रूण हत्या का पापी होगा।'[२]

महाभारत में ही श्वेतकेतु के अतिरिक्त दीर्घतमा नामक अन्धऋषि को भी विवाह संस्कार की मर्यादा स्थापित करने वाला कहा गया है। दीर्घतमा ऋषि ने प्रद्वेषी नामक सुन्दरी ब्राह्मण कन्या से पाणिग्रहण किया था। पत्नी से कई पुत्रों की प्राप्ति भी हुई। किन्तु बाद में वे ऋषि गो-धर्म (कामचार, प्रकटमैथुन) में प्रवृत्त हुए। पत्नी ने वितथमर्याद अन्ध पति से क्रुद्ध होकर कहा कि मैं तुम्हारा भरण पोषण नहीं करूँगी। पत्नी के वचनों से उत्तेजित होकर ऋषि ने यह व्यवस्था दी— 'मैं आज से यह नियम बनाता हूँ कि नारी के लिए यावज्जीवन एक ही पति होगा। पति के जीवित रहते अथवा मर जाने पर भी जो स्त्री दूसरे पति को ग्रहण करेगी वह निश्चित रूप से जगत् में निन्दित होगी'[3]

वैवाहिक मर्यादा के उपर्युक्त ऋषियों द्वारा स्थापित किए जाने के साथ साथ वाहीक, उत्तरकुरु एवं माहिष्मती में स्त्रियों के शिथिल आचार एवं स्वैरिणीत्व को भी विवाह संस्कार प्रथा के उद्भव के कारण रूप में उद्धृत किया जाता है।[४] कर्णपर्व में शल्य के वचनों से अपमानित कर्ण

---

१. महाभारत १.११३.४....७. अनावृत्ताः किल पुरा स्त्रियः आसन्वरानने।
कामचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि॥
तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभगे पतीन्।
नाऽधर्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मः पुराऽभवत्।
उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्यापि वर्तते॥

२. महाभारत १.११३.१०....२०. मर्यादेयम् कृता तेन मानुषेष्विति नः श्रुतम्।
उद्दालकस्य पुत्रेण धर्म्या वै श्वेतकेतुना॥

३. महाभारत १.१०४.२३.....२७. (बम्बई एडीशन) अद्य प्रभृति मर्यादा मया लोके प्रतिष्ठिता।
एक एव पतिर्नार्या यावज्जीवं परायणम्॥
मृते जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम्।
अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः॥

४. महाभारत २.२८.२३. तस्यां पुर्यां तदा चैव माहिष्मत्यां कुरूद्वह।
बभूवुरनतिग्राह्या योषितश्छन्दतः किल।

महाभारत ८.४४.१३. (बम्बई एडीशन) अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने मद्रदेश में भी स्त्रियों को 'कामवशा' एवं 'मैथुन में असंयता' कहा है ।[1]

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में महाभारत के उपर्युक्त उद्धरणों को छोड़कर अन्य कहीं वैवाहिक प्रथा के आधारभूत रूप में कामाचार के तथ्य प्राप्त नहीं होते । यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाए तो उपर्युक्त प्रसंग भी स्थानविशेष के स्त्री-पुरुषों के आचरण के गुण-दोषों को ही प्रगट करते हैं ।

पाण्डु स्वयं तो किन्दम ऋषि के शापवश सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ थे । उन्होंने अपनी पत्नी कुन्ती से जब नियोग द्वारा पुत्रोत्पत्ति को कहा तो कुन्ती ने स्पष्टतः उत्तर दिया— 'आप मुझसे ऐसी बातें न कहें; मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष से समागम करने की बात मन में भी नहीं ला सकती ।' कुन्ती की इस स्पष्ट उक्ति को सुनकर पाण्डु ने पुनः नियोग के प्रति कुन्ती को प्रेरित करने के लिए कहा कि विवाह एवं पातिव्रत्य बहुत प्राचीन नहीं है— पहले भी स्त्रियाँ कामचारिणी होती थीं, अतः तुम्हारे द्वारा परपुरुष से पुत्रोत्पत्ति कराना बहुत अनुचित नहीं है ।

यहाँ इतना कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि श्वेतकेतु द्वारा विवाह संस्कार का स्थापन एक काल्पनिक-सी कथा प्रतीत होती है । विभिन्न उपनिषदों में उद्दालक-पुत्र श्वेतकेतु उस समय वर्तमान व्यक्ति (Living personality) के रूप में वर्णित है ।[2] जब श्वेतकेतु का जन्म ही उपनिषद् काल में हुआ तो ऋग्वेद-समय से ही स्थापित विवाह-संस्कार-प्रथा के जन्मदाता वे कैसे हो सकते हैं ? परवर्ती काल का व्यक्ति पूर्ववर्ती समय की प्रथा को उत्पन्न नहीं कर सकता । जैसा पहले लिखा जा चुका है, विवाह संस्कार ऋग्वेद में भी सुप्रतिष्ठत प्रथा के रूप में प्राप्त होता है । महाभारतकार द्वारा श्वेतकेतु से मर्यादा स्थापन कराए जाने का एक कारण यह हो सकता है कि संस्कृत-इतिहासकार अथवा पुराण-प्रणेता आदि की यह एक सामान्य प्रवृत्ति रही है कि वे कुछ तत्कालीन तथ्यों अथवा घटनाओं के साथ किसी न किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का नाम सम्बद्ध करके उस तथ्य अथवा घटना को वास्तविक प्रामाणिक और अत्यन्त प्राचीन बनाने का प्रयत्न करते देखे जाते हैं ।

दीर्घतमा ऋषि द्वारा विवाह संस्कार प्रारम्भ किए जाने की कथा में भी विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है । दीर्घतमा ऋषि के गोधर्म में प्रवृत्त हो जाने पर महाभारतकार ने 'वितथमर्याद' शब्द का प्रयोग किया है । यदि दीर्घतमा द्वारा मर्यादा स्थापन से पूर्व विवाह संस्कार जैसी कोई मर्यादा ही नहीं थी, तो पत्नी ने कामाचारी पति को 'वितथमर्याद' माना ही क्यों ? उस अन्ध ऋषि ने तो कोई स्थापित मर्यादा भङ्ग ही नहीं की थी । इस 'वितथमर्याद' पद से ही दीर्घतमा के आख्यान की प्रामाणिकता स्वतः खण्डित हो जाती है ।

वाहीक, माहिष्मती, तथा उत्तरकुरु में स्त्रियों के स्वैराचार को विवाह संस्कार की स्थापना से पूर्व का मान लेना उचित नहीं है । वाहीक में उस समय यौन सम्बन्धों की शिथिलता का एक कारण यह भी हो सकता है कि विदेशी जातियों के आक्रमण का पहला भार वाहीक वासियों को ही झेलना पड़ता था अतः विभिन्न विदेशी आक्रान्ता जातियाँ वहाँ के निवासियों में घुल मिल गई

---

१. महाभारत ८.२७.८५. वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः ।
मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामचराश्च ताः ॥

२. छा०उप. ६.१.१.२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और उनकी संस्कृति को प्रभावित किया। विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप वहाँ नैतिक स्तर का ह्रास होता गया।

इसी प्रकार कर्णपर्व में कर्ण द्वारा मद्रदेश की स्त्रियों की निन्दा सापेक्ष थी। राजा शल्य माद्री के भाई होने के कारण पाण्डवों के मामा थे, किन्तु महाभारत युद्ध में वे कौरव पक्ष में थे और दुर्योधन के कहने से कर्ण के सारथि बने थे।[1] रथ चलाते समय अपशकुन होने और कर्ण द्वारा आत्मप्रशंसा किए जाने पर विक्षुब्ध शल्य ने कर्ण की भर्त्सना की और अर्जुन को अजेय बताया। इस अपमान से क्रुद्ध कर्ण ने शल्यशासित वाहीक और मद्रदेश की निन्दा करते हुए वहाँ की स्त्रियों में कामाचार के प्रचलन की ओर संकेत किया। शल्य द्वारा किए गए अपमान से कर्ण क्रुद्ध हुआ था और उस क्रोध में उसने जो अपशब्द कहे, उनसे एक सिद्धान्त स्थापित कर लेना उचित नहीं है। क्रोध में मानव आत्मसन्तुलन खो देता है, और जो विरोधी तथ्य उसे ज्ञात होते हैं और सामान्य अवस्था में अवचेतन में छिपे होते हैं, उनको वह कह डालता है। विशेषतया यदि अपनी इच्छापूर्ति में कोई भी वस्तु बाधक होती है तो मनुष्य क्रुद्ध होकर उसको मार्ग से हटाने का प्रयत्न करता है तथा यदि सम्भव हो तो उसे अधिक से अधिक क्षति पहुँचा देना चाहता है।[2] क्षति पहुँचाने की भावना के अन्तर्गत ही व्यक्ति अपशब्द कहता है। कर्ण ने शल्य के राज्य के प्रति जो अपशब्द कहे, उनसे यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

अतः महाभारत के सारे ही उपर्युक्त प्रसंग आंशिक सत्य हैं और इस कारण किसी भी प्रकार कामचार से विवाह संस्कार का उद्भव सिद्ध नहीं कर रहे हैं। स्वयं महाभारतकार एवं रामायणकार ने अनेकों स्थलों पर स्वीकार किया है कि विवाह एक सामान्य और स्वाभाविक संस्कार है जो हर सुसंस्कृत और सभ्य समाज में पाया जाता है। केवल नियमहीन तथा अव्यवस्थित अराजक समाज में ही विवाह मर्यादा नहीं होती।[3]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार की आद्यावस्था अथवा उद्भव के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। जैसा पहले लिखा जा चुका है, संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थों — वेदों — में भी विवाह-संस्कार स्थापित रूप में ही प्राप्त होता है। युवक युवती अपना साथी चुनने में स्वतन्त्र थे। विवाह करके तथा पतिगृह जाकर पत्नी गृहस्वामिनी बन जाती थी। पुरोहित वधू को सौभाग्यवती एवं पुत्रवती होने का आशीर्वाद देता था।[4] वर अपनी वधू के लिए पुत्रवती होने के साथ ही परस्पर सौ वर्ष जीने की कामना करता था।[5] कामाचार की स्थिति में सौ वर्ष तक साथ-साथ रहने की कामना ही निरर्थक होती।

---

१. महाभारत ८.२५.११. ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ।
वाहयिष्यामि तुरगान्विज्वरो भव सूतज॥

२. कोलमैन, जेम्स — एवनार्मल साइकोलॉजी, पृष्ठ ७५.

३. महाभारत १२.६८.२२. न विवाहाः समाजो वा यदि राजा न पालयेत्।
वा०रा० २.६७.११. नास्ति भार्याप्यराजके।

४. ऋ०वे० १४.१.१८. प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगाऽसति॥

५. ऋ०वे० १४.१.५२. ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अतः संस्कृत साहित्य से पूर्व भले ही स्वैराचरण रहा हो किन्तु श्रुत अथवा लिपिबद्ध किसी भी प्रकार के संस्कृत साहित्य के विस्तृत अवलोकन से हमें विवाह से पूर्व कामाचार की अवस्था के प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं।

विवाह की आवश्यकता एवं अनिवार्यता :

प्रत्येक जीव मरणधर्मा है। प्राणवान् होने के कारण मानव के लिए भी मरण अनिवार्य है। किन्तु मानव में बुद्धि होने के कारण इस अनिवार्य मरण से बचने की अभिलाषा भी उतनी ही तीव्र है। निरन्तर जीवित रह सकने की तीव्र अभिलाषा से मनुष्य निरन्तर नित्य नवीन आविष्कार एवं अनुसंधान करता चला आ रहा है। इस जिजीविषा से प्रेरित होकर मानव ने मृत्युञ्जय बनने के लिए कितने ही रसायनों, औषधों का सेवन किया तथा कितने ही अद्भुत आविष्कार किए; किन्तु उसे भारतीय मनीषियों द्वारा विचारित और संस्कृत साहित्य में प्रारम्भ से ही प्रतिपादित विवाह पद्धति से बढ़कर अमरत्व-प्राप्ति का अन्य कोई सरल और सुन्दर उपाय नहीं मिला। विवाह करके औरस सन्तान से मनुष्य अमरत्व पा जाता है। इसी लिए अपत्य के लिए सन्तति, सन्तान, तनय आदि शब्द व्यवहृत होते हैं— जिनकी मूल धातु तन् है और जिसका वास्तविक अर्थ है— फैलाना, प्रसार करना, विस्तार करना। अतः सन्तति, सन्तान तनय आदि शब्दों का अर्थ हुआ — फैलाने वाला, प्रसार करने वाला, विस्तार करने वाला। पिता-माता को, वंश को, कुल को आगे विस्तृत करने वाला ही तनय है। इस विस्तार के रूप में प्रजा से ही मनुष्य अमरत्व पा लेता है।[1] ऋग्वेद के साथ अन्य वेदों में भी अनेक स्थलों पर पुत्र प्राप्ति की कामना एवं प्रार्थना है जिससे मनुष्य निरन्तर वर्धित होता रहे, निरन्तर जीवित रह सके।[2]

विवाह करके एक स्थान पर गृहस्थरूप में रहने की प्रेरणा के अनेक कारण है। संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि केवल पुत्रवान् के रूप में जीवित रहने की कामना ही नहीं, अपितु अन्य अनेक तथ्य भी मनुष्य को विवाह की आवश्यकता का अनुभव कराते हैं। विवाह के बिना भी मनुष्य पुत्र प्राप्त कर सकता हैं, अथवा कामतृप्ति कर के अपनी यौन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है, किन्तु अनियन्त्रित यौनाचरण सदैव से ही वर्जित एवं गर्हित माना गया है।[3]

---

१. ऋ०वे० ५.४.१०. यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ।।
तै०ब्रा० १.५.५....६. प्रजामनु प्रजायसे तदुत ते मर्त्यामर्त्यम्।
महाभारत १.७४.६३. अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ।।
बौ०ध० २.६.११.३६.
या०स्मृ० १.५६. तलायं जायते स्वयम्।

२. ऋ०वे० १.१२.११. स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा। रयिं वीरवतीमिषम्।
अ०वे० १४.१.३२. ; १४.२.१३. ; १४.२.७२.

३. महाभारत १२.३२६.१४. इन्द्र को अहल्या धर्षण क कारण शाप
वा०रा० ७.१७.३२-३३ रावण को वेदवती का शाप।
महाभारत ५.१७. इन्द्राणी में आसक्ति के कारण नहुष की अधोगति

5408

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके अतिरिक्त यदि विवाह न किया जाय तो पुरुष स्त्री को लेकर एक स्थान पर सुखपूर्वक रहेगा कैसे ? यौन सम्बन्ध एवं गर्भस्थिति के बाद यदि पुरुष स्त्री से अलग हो जाए तो गर्भावस्था की असमर्थता और सन्तति की आश्रयहीनता मानवजाति को ही नष्ट करने का कारण बन सकती है। पशुपक्षी तक सन्तति के संरक्षण के लिए नीड बना कर रहते हैं। पशुओं-पक्षियों में तो प्राय: सन्तति की संख्या बहुत अधिक होती है। किन्तु मनुष्य में गर्भकाल लम्बा होने और सन्तति-संख्या अपेक्षाकृत कम होने के कारण गर्भवती स्त्री का पालन एवं संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। शिशु जन्म लेने के उपरान्त भी दीर्घकाल तक मातृदुग्ध पर आश्रित रहता है। शिशु और निर्बल माता की सेवा और सहायता से ही प्रजा की सुदीर्घ आयु की आशा होती है।

मनुष्य स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है। अपनी सामाजिकता के कारण ही मनुष्य एकाकी नहीं रह पाता। बृहदारण्यक उपनिषद्[1] में स्पष्ट कहा गया है 'आरम्भ में पुरुषाकार आत्मा ही थी। उसने भली भाँति अवलोकन कर आत्मा से भिन्न कोई दूसरा व्यक्त पदार्थ नहीं देखा। निश्चयपूर्वक उस अकेले ने रमण नहीं किया, इसी कारण आज भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता। उस पुरुष ने दूसरे साथी को चाहा....उसने इसी आत्मा को दो रूपों में परिवर्तित किया, उस समय वे पति पत्नी हुए।' उपनिषद् का यह कथन स्पष्ट प्रतिपादित करता है कि मनुष्य अपनी सामाजिक प्रवृत्ति के कारण ही विवाह करके परिवार बना कर रहता है।

विवाह की आवश्यकता का अन्य कारण भी है। विवाह करके मनुष्य पत्नी के साथ अपने कर्त्तव्यों का भली प्रकार निर्वाह कर पाता है। परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व रखने वाले पति-पत्नी अपनी योग्यतानुसार श्रम का विभाजन करके सुगमतापूर्वक जीवनयापन कर लेते हैं। पति यदि अर्थोपार्जन करके आजीविका का प्रबन्ध करता है और सामाजिक स्तर को उन्नत करता है, तो पत्नी भी भोजनादि का प्रबन्ध करके, घर को सजा सँवार कर तथा पति के श्रम को दूर करके उसे प्रफुल्लचित्त कर देती है। धार्मिक क्रियाओं को मनुष्य पत्नी के साथ ही निभाता है — इसीलिए सहधर्मचारी और सहधर्मचारिणी नाम प्राप्त होते हैं। कुमारसम्भव में वर्णन है कि वसिष्ठ एवं अरुन्धती को देखकर शिव के मन में भी पत्नी के प्रति आदर-भावना जागृत हुई क्योंकि समस्त धार्मिक क्रियाएँ पत्नी होने पर ही पूर्ण होती हैं।[2]

केवल धर्मबन्धन रूप में ही विवाह की आवश्यकता नहीं है अपितु 'भावबन्धन' भी विवाह से ही सम्भव है।[3] वल्लभ ने रघुवंश की टीका करते हुए ऊपर निर्दिष्ट श्लोक में प्रयुक्त 'भावबन्धन' पद की व्याख्या 'चेतोवृत्तिगुम्फन' शब्द से की है, जिसका तात्पर्य है — दो हृदयों के विभिन्न भावों का पूर्ण

---

१. बृहदा.उप. १.४.१ ..३. आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः।
सोऽनुवीक्ष्य नाऽन्यदात्मनोऽपश्यत्। .... स वै नैव रेमे।
तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्।
स हैतावानास यथास्त्रीपुमांसौ परिष्वक्तौ। सइममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्;
ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।

२. कु०स० ६.१३ तद्दर्शनादभूच्छम्भो भूयान्दारार्थसादरः।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्॥

३. रघुवंश ३.२४ रथांगनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रूप से एकात्म हो जाना। जिसके प्रति हम प्यार करते हैं उसके प्रति हमारा स्निग्ध व्यवहार प्रेम है। भाव हृदय का व्यापार है अतः विवाह में धर्म के कर्तव्य पालन के अतिरिक्त पारस्परिक प्रणय भी है।यह प्रणय ऐसा है जो दुःख अथवा सुख – किसी में भी स्वरूप परिवर्तित नहीं करता है। भवभूति ने उत्तररामचरितम् में दाम्पत्य प्रणय का आदर्श वर्णन किया है—[1] 'सुख-दुख में जो समान रहता है, हर अवस्था में अनुगत रहता है, जहाँ हृदय विश्रान्ति अनुभव करता है, वृद्धावस्था भी जिसके रस को नष्ट नहीं कर पाती, समय क्रम से आवरण हटते जाने पर जो क्रमशः परिणत होकर प्रेमसार रूप में स्थित होता है – वह दाम्पत्य का (अनुराग रूप) कल्याण प्रार्थनीय है।' यह पारस्परिक प्रणय एक दूसरे के प्रति आदर को जागृत करता है इसीलिए कालिदास ने वर को 'अर्हत्' और कन्या को 'सत्क्रिया' कहा है।[2] इसीलिए विवाह कोई सामान्य वस्तु नहीं, वरन् 'रत्नकांचनसंयोग' है।[3] विवाह तो जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध है।[4] प्रकृति और प्रत्यय मिल कर जैसे शब्दों का निर्माण कर पाते हैं वैसे ही स्त्री और पुरुष विवाह द्वारा संयुक्त होकर इस जीवन में दो हृदयों को एकरूप करके सन्तान की सृष्टि करते हैं।[5]

वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक सर्वत्र ही विवाह को एक आवश्यक कृत्य बताया गया है। ऋग्वेद से ही विवाह का नियमबद्ध रूप प्राप्त होता है। विवाह न करने वाला पुरुष यज्ञ करने का अधिकारी ही नहीं था।[6] विवाह का पवित्र जीवन सत्य और कर्तव्य की वेदी पर प्रतिष्ठित होता था।[7] विवाहित दम्पती विधिपूर्वक गार्हपत्याग्नि में आहुति डालते, देवों एवं पितरों की पूजा करते और सन्तति उत्पन्न करते थे, जिससे वंश परम्परा चलती रहे। इस प्रकार की धारणा होने से स्वभावतः ही विवाह को आवश्यक और वाञ्छनीय माना गया। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ईसापूर्व पाँचवीं शती तक यद्यपि विवाह स्त्री-पुरुष दोनों के लिए अत्यधिक वाञ्छनीय था, फिर भी नितान्त अनिवार्य नहीं था। योग्य साथी का यदि चुनाव न हो सके, तो समाज विवाह करने पर बल नहीं देता था। वैदिक

---

१. उ०रा० १.३९. अद्वैतं सुखदुखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते॥

२. अभि०शा० ५.१५. त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः,
शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।
समानयँस्तुल्यगुणं वधूवरं,
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः॥

३. रघुवंश ६.७९. कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन॥

४. रघुवंश ७.१५. मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्।

५. रघुवंश ११.५६. सोऽभवद्वरवधूसमागमः प्रत्ययप्रकृतियोगसन्निभः।

६. तै०ब्रा० २.२.२.६. अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः।

७. ऋ०वे० १०.८५.२४. ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साहित्य में आजन्म ब्रह्मचारी रहने वाले व्यक्तियों का भी उल्लेख है। 'अमाजूः' एक विशिष्ट विशेषण है जो पिता के घर में वृद्ध हो जाने वाली कन्या के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1] कन्या के अविवाहित रह जाने में प्रायः सामान्य कारण यह होता था कि कन्या को कोई अङ्गविकृति या ठीक न होने वाला रोग हो। घोषा का उदाहरण ऐसा ही है जो अश्विनीकुमारों द्वारा त्वचागत रोग के ठीक कर दिए जाने से पूर्व विवाह नहीं कर सकी।[2] उपनिषत्काल तक भी विवाह संस्कार वाञ्छनीय अवश्य था पर अनिवार्य नहीं बना था। सुलभा जैसी अनेकों स्त्रियों ने आध्यात्मिक मुक्ति की इच्छा के कारण विवाह नहीं किया था।[3]

विवाह की यह आवश्यकता एवं वाञ्छनीयता धीरे-धीरे तीसरी शती ईसापूर्व तक अनिवार्य बन गई। कन्याओं के लिए अविवाहिता रह सकने जैसी कोई सम्भावना ही नहीं बची। स्त्रियों ने बहुत अधिक संख्या में बौद्ध या जैन मठों में दीक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया। दीक्षित होने से पूर्व वे माता पिता की अनुमति तक न लेती थीं। किन्तु दीक्षा लेने के पश्चात् जब स्त्रियाँ कठोर व्रत पालन न करके मार्ग-भ्रष्ट हुई तब समाज में निन्दा हुई और कन्याओं के लिए विवाह अनिवार्य होता गया।[4]

विवाह की परिभाषा :

संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार की इस आवश्यकता, वाञ्छनीयता एवं अनिवार्यता को देख कर स्वभावतः यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि वस्तुतः विवाह है क्या ? क्या केवल यौन-तृप्ति की मर्यादा के लिए विवाह संस्कार है ? या पुत्र-प्राप्ति की कामना से किया गया स्त्री-पुरुष सम्बन्ध विवाह है ? अथवा यह विवाह संस्कार केवल एक ऊपरी बन्धन मात्र है ? या स्त्री-पुरुष का वास्तविक तादात्म्य ही विवाह है ?

विवाह की कोई अलग से परिभाषा संस्कृत साहित्य के विभिन्न धर्मशास्त्रों अथवा ग्रन्थों में प्राप्त न होने पर भी स्मृतियों एवं सूत्रकारों द्वारा किये गये विधानों से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि स्त्री, पुरुष और समाज – इन सभी के कल्याण-निमित्त किया जाने वाला यह संस्कार अपने स्वरूप में अनुपम अद्भुत व श्रेयकारक है। विवाह के उद्देश्यों को देखने से जान पड़ता है कि विवाह केवल व्यक्तिगत लाभ नहीं अपितु एक सामाजिक उत्तरदायित्व था। यद्यपि कामतृप्ति को भी विवाह का एक प्रयोजन माना गया है तथापि धर्म और प्रजा– इन दो उद्देश्यों के कारण मनुष्य को सदैव यह स्मरण रहता था कि वह केवल अपने लिए ही नहीं अपितु दूसरों के लिए भी जीवित है। विवाह संस्कार स्त्री-पुरुष के पारस्परिक अभेद को स्वीकार करता है। डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में[5] 'स्त्री और पुरुष दोनों नदी के दो तटों की भाँति सहयुक्त हैं। दोनों के बीच में जीवन की धारा प्रवाहित होती है। वैदिक साहित्य में स्त्री और पुरुष की उपमा पृथिवी और

---

१. ऋ०वे० २.१७.७., १०.३९.३.

२. ऋ०वे० १.११७.७., १०.३९.३-५.

३. महाभारत १२.३०८.१८४. साहं तस्मिन्कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥

४. अल्तेकर ए.एस.—पोज़ीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन, पृष्ठ ३३.

५. वेदालंकार, हरिदत्त—हिन्दू परिवार मीमांसा—भूमिका, पृष्ठ २२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्युलोक से दी गई है। जैसे शुक्ति के दो दलों के बीच मोती की स्थिति होती है, ऐसे ही स्त्री और पुरुष इन दोनों के मध्य सन्तति है। द्यावा-पृथिवी एक ही संस्थान के परस्परक पूरक हैं। जब आकाशचारी मेघ वृष्टि के द्वारा पृथिवी को गर्भ धारण कराते हैं, तब वृक्ष-वनस्पतियों का जन्म होता है। यही स्थिति पति-पत्नी की है। वे दोनों दो होते हुए भी एक हैं। दोनों के इस अभेद की स्वीकृति विवाह संस्कार है।'

विवाह संस्कार स्त्री-पुरुष की अपूर्णता को पूर्ण करने का अवसर प्रदान करता है। वैदिक साहित्य में स्त्री-पुरुष के परस्पर सापेक्ष होने को अनेक प्रकार से समझाया गया है।[१] डा० अग्रवाल के ही शब्दों में स्त्री वृत्त का व्यास है और पुरुष परिधि है। जिस प्रकार ऋग्वेद के मन्त्र को आधार बना कर साम के गीत में परिवर्द्धित किया जाता है – ऋचि अध्यूढं साम गीयते (छान्दोग्य उपनिषद् १.६.१.)–और जिस प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है उसी प्रकार स्त्री के जीवन से गुणित होकर पुरुष का जीवन बनता है। यही पति-पत्नी या गृहस्थ के जीवन का साम सङ्गीत है। द्युलोक और पृथिवीलोक के साथ पुरुष और स्त्री या पति और पत्नी की उपमा देने का स्पष्ट उद्देश्य यही है कि विश्व-रचना के मूलभूत हेतु की भाँति वे दोनों द्विधा विभक्त होते हुए भी जीवन के समस्त व्यापारों में एक दूसरे के लिए अनिवार्य हैं।'[२] मनु (९.४५.) ने 'यो भर्ता सा स्मृतांगना' कह कर यही तथ्य प्रतिपादित करना चाहा है कि गृहस्थ जीवन में पति और पत्नी दोनों का ही विस्तार समान है। पत्नी पति से हीन नहीं है और पति पत्नी से श्रेष्ठ नहीं है। दोनों मिलकर गृहस्थ-तन्त्र का ताना-बाना बनाते हैं।

विवाह से दो विषमलिंगी व्यक्ति मिलकर सामाजिक मान्यता और धार्मिक संस्कारपूर्वक धर्म, प्रजा, यौन-सम्बन्ध और व्यक्तित्व के विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति नियमित रूप से करते हैं और मानवता के नाते इन सुखों के बदले कुछ उत्तरदायित्वों को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करते हैं। अतः संस्कृत साहित्य में प्राप्त विवाह संस्कार के सामान्य स्वरूप के आधार पर विवाह संस्कार की परिभाषा कुछ इस प्रकार स्थिर की जा सकती है—

समाज से मान्यता प्राप्त कुछ धार्मिक कृत्यों और विधियों द्वारा दो स्त्री-पुरुष का विधिवत् मिलन ही विवाह संस्कार है जिसका उद्देश्य धर्मकार्य, पुत्रप्राप्ति एवं रति के प्रयोजन को पूर्ण करना है।

विवाह एक धार्मिक संस्कार है :

विवाह संस्कार की इस प्रकार की परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत साहित्य में प्राप्त विवाह संस्कार वैधानिक अथवा सामाजिक समझौता मात्र नहीं है वरन् एक धार्मिक संस्कार है। वैदिक साहित्य के एकाध प्रसंगों को लेकर कुछ समाजशास्त्री संस्कृत साहित्य में विवाह को

---

१. अ०वे० १४.२.७१. अमोहमस्मि सा त्व सामाहमस्म्यृक्
द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ऐ०ब्रा० ८.२७.। बृहदा.उप. ६.४.२०.। पा.गृ. १.६.३.
आ०गृ० १.५.५. अमोहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोहं द्यौरहं
पृथिवी त्वं सामाहमृक् त्वम्।

२. वेदालंकार, हरिदत्त—हिन्दू परिवार मीमांसा, भूमिका पृष्ठ २३.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एक समझौता मात्र सिद्ध करने का प्रयत्न भी करते हैं। यथा–तैत्तिरीय ब्राह्मण में सीता-सावित्री का आख्यान है जिसमें वह प्रणयी सोम से विवाह करने को मना कर देती है यदि वह उसकी शर्तों का पालन न करे।[१] उर्वशी ने भी पुरुरवा से कुछ शर्तों पर ही विवाह करने की सम्मति दी थी और उस शर्त के भंग हो जाने पर वह पति को छोड़ कर चली गई।[२] महाभारत में शान्तनु एवं गंगा के विवाह का वर्णन है, जहाँ गंगा ने समयपूर्वक राजा की पत्नी बनने का वचन दिया और उस समय के भंग हो जाने पर गंगा भी शान्तनु को छोड़कर चली गई।[३] इन कथाओं में विवाह को समझौता मानने की प्रवृत्ति की झलक मात्र मिलती है। पर संस्कृत साहित्य में इस प्रवृत्ति को प्रश्रय प्राप्त नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त उर्वशी तो अप्सरा थी, जो सभी देवताओं के लिए सहज सुलभ थी। साधारण नायिका के समान उर्वशी[४] के आचरण से विवाह संस्कार जैसी गौरवमण्डित प्रथा के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त निश्चित करना उचित नहीं है। गंगा ने भी वसुदेवों को शापमुक्त करने के लिए ही शान्तनु से विवाह किया था और वह कार्य पूरा हो जाने पर ही उसने वह सम्बन्ध त्यागा। ये सम्बन्ध एक लक्ष्यपूर्ति के लिए थे, भौतिक लाभ के लिए नहीं। अतः सामान्य प्रकार के नियमित विवाह के अन्तर्गत इन्हें नहीं ग्रहण किया जा सकता। संस्कृत साहित्य में हर स्थल पर विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में प्रतिपादित किया गया है। विवाह की पूर्णता के लिए सप्तपदी, पाणिग्रहण, होम आदि धार्मिक कृत्यों का सम्पन्न किया जाना आवश्यक माना गया है। विवाह को धार्मिक संस्कार के रूप में मानने के लिए संस्कृत साहित्य में पर्याप्त कारण एवं उदाहरण प्राप्त होते हैं।

(१) विवाह संस्कार की पूर्णता के लिए कुछ ऐसे धार्मिक कृत्यों को सम्पादित करना आवश्यक है जिनके अभाव में समाज विवाह को मान्यता प्रदान नहीं करता। पाणिग्रहण के समय पिता अपनी पुत्री का हाथ वर के हाथों में देता है और उन पर जल छिड़कता है।[५] अग्नि को परमेश्वर का तेजरूप माना जाता है और वैवाहिक होम में अग्नि के सम्मुख भगवान् की साक्षी में वर-वधू परस्पर साथ-साथ जीवन बिताने की प्रतिज्ञा करते हैं।[६] हिन्दुओं के लिए वेदमन्त्र ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण पवित्र हैं और वेदमन्त्रों के उच्चारणपूर्वक ही विवाह संस्कार सम्पन्न होता है, अतः यह एक धार्मिक संस्कार है।

---

१. तै०ब्रा० २.३.१०.

२. ऋ०वे० १०.९५. शत०ब्रा० ११.५.१.१....

३. महाभारत १.९२.३३-३५.;१.९२.४७-५४

४. वा०रा० ७.२६.४०. पतिरप्सरसां नास्ति।

५. वा०रा० २.२९.१८. इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा॥
महाभारत १३.४४.५३. पाणिग्रहस्य भार्या स्याद् यस्य चाद्भिः प्रदीयते।

६. अ०वे० १४.१.४९. ; रघुवंश ७.२४.
कु०स० ७.८०. तौ दम्पती त्रिः परिणीय वह्निम्............।
महाभारत १.१९०.११. ततः समाधाय स वेदपारगः।
जुहाव मन्त्रैर्ज्वलितं हुताशनः॥
वा०रा० ७.१२.२०. प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत् पाणिसंग्रहम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(२) संस्कृत साहित्य में विवाह एक पवित्र तथा ईश्वरीय बन्धन है, अतः अटल है। यह अविच्छेद्य है और इसीलिए यह एक धार्मिक संस्कार है। विवाह का जीवन सत्य और कर्तव्य पर प्रतिष्ठित होता था।[1] समाज की नैतिकता और पवित्रता विवाह की आधारभित्ति होती थी। इस भित्ति के कभी भी परिवर्तित न होने के कारण विवाह भी अविच्छेद्य होता था। विवाह के इस अविच्छेद्य स्वरूप के विरुद्ध हमें वाल्मीकि रामायण में दो ही उदाहरण प्राप्त होते हैं। कैकेयी की माता को पिता ने अपने जीवन काल में त्याग दिया था व घर से निकाल कर स्वयं कुबेर के समान फिर विहार करने लगे थे।[2] दूसरी घटना राजा दशरथ की है। राम-वनवास का वरदान माँगने के कारण राजा दशरथ ने क्रोधाविष्ट होकर अपनी मृत्यु से पूर्व ही कैकेयी को पत्नी पद से वञ्चित कर दिया था।[3] ये परित्याग विवाह संस्कार की धार्मिकता पर आघात पहुँचाते हैं, किन्तु इन दोनों असामान्य घटनाओं का कारण यह था कि इन दोनों नारियों ने अपने स्वार्थ को सर्वोपरि रख कर अपने पति के प्राणों और देश के हित की भी चिन्ता नहीं की थी। इस कारण ये त्याग दण्ड थे, विवाह का विच्छेद नहीं माने जा सकते। इन दोनों घटनाओं में भी कैकेयी की माँ का परित्याग तो वस्तुतः जीवन भर का हो गया क्योंकि परित्याग करने के उपरान्त कैकेयी के पिता प्रसन्नतापूर्वक समय यापन करने लगे थे। किन्तु कैकेयी के व्यवहार से सन्तप्त राजा दशरथ अगले ही दिन स्वर्ग सिधार गए और उनके पश्चात् राम आदि ने कैकेयी को मातृवत् सम्मान ही दिया मानों पिता ने उन्हें त्यागा ही न हो।

(३) विवाह का सर्वप्रथम उद्देश्य धार्मिक कर्तव्यपालन है। धार्मिक कृत्यों में विभिन्न यज्ञ प्रमुख हैं। पत्नी को धर्मपत्नी तथा सहधर्मिणी कहना ही इस तथ्य का प्रमाण है[4] कि विवाह एक धार्मिक संस्कार है।

(४) विवाह को धार्मिक संस्कार के रूप में माने जाने का एक कारण और खोजा जा सकता है यद्यपि इस प्रमाण की साक्षी वैदिक साहित्य नहीं देता अपितु परवर्ती स्मृति-साहित्य देता है।

वैदिक युग में मनुष्य जीवन में जितने भी संस्कार थे, वे सामान्य रूप में स्त्री पुरुष सभी के लिए थे। उपनयन संस्कार तक कन्या एवं पुत्र सबका ही किया जाता था। यजुर्वेद में स्पष्ट आया है कि 'ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, भृत्य, स्त्रियों आदि के लिए उपदेश करता हूँ।'[5] इसके अतिरिक्त कन्याएँ भी ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करती थीं 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।' (अथर्ववेद ११.५.१८.)

---

१. ऋ०वे० १०.८५.२४. ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके।

२. वा०रा० २.३५.२६. मातरं ते निरस्याशु विजहार कुबेरवत्।

३. वा०रा० २.१४.१४. यस्ते मन्त्रकृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः।
सन्त्यजामि स्वजं चैव तव पुत्रं सह त्वया॥

वा०रा० २.४२.६-९.

४. वा०रा० ४.२४.३८.

५. य०वे० २६.२. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार यद्यपि वैदिक युग में कन्या एवं पुत्र सभी के लिए सभी संस्कारों का विधान था तथापि कालक्रम में यह स्थिति परिवर्तित होती गई और स्त्री के लिए केवल एक संस्कार का विधान रह गया और वह था विवाह संस्कार।[1] विवाह ही स्त्री को धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में पूर्णता प्रदान करता है, अतः विवाह को धार्मिक संस्कार का स्वरूप मिला।

विवाह का उद्देश्य :

संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार के तीन प्रमुख उद्देश्य प्राप्त होते हैं।[2] प्रथमतः, धर्मकार्यों को करने के लिए विवाह किया जाता था। द्वितीयतः, पुत्रप्राप्ति के लिए विवाह आवश्यक था और, तृतीयतः स्वाभाविक कामतृप्ति अथवा रति विवाह का प्रयोजन थी। प्रयोजनों के तीन होते हुए भी सूत्रकारों ने धर्मकार्य को पहला और रति को अन्तिम स्थान दिया। मनुस्मृति ने स्पष्ट व्यवस्था दी—

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥(मनुस्मृति ९.२८.)

याज्ञवल्क्य ने विवाह के दो ही प्रयोजन बताए – पुत्र-पौत्रादि प्राप्ति एवं स्वर्ग प्राप्ति।[3] किन्तु वस्तुतः तीसरा रति रूप प्रयोजन भी स्वतः सिद्ध हो जाता है। स्वंग-प्राप्ति धर्मकार्यो के ही परिणाम-स्वरूप होती है।

विवाह प्रयोजन – धर्म

वैदिक युग में धर्मपालन के प्रत्येक क्षेत्र में यज्ञ आवश्यक था। प्रकृति के विभिन्न रूपों को विभिन्न देव मान कर वैदिक ऋषियों ने विभिन्न मंत्रों द्वारा अग्नि में आहुति डालकर उन देवों की उपासना की। अतः यज्ञ करना वैदिक कर्मकाण्ड का सबसे प्रमुख अङ्ग था। यज्ञ में पुरुष के साथ उसकी विवाहिता स्त्री का बैठना अनिवार्य था, अतः विवाह के उद्देश्यों अथवा प्रयोजनों में सर्वप्रथम उद्देश्य था, धार्मिक कर्त्तव्यों को सुचारु रूप से निवाहना। पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टिकोणों से यज्ञ का अत्यधिक महत्त्व है, किन्तु पत्नी के बिना यह धार्मिक कृत्य अपूर्ण है।[4]

---

१. म०स्मृ० २.६७. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासः गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥
वि०ध० २२.३२. स्त्रीणां विवाहः संस्कारः।

२. म. स्मृ. ९.२५--२७. एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा।
प्रत्येह च सुखोदर्कान् प्रजाधर्मान्निबोधत ॥
प्रजननार्थं महाभागाः पूर्जाहाः गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥

३. या०स्मृ० १.७८ लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥

४. शत०ब्रा० ५.१.६.१० अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः।
तै०ब्रा० २२.२.६.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैयाकरण पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति ही इस प्रकार दी है– जो पति के साथ यज्ञ में बैठे वही पत्नी है ।[1] यज्ञ में पत्नी का साथ अनिवार्य होने के कारण एक पत्नीव्रती राम को अश्वमेध यज्ञ में सीता की निर्वासन-जन्य अनुपस्थिति के कारण उनकी स्वर्ण-प्रतिमा बनवा कर रखनी पड़ी ।[2] याज्ञवल्क्य एक पत्नी के मर जाने पर यज्ञ-कार्य के लिए तुरन्त दूसरी स्त्री से विवाह कर लेने का आदेश देते है ।[3] गोभिलस्मृति ने स्पष्ट विधान किया है कि पत्नी के मर जाने पर भी ऐसा उपाय करे कि वैदिक अग्नि का त्याग न करना पड़े ।[4]

कालिदास ने अपने काव्यों एवं नाटकों में विवाह के धर्म सम्बन्धी प्रयोजन पर बहुत बल दिया । कामदेव पर विजय पाने वाले शिव के सम्मुख जब सप्तर्षि आए तो वसिष्ठ और अरुन्धती के उस युगल को देखकर शिव के मन में भी विवाह की इच्छा जागृत हुई क्योंकि पतिव्रता स्त्री ही धर्मसम्बन्धी क्रियाओं की आधारभित्ति है ।[5] कालिदास ने तो आह्निक अग्निहोत्र तक को पत्नी के साथ करने को कहा है । 'सहधर्मचरणाय' पत्नी अनिवार्य है और पत्नी प्राप्त करने के लिए विवाह अनिवार्य है । अतः धर्म-पालन विवाह का प्रयोजन है । पुरुष के जीवन में विवाह द्वारा प्राप्त पत्नी की धार्मिक महत्ता के कारण ही उसे पत्नी, सहधर्मचारिणी, सहधर्मिणी आदि संज्ञाओं से व्यवहृत किया जाता है ।[6]

संस्कृत साहित्य में जीवन में अनेक धार्मिक कर्तव्यों के परिपालन का विधान है। ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और और अतिथियज्ञ— इन पञ्च यज्ञों को प्रतिदिन करने तथा देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण— इन तीन ऋणों से भली प्रकार उऋण होने के लिए गृहस्थाश्रम का विधान किया गया है[7] विवाह करके पत्नी का सहयोग पाए बिना इनमें से अधिकतर कर्तव्यों का

---

१. अष्टा० ४.१.१३३. पत्युर्नो यज्ञसंयोगे

२. गो. स्मृ. ३.१० रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् ।
ईजे यज्ञैर्बहुविधैः सह भ्रातृभिरर्चितैः ॥
वा०रा० ७.९१..२५ काञ्चनीं मम पत्नींच
उ०रा० -तृतीय अङ्क— किम् परिणीतमपि ? नहि नहि ।
का तर्हि यज्ञे तव सहधर्मचारिणी ?
हिरण्यमयी प्रतिकृतिः सीतायाः ।

३. या०स्मृ १.८९ दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन् ॥

४. गो०स्मृ० ३.९.

५. कु०स० ६.१३. तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूयान् दारार्थमादरः ।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् ॥

६. कु०स० ८.२९.
अभि०शा० पञ्चम अङ्क—तदिदानीं आपन्नसत्वेयं प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति ।
अभि०शा० ६.२४.

७. म०स्मृ० ३.६९.७० पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
तै०सं० ६.३.१०.५. जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभि ऋणवान् जायते । ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणो यः पुत्रो यज्वा ब्रह्मचारिवासी ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निर्वाह एकाकी ही कर सकना पुरुष के लिए सम्भव नहीं है। 'मर्यो मिथुना यजत्रः'— विवाह कर के ही मनुष्य यज्ञशील बन सकता है। तब ही उसके लिए अतिथियज्ञ एवं देवयज्ञ सम्पन्न कर सकना सरल हो जाता है।

संस्कृत साहित्य में प्राप्त विवाह संस्कार के इस धर्मरूपी उद्देश्य को इस दार्शनिक दृष्टिकोण से भी प्रतिपादित किया जा सकता है कि यह सम्पूर्ण विश्व ही शिव एवं शक्ति का एक महायज्ञ है। अतः यज्ञ में भी पति एवं पत्नी का योग होना ही चाहिए। शतपथ ब्राह्मण आदि में पत्नीहीन पुरुष को अयज्ञ इसीलिए माना गया है। पुरुष एवं स्त्री के दो अपूर्ण शरीर एक दूसरे के पूरक बन कर जब एकचित्त होकर, एक संकल्प, एक लक्ष्य लेकर अग्रसर होते हैं तभी यज्ञ सम्पूर्ण होता है। पुरुष के बिना न तो स्त्री ही कर्तव्यपथ पर चल पाती है और न ही स्त्री के बिना पुरुष अपने कर्तव्यों का उचित निर्वाह कर पाता है।

डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने हिन्दू परिवार के सम्बन्ध में धर्म शब्द का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है।[1] उन्हीं के शब्दों में धर्म से तात्पर्य उन सत्यात्मक नियमों से है जो व्यक्ति और समाज के जीवन को धारण करते हैं। यह धर्म कर्तव्य के रूप में परिवार के प्रत्येक प्राणी के सम्मुख आता है। पिता, माता, पुत्र, बन्धु – जिनका परिवार से नाता होता है वे सब कर्तव्य के ऋण से बँधे होते हैं। जहाँ कर्तव्य है वहाँ विरोध की स्थिति नहीं रह जाती। कर्तव्य का आग्रह व्यक्ति के विचार और कर्म को तनाव से ऊपर उठा देता है। उसके द्वारा व्यक्ति सेवा का मार्ग अपनाता है। इसी भावना का दूसरा नाम यज्ञ है। जिसमें व्यक्ति दूसरे के लिए अपने स्वार्थ और सुख का समर्पण करके दूसरों की सहायता करने की युक्ति प्राप्त करता है, उस जीवन-विधि का नाम यज्ञ है।' डॉक्टर अग्रवाल की यज्ञ सम्बन्धी यह व्याख्या पति-पत्नी के सम्बन्ध में बिलकुल ठीक बैठती है। पञ्च महायज्ञ हों या तीन ऋण— सभी को सम्पन्न करने में पत्नी नितान्त अनिवार्य है, अन्यथा पुरुष उऋण हो ही नहीं सकता।

विवाह के तीन प्रयोजन संस्कृत साहित्य में प्राप्त होने पर भी महाभारत में भीष्म का स्पष्ट कथन है कि धन के लिए अथवा यौनेच्छापूर्ति मात्र के लिए विवाह नहीं किया जाता। अपितु देव व पितरों को बलि देने के लिए एवं धर्म के उचित पालन के लिए विवाह किया जाता है।[2]

विवाह प्रयोजन - पुत्र प्राप्ति - प्रजा :

धर्म के गहन दायित्वों को वहन करने के लिए किया जाने वाला विवाह संस्कार औरस पुत्र की प्राप्ति का भी एक मात्र साधन है। पुत्र प्राप्ति को संस्कृत साहित्य में विवाह का दूसरा प्रयोजन माना गया है। मनु ने तो पुत्र प्राप्ति को सर्वप्रथम प्रयोजन के रूप में उद्धृत किया है।[3] सन्तति से मनुष्य अपने को अमर मानता है।

ऋग्वेद में भी मनुष्य की पुत्राकांक्षा की तीव्रता स्थल-स्थल पर अभिव्यक्त हुई है।[4]

---

१. वेदालंकार, हरिदत्त— हिन्दू परिवार मीमांसा–भूमिका— पृष्ठ २४.
२. महाभारत १३.२०.६१-६३.
३. म० स्मृ० ९.२८.
४. ऋ० वे० १०.८५.३६;१०.८५.४३. – आ नः प्रजां जनयतु।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर विभिन्न देवों से अनेक पुत्र प्रदान करके सौभाग्ययुक्त बनाने की प्रार्थना की गई है।[१] केवल ऋग्वेद में ही नहीं वरन् अन्य वेदों में भी पुत्र प्राप्ति की यह कामना शतमुख से ध्वनित होती है।[२] गुरु के समीप रह कर विद्याध्ययन करने वाले शिष्य को जब विद्या समाप्ति पर आचार्य उपदेश देते थे तब प्रारम्भ से ही उसे अनुशासित करते थे कि स्नातक होकर प्रजा के उस अविच्छिन्न तन्तु को कभी मत तोड़ना।[३] अर्थात् विद्याध्ययन करके विवाह करना जिससे गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो कर पुत्र उत्पन्न कर सको और मानव जाति की निरन्तरता बनाए रख सको। सन्तति के बिना स्त्री और पुरुष दोनों अपूर्ण हैं। विवाह के माध्यम से परस्पर संयुक्त होकर पति पत्नी सन्तति धारण करते है और अपनी अपूर्णता को पूर्णता में परिणत करते है। शतपथ ब्राह्मण ने कहा 'जब तक पुरुष पत्नी को प्राप्त नहीं करता, जब तक प्रजा उत्पन्न नहीं करता, तब तक वह असर्व' है।'[४] विवाह संस्कार के मंत्रों में ही वर कन्या से कहता है 'मैं तुमसे उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिए ही विवाह कर रहा हूँ। हम दोनों मिल कर उत्तम संतान उत्पन्न करें और बहुत पुत्रों को प्राप्त करें।'[५] विवाह संस्कार की विधि की समाप्ति पर पुरोहित गुरुजनों और आत्मीयजनों द्वारा वरवधू को सन्ततिलाभ का जो आशीर्वाद दिया जाता है, वह भी इसी तथ्य का द्योतक है कि विवाह के लक्ष्यों में से एक पुत्रोत्पत्ति है।

सन्तति में भी विशिष्ट रूप से पुत्र प्राप्ति की कामना का कारण यह है कि कन्या विवाहोपरान्त पतिगृह चली जाती है, अतः कन्या से अपनी वंशपरम्परा आगे नहीं बढ़ती। पुत्र वंशपरम्परा को आगे बढ़ाता है, इसीलिए उसको 'वंशकरः' कहा जाता है।[६] पुत्र ही पिण्डदान देकर, तर्पणादि करके पितृ-ऋण को चुका पाता है अतः विवाह का प्रयोजन पुत्रप्राप्ति है।

ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्रोत्पत्ति को ही मनुष्य के लिए परम धर्म बताया गया है– 'मल, अजिन, श्मश्रु एवं तप का क्या उपयोग? हे ब्राह्मण, पुत्र की इच्छा करो–वही वर्णनातीत लोक है।[७] डा० काणे ने इस श्लोक के विभिन्न शब्दों को विभिन्न आश्रमों का संकेत रूप माना है।[८] उनके अनुसार 'अजिन' अर्थात् मृगचर्म से ब्रह्मचर्याश्रम का बोध होता है क्योंकि गौतम धर्मसूत्र में ब्रह्मचारी के लिए जटा एवं अजिन आदि धारण करने की व्यवस्था की गई है।[९] इसी प्रकार

---

१. ऋ० वे० १.९०.२० ; ३.१.२३ ; १०.८५.३८ ; १०.८५.४५.

२. अ० वे० १४.१.९४ ; १३.१.१९ ; १८.३.१७ ; १९.७१.१ ; ७.३३.१. ; ७.८१.५.

३. तै० उप० आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य
प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सीः।

४. शत० ब्रा० ५.२.१.१०. तस्माद्यावज्जायां न विन्दते,
नैव तावत्प्रजायतेऽसर्वो हि तावत्।

५. अ०वे० १४.१.५२. मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्।

६. वा०रा० १.३८.१२. एको वंशकरो वास्तु बहवो वा महाबलाः।
कीर्तिमन्तो महोत्साहाः का वा कं वरमिच्छति॥

७. ऐ०ब्रा० ७.१३.५. किं नु मलं किमजिनं किं श्मश्रूणि किं तपः।
पुत्रं ब्राह्मण इच्छध्वं स वै लोकोऽवदावदः॥

८. काणे पा०वा०— धर्मशास्त्र का इतिहास–प्रथम खण्ड–पृष्ठ २६५.

९. गौ०ध० १.३.३३. जटिलश्चीराजिनवासाः

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्मश्रु से वानप्रस्थ आश्रम का संकेत ग्रहण होता है क्योंकि मनुस्मृति में वानप्रस्थी के लिए श्मश्रु, लोम, नख आदि धारण करने का विधान हैं।[१] अतः ऐतरेय ब्राह्मण के श्लोक में प्रयुक्त 'मल' एवं 'तप' शब्द को क्रमशः गृहस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम का सूचक मानना चाहिए।[२]

पुत्र ही पिता के धार्मिक कार्यों का उत्तराधिकारी बनता है। पितृयज्ञ का वास्तविक अर्थ श्राद्ध है और पुत्र ही इस यज्ञ को सम्पन्न कर सकता है। पारलौकिक कल्याण एवं इहलौकिक उन्नति के लिए पुत्रप्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है।[३] विवाह का उद्देश्य पुत्रप्राप्ति है, इसीलिए विवाहित पुरुष सन्तति न होने पर अत्यधिक उद्विग्न रहा करते थे। विविध मन्त्रों, यज्ञों और तपस्या के द्वारा पुत्र प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता था। राजा दशरथ ने अनेक परिश्रमसाध्य उपायों द्वारा पुत्र को पाया था।[४] राजा दिलीप ने पुत्र प्राप्ति के लिए अपनी पत्नी के साथ-साथ नन्दिनी गाय की बहुत सेवा की।[५] विवाह के प्रयोजन रूप में पुत्र प्राप्ति की महत्ता इसी से सिद्ध है।

पुत्र शब्द की व्युत्पत्ति ही इसके असाधारण महत्त्व को प्रदर्शित करती है। 'पुनाति पित्रादीन्' अथवा 'पुतः त्रायते' इति पुत्रः – इस प्रकार पुत्र शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध होती है। पुत् नामक नरक से जो त्राण दिलाता है वही पुत्र है।[६] नरक का अर्थ होता है कष्ट, दुख; तथा पुत् का अर्थ संस्कृत ग्रन्थकारों द्वारा न दिए जाने पर भी 'नपुंसकता' रूप में ग्रहण किया जा सकता है। अतः पुत्र व्यक्ति को नपुंसकता, निर्बलता, कायरता के दुख से मुक्त करता है। विवाह करने के उपरान्त पुत्रोत्पत्ति में समर्थ मनुष्य अपने पौरुष की स्वीकृति पुत्र रूप में पाकर मन से सन्तुष्ट होता है। सन्तति उत्पन्न न होने पर सन्तानोत्पत्ति की यह अक्षमता व्यक्ति के लिए घोर कष्टदायिनी बनती है। पुत्र इसी दुख से त्राण दिलाता है।[७]

---

१. म०स्मृ० ६.६. वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा।
जटाश्च विभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च॥

२. मनु (६.७५) के अनुसार संन्यासी को कठिन तपस्या करनी पड़ती है।

३. महाभारत १३.२०.६२. धर्मार्थं किल सन्ततिः।
रघुवंश १.६९. सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे।

४. वा०रा० २.८६.१२. महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः।
एको दशरथस्यैव पुत्रः सदृशलक्षणः॥

५. रघुवंश २.२५. इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं समं महिष्या महनीयकीर्तेः।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य।

६. वा०रा० २-१०७.१२ पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः॥
निरुक्त २.११. पुत्रः पुरू त्रायते निपरणाद्वा पुन्नरकं ततस्त्रायत इति वा।
गो०ब्रा० १११.१२. यच्च पुत्रः पुन्नामनरकमनेकशततारं
तस्मात्पाति तत्पुत्रस्य पुत्रत्वम्।

७. व्या०स्मृ० ४.४३. पुदिति नरकस्याख्या दुःखं च नरकं विदुः।
पुदि त्राणात् ततः पुत्रमिहेच्छन्ति परत्र च।
'तस्मात् पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः' इति॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाभारत के आदि पर्व में मुनि जरत्कारु का आख्यान विवाह के प्रयोजन रूप में पुत्र-प्राप्ति के महत्त्व को प्रगट करता है।[1] जरत्कारु ब्रह्मचर्य धारण किए हुए समस्त तीर्थों में यात्रा करते घूम रहे थे। उस भ्रमण में उन्होंने एक विशाल गर्त में उल्टे लटकते हुए अपने पितरों को देखा उन पितरों से इस विचित्र दुर्दशा का कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि जरत्कारु द्वारा विवाह न करने और वंश लोप हो जाने का भय ही हमारी दुर्दशा का कारण है। पितरों ने जरत्कारु से प्रार्थना की—

'यतस्व यत्नवांस्तात सन्तानाय कुलस्य नः।
आत्मनोऽर्थेऽस्मदर्थे च धर्मं इत्येव वा विभो॥
न हि धर्मफलैस्तात न तपोभिः सुसंचितैः।
तां गतिं प्राप्नुवन्तीह पुत्रिणो यां व्रजन्ति वै।
तद् दारग्रहणे यत्नं सन्तत्यां च मनः कुरु।
पुत्रकास्मन्नियोगात् त्वमेतन्नः परमं हितम्॥

(महाभारत १.१३.२४....२६)

पितरों की आज्ञा मान कर मुनि ने वासुकि नाग की बहन को पत्नी रूप में ग्रहण किया, इस पत्नी से उन्हें अस्तीक नामक पुत्र की प्राप्ति हुई थी।

महाभारत ही नहीं, सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य आद्यन्त विवाहोपरान्त पत्नी से उत्पन्न औरस पुत्र की प्रशंसा से भरा पड़ा है। मनु ने तो यहाँ तक कहा कि स्त्री-पुरुष की सृष्टि ही माता-पिता बनने के लिए हुई है।[2] आत्मसंरक्षण की सहज प्रवृत्ति से मनुष्य सन्तान की कामना करता है। पत्नी से उत्पन्न पुत्र मनुष्य के लिए स्वच्छ दर्पण में पड़े हुए स्वयं के प्रतिबिम्ब के समान है।[3] भवभूति ने उत्तररामचरितम् में अपत्य को स्नेह ग्रन्थि के रूप में वर्णित किया है जो पति-पत्नी के अन्तःकरण के स्नेह-संयुत होने पर उत्पन्न होती है।[4] पुत्रहीन व्यक्ति के पितर पिण्डदान के भविष्यत् अभाव को सोच कर रोया करते है।[5] पुत्रों से पिण्ड और जल का तर्पण

---

१. महाभारत— आदिपर्व–त्रयोदश अध्याय

२. म०स्मृ० ९.९६. प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवः।
तस्माद् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः॥

३. महाभारत १.७४.४९. भार्यायां जनितं पुत्रमादर्शेस्विव चाननम्।
१.१११.१६ इह तस्मात् प्रजाहेतोः प्रजायन्ते नरोत्तमाः॥

४. उ०रा० ३.१७. अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेको अपत्यमिति पठ्यते॥
प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य परमेतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।

५. अभि०शा० ६.२५. अस्मात्परं बत यथाश्रुति सम्भृतानि
को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं
धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति॥
रघुवंशं १.६७. मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाकर पितरों की आत्माएँ सुखी और सन्तुष्ट रहती है। पिण्डदान पुत्र के बिना सम्भव नहीं होता। भरत से राम ने स्पष्ट कहा था 'बहुत से गुणवान् और बहुश्रुत पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए। सम्भव है, प्राप्त हुए उन पुत्रों में से कोई एक भी गया की यात्रा करे (अर्थात् पितरों का यथाविधि श्राद्ध करे)।'[1]

जिस प्रकार सृष्टि का प्रारम्भ पुरुष और प्रकृति-संयोग से होता है उसी प्रकार औरस पुत्र की प्राप्ति केवल विवाह से ही सम्भव होती है। पुत्र का अभाव एक महान् दुःख है – 'कष्टं खल्वनपत्यता।'[2] इसीलिए राजा दिलीप ने नन्दिनी धेनु से अनन्तकीर्ति वाले वंशकर्ता पुत्र की याचना की थी और यह पुत्र भी अपनी विवाहिता पत्नी में ही माँगा—

'वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं
सुदक्षिणायां तनयं ययाचे।' (रघुवंश २.६४)

कुमारसम्भव में सत्त्वप्रकाश शिव जब हिमालय के पास सप्तर्षिगण को विवाह प्रस्ताव लेकर भेजते हैं तो यही कहते हैं कि मैं पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से पार्वती से विवाह करना चाहता हूँ।[3]

इस लोक में पुत्र प्रतिष्ठा का कारण है क्योंकि उससे वश प्रतिष्ठित होता है।[4] पुत्रहीन के लिए स्वर्ग के द्वार नहीं खुलते।[5] शकुन्तला को अपमानित करके निकाल देने के वाद पश्चाताप की अग्नि में जलते राजा ने व्यथित होकर कहा था 'मैंने वंश की प्रतिष्ठास्वरूपिणी धर्मपत्नी को, पुत्र का आधान कर देने पर भी त्याग दिया।'[6] इसीलिए सप्तम अङ्क में मारीच ऋषि के द्वारा पुत्र के अभिनन्दन सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर राजा ने उत्तर दिया था – 'इसी में तो मेरे वंश की प्रतिष्ठा है' – अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा।' वंश के प्रतिष्ठा स्वरूप पुत्र के न होने पर परिवार की समस्त सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। शाकुन्तलम् के षष्ठ अङ्क में व्यथित राजा ने यही कहा है – सन्तति छिन्न हो जाने से अवलम्बहीन कुलों के मूल पुरुष की मृत्यु हो जाने

---

१. वा०रा० २.१०७.१३. एष्टव्या बहवः पुत्राः गुणवन्तो बहुश्रुताः।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चित् गयां व्रजेत्॥

२. रघुवंश १.६६.;१०.२.
१.६८. सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः॥
वा०रा० १.८.८. मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम्।

३. कु०स० ६.२८. अत आहर्तुमिच्छामि पार्वतीमात्मजन्मने।
उत्पत्तये हविर्भोक्तुर्यजमान इवारणिम्॥

४. महाभारत १.७४.९८. कुलवंशप्रतिष्ठां हि पितरः पुत्रमब्रुवन्।
१.१११.२३. अपत्यं नाम लोकेषु प्रतिष्ठा धर्मसंहिता।

५. महाभारत १.१११.११. अप्रजस्य महाभागा न द्वारं परिचक्षते।

६. अभि०शा० ६.२४. संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर सम्पत्तियाँ दूसरों को प्राप्त हो जाती हैं। मेरे मर जाने पर पुरुवंश की लक्ष्मी का भी यही वृत्तान्त होगा।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवाह संस्कार के प्रयोजन रूप में पुत्र प्राप्ति एक प्रमुख प्रयोजन है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने विवाह के प्रयोजन ही दो माने—धर्म और प्रजा।[2] धर्म पालन करना और पुत्रोत्पत्ति करना—यही पत्नीग्रहण के दो प्रयोजन है; रति तो लौकिक प्रयोजन है जो पुत्रोत्पत्ति में ही पूर्ण हो जाता है।

विवाह प्रयोजन – रति—

विवाह प्रयोजनों में रति का स्थान यद्यपि संस्कृत साहित्य में अन्तिम रक्खा गया है, किन्तु इससे रति का महत्त्व कम नहीं होता। काम-तृप्ति मनुष्य की प्रमुख नैसर्गिक वृत्ति है। इसको निन्दित कह कर सर्वथा वर्जित नहीं किया जा सकता था। अतः जीवन को सहज सुन्दर रूप देने के लिए संस्कृत साहित्यकारों ने रति-कामतृप्ति – को विवाह का एक प्रयोजन मान कर मर्यादित और संयत कर दिया है। अपनी पत्नी से धर्मपूर्वक कामतृप्ति करने वाला व्यक्ति भी ब्रह्मचारी ही माना गया है।[3]

संस्कृत साहित्य ही नहीं, अपितु सारे विश्व में विवाह का एक उद्देश्य यौन सम्बन्धी कामनाओं को चरितार्थ करना रहा है। उपनिषदों में रति अथवा सम्भोग को सबसे बड़ा आनन्द कहा गया है तथा ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। वृहदारण्यक उपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है – 'जैसे कोई अपनी प्रिय पत्नी से मिलते हुए बाहर के जगत् में कुछ नहीं जानता और न आन्तरिक जगत् को जानता है, उसी प्रकार प्राज्ञ आत्मा से जुड़ा हुआ पुरुष न बाहर की वस्तु को जानता है, न ही अन्दर की किसी वस्तु को।'[4]

ऋग्वेद में अगस्त्यलोपामुद्रा आख्यान प्राप्त होता है जिसमें स्वयं लोपामुद्रा ने अकुण्ठित कण्ठ से कहा है 'हे ऋषि ! मैं वर्षों से अश्रान्त रूप में तुम्हारी सेवा करती रही हूँ। बुढ़ापा तो शरीर के सौन्दर्य को नष्ट करता है अतः यौवन काल में ही हम पति पत्नी गृहस्थ के उद्देश्य को पूर्ण करें। पति पत्नी को, संयमशील विद्वान् को भी उपयुक्त अवस्था में काम भाव प्राप्त होता है'।[5] पत्नी की इच्छा जान अगस्त्य ने उसे पूर्णतया सन्तुष्ट किया।

कामसूत्र के प्रथम अधिकरण में वात्स्यायन ने सवर्णा-पत्नी में प्रवृत्त हुई रति को 'पुत्रीय'

---

१. अभि०शा० षष्ठ अङ्क भोः ! सन्ततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां
मूलपुरुषावसाने सम्पदः परमुपतिष्ठन्ते। ममाप्यन्ते
पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः।

२. आप०ध० २.५.११.

३. म०स्मृ० ३.५०. निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥

४. वृहदा०उप० ६.३.२१.

५. ऋ०वे० १०.१७९. १-४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहा है क्योंकि वह रति औरस पुत्र का निमित्त बनती है।[१] रति प्रयोजन मात्र के लिए ही अधमवर्णा कन्या से विवाह का विधान किया गया है। कामसूत्र की जयमंगला टीका में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—

'तत्र तस्मिन्फलविभागे तिस्रो नायिकाः—कन्या,
पुनर्भूः, वेश्या चेति। तत्र कन्या द्विविधा पुत्रफला,
सुखफला चेति। पूर्वा सवर्णा श्रेष्ठा। द्वितीयाऽधमवर्णा न्यूना।'
(काम सूत्र १. ५. ३ पर जयमंगला टीका)

दक्ष ने भी प्रथम विवाहिता स्त्री को 'धर्मपत्नी' कहा और द्वितीया को 'रतिवर्धिनी।'[२] मनुस्मृति ने नामोल्लेख पूर्वक वर्णन किया कि 'द्विजातियों में प्रथम विवाह के लिए सवर्णा कन्या ही श्रेष्ठ है। रति से वशीभूत होकर प्रवृत्त होने वाले पुरुष के (द्वितीय विवाह के) लिए क्रमशः अनुलोम क्रम से स्त्रियां श्रेष्ठ मानी जाती हैं'।[३]

रति प्रयोजन को विवाह उद्देश्यों में स्थान देकर शास्त्रकारों ने स्वविवाहिता स्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्त्री से यौन सम्बन्ध और कामतृप्ति का निषेध किया है, क्यों कि रति से सन्तान उत्पन्न होती है जो सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण बनती है – 'अपत्यं नाम लोकेषु प्रतिष्ठा धर्मसंहिता।' परकीया या अन्योढा नायिका के साथ प्रणय सम्बन्ध अत्यधिक अनुचित था।[४] क्योंकि यह धर्म के विरुद्ध है। श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं को धर्मानुकूल काम कह कर पुकारा है।[५]

रति को उद्देश्य मानने पर भी विवाह संस्कार के प्रयोजनों में इसे सबसे निम्न स्थान दिया गया है। विवाह में रति प्रयोजन की निम्नतर भूमिका को प्रगट करने वाले अनेक आख्यान महाभारत और रामायण आदि में प्राप्त होते हैं। महाभारत के आदिपर्व में किन्दम ऋषि का आख्यान है जिनको बाणविद्ध करने से राजा पाण्डु को सहवास में प्रवृत्त होते ही मर जाने का शाप मिला।[६] किन्दम ऋषि एक बार वन में अपनी पत्नी के साथ मृग-मृगी का रूप धारण करके कामधर्म में प्रवृत्त हुए। राजा पाण्डु ने उनको देख कर बाणों से बींध डाला। इस समय मुनि ने कहा 'मैं बड़े उल्लास के साथ अपने कामरूपी पुरुषार्थ को सफल करने के लिए अपनी पत्नी

---

१. का०सू० १.५.१. कामश्चचतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां
प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति।

२. द०स्मृ० ४.१४ प्रथमा धर्मपत्नी स्याद् द्वितीया रतिवर्धिनी।

३. म०स्मृ० ३.१२-१३. सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥

४. वि०ध० २६.५.
दशरूपक २.२०.

५. गीता ७.११ धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

६. महाभारत १.१०९.२८.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के साथ सहवास कर रहा था किन्तु तुमने उसे विफल कर दिया।[1] मुनि के इस कथन से एक ओर तो विवाह के प्रयोजन रूप में रति का स्थान प्रतिष्ठित होता है, दूसरी ओर इसी से रति का निम्न स्थान भी सूचित होता है अन्यथा वे ऋषि इस कर्म के लिए मृग मृगी का रूप क्यों धारण करते ? ऋषि ने स्वयं यह स्वीकार किया कि मानव शरीर से मुझे यह काम करने में लज्जा का अनुभव हो रहा था।[2] वैवाहिक क्रियाओं के अन्तर्गत सम्पन्न किया जाने वाला त्रिरात्र व्रत[3] भी विवाह के पश्चात रति आदि में संयम ग्रहण करने की पूर्व सूचना के समान है। यौवनावेश से ओतप्रोत एवं एक दूसरे की ओर आकृष्ट वर वधू विवाह की क्रियाओं के पश्चात् शीघ्र ही शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेने के लिए उत्सुक रहते हैं। किन्तु वैवाहिक जीवन में उन्मुक्त काम नहीं, अपितु आत्म-संयम ही स्थायित्व लाता है – यह तथ्य त्रिरात्र व्रत से ज्ञात हो जाता है। उन्हें न्यूनतम तीन रात्रि तथा अधिकतम एक वर्ष पर्यन्त संयम रखना पड़ता है। विवाह के प्रयोजनों में रति के सबसे निम्न स्थान का यह भी प्रमाण है।

संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार की आवश्यकता और प्रयोजन के इस विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य की सबल इन्द्रिय लालसा को संकुचित करके उसे एक सीमा में आबद्ध करने के लिए विवाह आवश्यक है। विवाह संस्कार मनुष्य को भोग से संयम की ओर तथा प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है। संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार भोग लिप्सा का साधन नहीं, अपितु एक धार्मिक संस्कार है। व्यक्तिगत तृप्ति एवं सुख यद्यपि विवाह के प्रयोजनों में से एक है, किन्तु उसका निम्नतम पद निश्चित रूप से यह संकेत करता है कि व्यक्तिगत सुख ही जीवन का प्रेरक नियम नहीं होना चाहिए। संस्कृत साहित्य में पाया जाने वाला विवाह संस्कार एक सामाजिक उत्तरदायित्व है जिसका मुख्य उद्देश्य धर्म पालन करना और सन्तति उत्पन्न करके मानव प्रजाति का रक्षण एवं संवर्धन करना है। दो विषमलिङ्गी व्यक्तियों का विधिवत् संयोग भी केवल मात्र कामतृप्ति के रूप में संस्कृत साहित्य में प्रायः वर्णित नहीं मिलता है वरन् यह संयोग भी सन्तानोत्पत्ति की उत्तरदायित्वपूर्ण भावना के साथ किया जाने वाला धार्मिक कृत्य है। इसके लिए एक अलग संस्कार – गर्भाधानसंस्कार का विधान है।

हमारे दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया तथा शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक चेष्टाएँ धर्म द्वारा ही नियन्त्रित होती हैं। अतः स्त्री धारा को पुरुषधारा में मिलाकर उसे मोक्षाधिकारी बनाना; दोनों की अनर्गल, अनियमित पशु प्रवृत्तियों को नियमित करके सब प्रकार की इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति करना, पति-पत्नी के मधुर समन्वय से दोनों की ही पूर्णता सिद्ध करना–यह विवाह का धार्मिक प्रयोजन है। विवाह का दूसरा उद्देश्य स्त्री एवं पुरुष के मधुर एवं पवित्र समन्वय एवं सामञ्जस्य द्वारा पारिवारिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन की सुव्यवस्था एवं सुख, स्वास्थ्य तथा शांति की सुरक्षा करना है।

---

१. महाभारत १.१०९.१९. को हि विद्वान्मृगं हन्याच्चरन्तं मैथुनं वने।
पुरुषार्थफलं कान्तं यत्त्वया वितथं कृतम्॥
२. महाभारत १.१०९.२६. अहं हि किंदमो नाम तपसा भावितो मुनिः।
व्यपत्रपन्मनुष्याणां मृग्यां मैथुनमाचरम्॥
३. पा०गृ० १.८.२१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तृतीय अध्याय

विवाह के प्रकार

वेदों तथा गृह्यसूत्रों में विवाह प्रकार
ब्राह्म विवाह
दैव विवाह
प्राजापत्य विवाह
आर्ष विवाह
राक्षस विवाह
आसुर विवाह
गान्धर्व विवाह
पैशाच विवाह
विवाह – प्रकार – विवेचना
ऐतिहासिक कालक्रम
स्वयंवर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह के प्रकार

वेदों तथा गृह्यसूत्रों में विवाह प्रकार—

परवर्ती संस्कृत साहित्य में विवाह के जिन आठ प्रकारों का उल्लेख बार-बार हुआ है, उनका नामोल्लेखपूर्वक स्पष्ट वर्णन ऋग्वेद में नहीं मिलता। किन्तु विवाह प्रकारों के मूल के विषय में वैदिक साहित्य की साक्षी प्राप्त होती है। ऋग्वेद के विवाह सूक्त (१०.८५. में), में जहाँ कन्यादान वर्णित है, उस प्रसंग से ब्राह्म विवाह का संकेत ग्रहण किया जा सकता है। निरुक्त (६.९.) में व्याख्यात ऋग्वेद (१.१०९.२.) से आसुर विवाह का भी संकेत ग्रहण होता है। ऋग्वेद (५.६१.) से सम्बद्ध बृहद्देवता (५.५०-५४) में श्यावाश्व की गाथा वर्णित है। इसमें राजा रथवीथि के यज्ञ में पौरोहित्य करते समय आत्रेय अर्चनाना ने अपने पुत्र श्यावाश्व के लिए राजपुत्री का हाथ मांगा था। विवाह का यह प्रकार परवर्ती विधिशास्त्रियों द्वारा वर्णित दैव विवाह की परिभाषा में आ जाता है। इसी प्रकार ऋग्वेद (१०.२७.१२. और १.११९.५.) में वर्णित विवाह में गान्धर्व अथवा स्वयंवर प्रकार का मूल खोजा जा सकता है। हरण द्वारा विवाह का प्रसंग भी विमद की गाथा में प्राप्त होता है जहाँ पुरुमित्र की कन्या को माता-पिता की सहमति के बिना ही विमद ले जाता है।[1] इस हरण में सम्भवतः कन्या की सहमति थी, अतः परवर्ती काल में मनु द्वारा वर्णित मिश्रित विवाह प्रकार में इसको सम्मिलित किया जा सकता है।

किन्तु ऋग्वेद के उपर्युक्त स्थलों में कहीं भी न तो विवाह-प्रकार का नाम ही दिया गया है और न ही विवाह विधि का वर्णन है। केवल वर्णन के आधार पर ही उन्हें विशिष्ट विवाह प्रकार का नाम दिया जा सकता है। ये प्रसंग ऋग्वैदिक समय की विवाह प्रथाओं और विधियों को पूर्णतया प्रतिबिम्बित नहीं कर पाते। किन्तु इनसे यह निश्चित हो जाता है कि ऋग्वेद के समय में विवाह एक सामाजिक संस्था के रूप में सुप्रतिष्ठित था।

ऋग्वेद के पश्चात् गृह्यसूत्रों के समय तक भी विवाह के विभिन्न प्रकार अलग-अलग नहीं थे। गृह्यसूत्रों में वर्णित वैवाहिक विधियों के विवेचन से ज्ञात होता है कि प्रायः सब में ही कन्यादान का कृत्य वर्णित नहीं है। पाणिग्रहण की विधि ही प्रमुखतया वर्णित है। पारस्कर गृह्यसूत्र में स्पष्टतः कन्यादान का कृत्य वर्णित न होने पर भी एक स्थल पर कन्यादान का अर्थ ग्रहण किया जा सकता है।[2] किन्तु धर्मसूत्रों के समय से आज तक प्रशस्त विवाह-प्रकार में कन्यादान कृत्य

---

१. ऋ०वे० १.११६.१. ग्रिफिथ ने भी इस प्रसंग में वधू को युद्ध में जीते गए पुरस्कार के रूप में माना है।

२. पा०गृ० १.४.१६. पित्रा प्रत्तां आदाय गृहीत्वा निष्क्रामति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतः गृह्यसूत्रों में कन्यादान के कृत्य का अभाव निश्चित रूप से यह सूचित करता है कि ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य और आर्ष – ये प्रशस्त विवाह प्रकार भी गृह्यसूत्रों के समय तक कदाचित् विशिष्ट स्वरूपों में स्थिर नहीं हो सके थे।

गृह्यसूत्रों में मानव गृह्यसूत्र ने केवल ब्राह्म एवं शौल्क विवाह-प्रकार का उल्लेख किया है।[१] किन्तु मानव गृह्यसूत्र का समय बहुत बाद का माना जाता है। आश्वलायन के अतिरिक्त अन्य गृह्यसूत्रों ने विवाह के एक ही प्रकार का वर्णन किया है, और उसकी भी कोई विशिष्ट संज्ञा नहीं है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ने सर्वप्रथम विवाह के आठ प्रकारों का वर्णन किया है।[२] किन्तु आश्वलायन गृह्यसूत्र का यह अंश अपने प्रसंग में इतना असंगत प्रतीत होता है कि क्षेपक के समान जान पड़ता है।[३] अतः यही निष्कर्ष समीचीन जान पड़ता है कि धर्मसूत्रकारों ने समाज में प्रचलित विभिन्न विवाहों को वर्ण एवं नीति के अनुकूल अलग-अलग आठ प्रकारों में विभाजित करके वर्णन किया। सभी धर्मसूत्रकारों ने विवाह के आठ प्रकारों में से कुछ का अथवा सबका वर्णन किया है।

ब्राह्मविवाह :

इसमें व्यक्ति के कुल, शील, विद्या, चरित्र एवं स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में ज्ञातव्य तथ्य जान लेने पर कन्या का पिता वर को स्वयं निमन्त्रित करके अपनी अलंकृता एवं सुसज्जिता पुत्री उपहार रूप में दे देता है।[४]

ब्राह्म विवाह में, वर के चयन में कन्या की सम्मति नहीं ली जाती थी, क्योंकि चयन पिता अथवा अभिभावक की रुचि से होता था। इसी प्रकार विवाह का उपक्रम भी कन्या के पिता अथवा अभिभावक के द्वारा होता था, वर पक्ष द्वारा नहीं। अग्नि के चारों ओर तीन प्रदक्षिणाएँ कर लेने और नाम-गोत्रादि उच्चारण कर दिए जाने के पश्चात् देवताओं के लिए उदक-निषेचन के साथ-साथ कन्या का उपहार रूप में दान सम्पन्न होता था।[५] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्म विवाह में वर स्वयं कन्या के पाणिग्रहण की याचना कन्या के माता पिता अथवा अभिभावक से करता था।[६]

---

१. मा०गृ० १.७.११.१२.
२. आ०गृ० १.४.२१-३२.
३. सेनगुप्ता, एन०सी०—इवोल्यूशन आफ एनशेण्ट इण्डियन ला–पृष्ठ ८३.
४. गौ०ध० १.४.४. ब्राह्मी विद्याचारित्रबन्धुशीलसम्पन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृताम्।
म०स्मृ० ३.२७. आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्यायाः ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥
आ०गृ० १.४.२१.; ना० स्मृ० १२.४०; या० स्मृ० १.५८.;
कौ०अर्थ० ३.२.२.;
५. व०ध० १.३०.
६. बौ०ध० १.११.२०.२. श्रुतिशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने कन्या
दीयते स ब्राह्मः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्मृतिकारों ने ब्राह्म विवाह के वर्णन में वर के सम्बन्ध में विशद वर्णन किया है तथा वर के लिए उत्तम गुण आवश्यक बताए हैं। महाभारत ने स्पष्ट व्यवस्था दी कि वर के शील, वृत्त, विद्या आदि के सम्बन्ध में भली प्रकार खोज कर ली जाए, साथ ही वर आजीविका के लिए क्या करता है—यह भी पिता द्वारा ज्ञातव्य है।[1]

ब्राह्म विवाह में यौतुक देना पिता के लिए आवश्यक माना गया है।[2] वर को उपहार रूप में दी जाने वाली कन्या आभूषणों और वस्त्रों से भली प्रकार सुसज्जित होनी चाहिए और उसके साथ धन भी दिया जाना चाहिए। मनु ने पुत्री को धन दिए जाने की प्रशंसा करते हुए कहा है कि उपहार एवं धन देने से कन्या का सम्मान होता है तथा यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' रामायण में कुशनाभ की कन्याओं और राजा ब्रह्मदत्त के विवाह प्रसंग में राजा कुशनाभ ने वर को सादर आमन्त्रित करके उसे अपनी कन्याएं दीं और वर-वधू को पर्याप्त यौतुक दिया।[3]

विवाह का यह ब्राह्म प्रकार प्रशस्त एवं धर्म्य है। विवाह के समस्त आठों प्रकारों में ब्राह्म विवाह को सर्वोत्तम स्थान मिला है, और सभी धर्मशास्त्रकारों ने विवाह प्रकारों के क्रम में ब्राह्म को सर्वप्रथम परिगणित किया है। श्री बनर्जी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि इस विवाह प्रकार को ब्राह्म विवाह इसलिए कहा जाता था कि यह विवाह प्रकार विशेष रूप से ब्राह्मणों के उपयुक्त था।[4] किन्तु यह कथन समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि सूत्रकारों और स्मृतिकारों ने ऐसा विधान नहीं किया है। परवर्ती लौकिक साहित्य में भी ब्राह्मण वर्ण के साथ अन्य वर्णों के भी ब्राह्म विवाह के उदाहरण मिलते हैं। महाभारत ने स्पष्ट कहा है कि क्षत्रिय के लिए भी ब्राह्म विवाह उपयुक्त हैं।[5]

श्री काणे ने ब्राह्म विवाह के नाम की दूसरे प्रकार से व्याख्या की है। वे स्मृतिमुक्ताफल की साक्षी देते हुए कहते है कि "प्रथम प्रकार के विवाह को ब्राह्म इसलिए कहा जाता है क्योंकि ब्रह्म का अर्थ है पवित्र वेद या धर्म – जिसे परमपूत कहा जाता है।"[6]

ब्राह्म विवाह प्रकार से उत्पन्न सन्तति समाज में सम्माननीय थी और समस्त उत्तम गुणों से युक्त होती थी। ब्राह्म विवाह के अनुसार कन्या का विवाह करने वाले माता पिता समाज में समादृत होते थे और वे कन्याएँ भी सम्मान की अधिकारिणी बनती थीं।

दैव विवाह :

यज्ञ सम्पन्न कराने वाले ऋत्विज् को अपनी अलंकृता कन्या उपहार में दे देना दैव विवाह है।[7]

---

१. महाभारत १३.४४.३-४. शीलवृत्तो समाज्ञाय विद्यां योनिं च कर्म च।
२. आप० ध० २.५.११.१७. ; का० सू० ३.१.२०.
३. वा० रा० १.३३.२१-२२.
४. बनर्जी, जी० डी०— द हिन्दू ला आफ मैरिज एण्ड स्त्रीधन— पृष्ठ ७६
५. महाभारत १.७३.८-९.
६. काणे पा० वा०— धर्मशास्त्र का इतिहास—प्रथम भाग, पृष्ठ २९७
७. गौ०ध० १.४.७. अन्तर्वेद्यृत्विजे दानं दैवोऽलंकृत्य।
म०स्मृ० ३.२८. यज्ञं तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह के इस प्रकार में पिता के द्वारा कन्या ऐसे पुरोहित को दे दी जाती थी जो कन्या के पिता के लिए यज्ञ कराता था।[१] यज्ञ कराने वाला ऋत्विज निश्चय ही विद्वान्, धीर, ब्रह्मचारी एवं चरित्रसम्पन्न होता होगा। वैदिक कर्मकाण्ड गहन होने के कारण स्मृतियों के समय तक यज्ञों का स्वरूप जटिल हो गया था। अनेक यज्ञ मासों में ही नहीं, वरन् वर्षों में पूर्ण हुआ करते थे। एक एक यज्ञ में अनेकों ऋत्विज् होते थे जो यज्ञ के विभिन्न कार्यों को विधिपूर्वक पूर्ण करते रहते थे। सम्भवत: यज्ञ के इसी लम्बे समय में किसी ऋत्विक् के चरित्र, शील एवं आचरण से प्रभावित होकर यज्ञकर्ता अपनी विवाह-योग्य कन्या को सुसज्जित करके उपहार रूप में ऋत्विक् को दान कर दिया करता था और कन्या की विवाह समस्या की चिन्ता से मुक्त हो जाता था। यही विवाह प्रकार दैव विवाह कहलाया। वैदिक यज्ञों के लोप के साथ ही दैव विवाह भी लुप्त हो गया। परवर्ती परम्पराओं ने पूर्व समय के इस विवाह के प्रसंगों को भी सुरक्षित नहीं रखा है।[२]

दैव विवाह में भी पिता के द्वारा वर के सम्बन्ध में कन्या की सम्मति नहीं ली जाती थी। यह सम्भव है कि यज्ञ के सम्पन्न होने की दीर्घ अवधि में कन्या उस ऋत्विक् को देख कर अपनी रुचि के अनुकूल माता-पिता को प्रेरित करती हो।[३] लेकिन इस सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होते। वर-चयन पूर्ण रूप से माता-पिता पर ही आश्रित रहता था। बौधायन धर्मसूत्र के भाष्य में गोविन्द की मान्यता है कि पिता के द्वारा दी गई कन्या ऋत्विक् को स्वीकार करनी ही होती थी और विवाह की विधि बाद में सम्पन्न होती थी।[४] राजा लोमपाद ने अपनी धर्मपुत्री शान्ता इसी दैव विवाह-विधान से ऋष्यशृंग ऋषि को प्रदान की थी जो उसके राज्य में पर्जन्य यज्ञ सम्पन्न कराने आए थे।[५]

दैव विवाह प्रकार प्रशस्त और धर्म्य है। महाभारत और मनु स्मृति में इस विवाह प्रकार को ब्राह्मणों और क्षत्रियों के उपयुक्त बताया गया है।[६] किन्तु यह विधान होने पर भी क्षत्रिय वर्ण के व्यक्ति के लिए यह विवाह प्राय: सम्भव ही नहीं था, क्योंकि ब्राह्मण ही यज्ञादि कराने में प्रवृत्त होते थे, अत: उन्हीं को कन्या प्रदान की जाती थी।

विवाह के इस प्रकार का नाम दैव विवाह इसलिए पड़ा क्योंकि यह विवाह तब सम्भव होता था जब देवताओं के लिए यज्ञ किया जा रहा हो।[७] यज्ञों में देवों की पूजा होने के कारण इस विवाह प्रकार का नाम दैव विवाह पड़ा होगा। स्मृतिकारों ने ब्राह्म विवाह की जितनी बहुमुखी प्रशंसा की, उतनी प्रशंसा तथा अनुमोदन दैव विवाह को प्राप्त नहीं हो सका। क्योंकि सूत्रकारों का यह विचार था कि जब देवों के प्रति यज्ञ किया जा रहा हो तो वैवाहिक सम्बन्ध जैसे विचार न तो यजमान के मन में उत्पन्न होने चाहिएँ और न ही ऋत्विक् को इस प्रकार के विचारों को प्रश्रय

---

१. आ०गृ० १.४.२३. : ना०स्मृ० १२.४१.; या०स्मृ० १.५९.; कौ०अर्थ० ३.२.५.,
२. अल्तेकर, ए०एस० —पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ ४५।
३. अल्तेकर, ए०एस० —पोजीशन ऑफ वीमेन इन दिन्दू सिविलाइजेशन –पृष्ठ ४५.
४. बौ०ध० १.११.२०.५. पर गोविन्द का भाष्य।
५. महाभारत ३.११३.११.
६. महाभारत १.७३.८....१०. ; म०स्मृ० ३.२४.
७. अल्तेकर, ए०एस० —पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन –पृष्ठ ४५.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देना चाहिए। दैव विवाह को ब्राह्म विवाह की अपेक्षा निम्नस्तर का इसलिए भी माना गया कि यजमान कन्यादान करके मन में इस लाभ की भावना रखता है कि कन्या पाकर प्रसन्न ऋत्विज् एकाग्रता से यज्ञ को सम्पन्न करेगा।[१]

दैव विवाह से उत्पन्न सन्तति को समाज में सम्मान मिलता था और वे उच्च चारित्रिक गुणों से युक्त माने जाते थे। यद्यपि प्रायः सभी स्मृतिकारों एवं सूत्रकारों ने दैव विवाह का वर्णन एवं विधान किया है, किन्तु परवर्ती लौकिक साहित्य में इस प्रकार के विवाह का वर्णन नहीं के बराबर ही रहा। इस अभाव का कारण स्पष्ट है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अभ्युत्थान और प्रचार से यज्ञों में आस्था कम हो गई। बाह्य आक्रान्ताओं ने देश की शान्ति व्यवस्था भंग कर दी, अतः लम्बे यज्ञ अप्रचलित हो गए। यदा कदा अश्वमेध की पुनः स्थापना की गई।। शुंगकाल के वैदिक उत्थान के फलस्वरूप तत्कालीन भास, शूद्रक और कालिदास के नाटकों में यज्ञ का किंचित् प्रभाव लक्षित होता है। परन्तु गुप्तकालीन वैदिक उत्थान तत्कालीन कालिदास आदि के काव्यों और उसके बाद के नाटकों में अछूता-सा है।[२] सम्भवतः इस काल में वैदिक यज्ञों का कर्मकाण्डीय उत्थान न होकर आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टियों में सीमित रहा हो, जैसा कि आज के युग में महर्षि दयानन्द के प्रचार के फलस्वरूप लक्षित होता है। अतः दैव विवाह लौकिक संस्कृत साहित्य के युग में हुए ही नहीं होंगे।

प्राजापत्य विवाह :

'तुम दोनों मिलकर साथ साथ धर्माचरण करो' – इस मन्त्राज्ञा के साथ जब पिता उपयुक्त वर को कन्या देता है, तब वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है।[३]

प्राजापत्य विवाह में पिता अपनी पुत्री को अलंकृत करके सहधर्मचारिणी के रूप में वर को प्रदान करता है। 'जीवन पर्यन्त साथ-साथ धर्म का आचरण करो' – यह कथन ही इस विवाह का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है।[४] याज्ञवल्क्य के टीकाकार बालमभट्ट के अनुसार यह प्रकार एकपत्नीत्व की परिधि में आता है क्योंकि प्राजापत्य विवाह प्रकार से विवाहित व्यक्ति प्रथम पत्नी के जीवन-काल में दूसरा विवाह नहीं कर सकता है।[५] गौतम के व्याख्याकार हरदत्त ने अपनी मिताक्षरा

---

१. काणे, पा०वा० –धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग– पृष्ठ २९७.

२. गुप्त. सुधीर कुमार— संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास – पृष्ठ २८ अ – श्री गुप्त नाटककार और काव्यकार – दो कालिदास अलग-अलग मानते हैं। नाटककार कालिदाल शुंगकालीन हैं और काव्यकार कालिदास गुप्तकालीन। इस निष्कर्ष के लिए देखिए :—'द प्राब्लम ऑफ कालिदास'—आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस, गोहाटी १९६५, संक्षेप्त पुस्तिका पृष्ठ ३३-३४.

३. गौ०ध० १.४.५. संयोगः मन्त्रः प्राजापत्ये सह धर्मश्चर्यतामिति।
म०स्मृ० ३.३०. सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः॥

४. आ०गृ० १.४.२५.; ना०स्मृ० १२.४०.; या०स्मृ० १.६०. कौ०अर्थ० ३.२.३.;

५. या०स्मृ० १.६०. पर बालमभट्टी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

टीका में भी यही कहा कि यद्यपि विवाह के अन्य प्रकारों में भी पति-पत्नी अपने कर्त्तव्य साथ-साथ पूर्ण करते हैं, किन्तु प्राजापत्य विवाह में दम्पती को विशेष रूप से सहधर्माचरण का आदेश इसलिए दिया गया, जिससे पति अपनी पत्नी की अनुमति अथवा साहचर्य के बिना गृहत्याग करके अगले (वानप्रस्थ) आश्रम को ग्रहण न करे, और प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह भी न करे।[1]

राम और सीता का विवाह प्राजापत्य विवाह का आदर्श उदाहरण माना जाता है, किन्तु, वाल्मीकि रामायण के एकाधिक संस्करण में राम और भरत की अनेक पत्नियाँ वर्णित की गई हैं।[2] मन्थरा कैकेयी से कह रही है कि राम के अभिषेक से 'राम की सारी स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न होंगी।' अतः हरदत्त की परिभाषा के अनुकूल राम सीता का विवाह प्राजापत्य विवाह प्रकार में नहीं आना चाहिए। किन्तु वस्तुतः यह शंका निराधार है। रामायण के जिन संस्करणों में राम की अनेक पत्नियाँ वर्णित हैं, उन्हीं में उत्तरकाण्ड में राम के द्वारा सीता की स्वर्ण प्रतिमा अश्वमेध यज्ञ में स्थापित किए जाने का वर्णन है। यदि राम की अनेक पत्नियाँ होती तो सीता की अनुपस्थिति में स्वर्ण प्रतिमा की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, किसी भी दूसरी पत्नी के साहचर्य से यज्ञ सम्पन्न हो सकता था। अतः राम की अनेक पत्नियों वाला श्लोक या तो क्षेपक है, अथवा जिस प्रसंग में वह आया है, उस स्थल पर उससे सीता की सखियों का भी अर्थ ग्रहण किया जा सकता है।

ब्राह्म और दैव विवाह प्रकारों में पिता स्वयं अपनी कन्या का दान उपयुक्त वर को देता है, किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार प्राजापत्य विवाह में पिता स्वयं वर को निमन्त्रित कर के कन्यादान नहीं देता, वरन् वर ही याचक बन कर कन्या के पाणिग्रहण की याचना कन्या के पिता अथवा अभिभावक से करता है।[3] वर का याचक स्वरूप ही प्राजापत्य विवाह को ब्राह्म तथा दैव विवाह की अपेक्षा हीन बना देता है, क्योंकि उपहार यदि माँगा जाय तो उसका मूल्य कम हो जाता है – याञ्चा च लाघवकरी। इस अर्थित्व अथवा याचकत्व के अतिरिक्त ब्राह्म और दैव विवाह की अपेक्षा प्राजापत्य विवाह के हीन होने का एक कारण यह भी है कि इसमें वर को सहधर्माचरण का वचन देना पड़ता है।[4] स्मृतिकारों के समय तक समाज में कन्याओं की स्थिति पुरुष की अपेक्षा बहुत हीन हो गई थी, अतः पुरुष का स्वयं आगे बढ़कर कन्या को मांगना और स्त्री के जीवनपर्यन्त दूसरा विवाह न करने का वचन देना – ये दोनों ही तथ्य पुरुष की उच्च सामाजिक स्थिति के विपरीत से ज्ञात होते थे। इसीलिए इस प्राजापत्य विवाह प्रकार को स्मृतिकारों और सूत्रकारों ने ब्राह्म और दैव के पश्चात् स्थान दिया।

---

१. गौ०ध० १.४.५. पर हरदत्त— यद्यपि ब्राह्मादिषु अपि सहधर्मचर्या भवति तथापि आ अन्तादनया सह धर्मश्चरितव्यो नाश्रमान्तरं प्रवेष्टव्यं नापि स्त्र्यन्तरमुपयन्तव्यमिति मन्त्रेण समयः क्रियते। एवं ब्राह्मादेः प्राजापत्यस्य विशेषः॥

२. वा०रा० २.८.५. हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः।
अप्रहृष्टाः भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥

३. बनर्जी, जी०डी— हिन्दू ला आफ मैरिज एण्ड स्त्रीधन, पृष्ठ ७८.
महाभारत १.९६.१० पर नीलकण्ठ ने भी यही व्याख्या दी है—
स्वमन्ये च विन्दते, स्वयमन्ये इति प्राजापत्यः।

४. काणे, पा०वा० — धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २९७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाभारत एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में प्राजापत्य विवाह को कार्यविवाह की संज्ञा भी दी गई है।[१] श्री काणे ने कायविवाह नाम के लिए एक कारण दिया है – क्यों कि ब्राह्मण ग्रन्थों में क' का अर्थ प्रजापति है।[२]

इस प्राजापत्य नाम के सम्बन्ध में डा० वेदमित्र ने इस प्रकार व्याख्या दी है–

"Its main purpose is indicated by its title Prajapatya, which implies that the husband and wife should unite for the purpose of giving birth to children. There is an instinctive desire of sexes, the fulfillment of which is emphasised by this form."[3]

किन्तु डा० वेदमित्र की उपर्युक्त व्याख्या समीचीन नहीं जाना पड़ती, क्यों कि पुत्रप्राप्ति और रति-तृप्ति तो सभी विवाहों के उद्देश्य हैं। प्राजापात्य विवाह में ही इन उद्देश्यों कि पूर्ति होती हो, ऐसा नहीं है।

धर्मसूत्रकारों में वसिष्ठ एवं आपस्तम्ब – दोनों ने ही प्राजापत्य विवाह प्रकार का उल्लेख नहीं किया है। प्रशस्त विवाह प्रकारों के अन्तर्गत केवल ब्राह्म, दैव एवं आर्ष विवाहों को ही स्थान दिया है। इन धर्मसूत्रकारों की प्राचीनता को दृष्टि में रखते हुए कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मूलतः प्राजापत्य और ब्राह्म समानार्थ है, प्राजापत्य विवाह बाद में जोड़ा गया और इसीलिए स्मृतिकार ब्राह्म विवाह और प्राजापत्य विवाह में कोई भी वास्तविक भेद करने में असमर्थ रहे।[४]

श्री सेनगुप्त ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्राजापत्य विवाह गान्धर्व विवाह का ही युक्तिसिद्ध रूप है।[५] उनके अनुसार गान्धर्व विवाह अथवा प्रेम-विवाह लोकप्रिय होने पर भी शास्त्रानुमोदित नहीं थे, अतः शास्त्रीय नियमों की प्रतिक्रियास्वरूप प्राजापत्य विवाह का विधान किया गया। इस तर्क के पक्ष विपक्ष दोनों ही में तथ्य प्राप्त होते हैं। वेदों में स्पष्ट आया है कि 'कन्या स्वयं युवक पति को ढूंढ लेती है।'[६] ऐसे कन्या-वर का माता पिता विधिपूर्वक विवाह कर देते थे और साथ साथ धार्मिक क्रियाएं सम्पन्न करने का आदेश भी देते थे। किन्तु वेदों का यह प्रसंग यदि यत्किंचित् श्री सेनगुप्त के कथन की पुष्टि करता है तो दूसरी ओर ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं, जो गान्धर्व विवाह के शास्त्रानुमोदित रूप में प्राजापत्य विवाह की साक्षी नहीं देते। राम और सीता का विवाह जनमानस में और साहित्य में प्राजापत्य विवाह प्रकार का सर्वोत्तम निदर्शन है। किन्तु यह विवाह किसी भी प्रकार प्रेम विवाह या गान्धर्व विवाह की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता।

---

१. महाभारत १.७३.८-९, या०स्मृ १.६०.

२. काणे,पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २९७.

३. मित्र, वेद – हेप्पी मैरिड लाइफ इन एनशेण्ट इण्डिया, पृष्ट ३२.

४. अल्तेकर, ए०एस० — पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृष्ठ ४६-४७

५. सेनगुप्त, एन०सी० — इवोल्यूशन ऑफ एनशेण्ट इंडियन ला, पृष्ठ ९२.९३.

६. अ०वे० ११.५.१८.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाल्मीकि रामायण में राम-सीता का विवाह वर्णन बहुत सुन्दर है। जनक ने सीता को सब प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित करके सहधर्मचरी के रूप में राम को समर्पित कर दिया—

"इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा।।"[१]

विवाहोत्सव पर पिता जनक ने पुत्री एवं जामाता को प्रभूत यौतुक दिया। गाएँ, अच्छे कम्बल, रेशमी एवं सूती वस्त्र, अलंकृत हाथी, घोड़े, रथ पैदल सिपाही, सखी रूप सौ कन्याएँ, मोती, मूंगे, सुवर्ण आदि समस्त उपहार जनक ने स्वेच्छापूर्वक दिए।[२]

कालिदास ने विवाह प्रकारों में सर्वोत्कृष्ट पद प्राजापत्य को ही दिया है, क्योंकि अपने आराध्य देव शिव का विवाह उन्होंने प्राजापत्य विधि से ही वर्णन किया है। कुमारसम्भव के अतिरिक्त रघुवंश में भी उन्होंने प्राजापत्य विवाह का विशद वर्णन किया हैं।[३] कुमारसम्भव में पार्वती यद्यपि शिव को पतिरूप में पाने के लिए स्वयं तपस्यारत होती हैं, तथापि उनके पाणिग्रहण की याचना शिव ही सप्तर्षि के द्वारा हिमालय से कराते हैं—

'स ते दुहितरं साक्षात्साक्षी विश्वस्य कर्मणाम्।
वृणुते वरदः शम्भुरस्मत्संक्रामितैः पदैः।।"[४]

शिव के अर्थित्व को स्वीकार कर के हिमालय ने सहमतिपूर्वक दोनों का विवाह किया और सहधर्माचरण का आदेश दिया—

"वधूं द्विजः प्राह तवैष वत्से वह्निर्विवाहं प्रति कर्मसाक्षी।
शिवेन भर्त्रा सहधर्मचर्या कार्या त्वया मुक्तविचारयेति।।"[५]

वैवाहिक कृत्यों की समाप्ति पर वर को 'हरण' प्राप्त होता है। यह 'हरण' कन्या के पिता की सामर्थ्य के अनुकूल होता है। मल्लिनाथ ने रघुवशं में इन्दुमती विवाह प्रसंग में व्याख्या करते हुए हरण' का अर्थ कन्या को दिया जाने वाला धन' कहा है।[६]

कन्या को विवाह के समय जिन अलंकारों से आभूषित करते थे, और आत्मीयजन स्नेह व आदर से कन्या को जो कुछ धन देते थे, वह सब स्त्री धन हो जाता था।[७]

यह विवाह प्रशस्त एवं धर्म्य है, और स्मृतिकारों ने प्राजापत्य विवाह को ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के उपयुक्त बताया है। विवाह का यह प्रकार सुसंस्कृत समाज में समादृत था।

---

१. वा०रा० १.७३.२६.

२. वा०रा० १.७४.३-६

३. कु०स० ७.७३-८९.; रघुवंश ७.१७-२९.

४. कु०स० ६.७८.

५. कु०स० ७.८३.

६. रघुवंश ७.३२. सत्त्वानुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रस्थापयद्राघवमन्वगाच्च—
मल्लिनाथ— हरणं कन्यायै देयं धनं। यौतुकादि तु यद्देयं सुदायो
हरणं च तत् — इत्यमरः।।

७. उपाध्याय, बी०एस०— इंडिया इन कालिदास, पृष्ट १८५.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस विवाह से उत्पन्न सन्तति ब्राह्मणोचित चरित्र एवं शील से युक्त होती थी और समाज में सम्माननीय मानी जाती थी।

आर्षविवाह –

गुणवान् वर से एक गोयुगल या दो गोयुगल लेकर जब पिता धर्मानुसार अपनी कन्या उस वर को प्रदान करता है, तब वह आर्ष विवाह कहलाता है।[1]

गोयुगल के स्थान पर अन्य वस्तुएँ देने का विधान भी पाया जाता है। नारद के अनुसार दो गाय अथवा एक वस्त्रयुगल, अथवा एक गाय, एक बैल और एक वस्त्रयुगल, अथवा एक गाय एक बैल और एक वस्त्रयुगल तथा सामान्य रूप में धन देने वाले उपयुक्त वर को पिता अपनी कन्या दे देता था और यह आर्ष विवाह कहलाता था।[2]

कुछ विद्वानों ने आर्ष विवाह में वर द्वारा दिए जाने वाले गोयुगल को वधू-शुल्क माना है। इसी कारण प्रशस्त विवाह-प्रकारों के क्रम में आर्ष को अन्तिम स्थान मिला है।[3] महाभारत तथा मनुस्मृति में भी आर्ष विवाह की भर्त्सना की गई है क्यों कि उसमें वर से पशुयुग्म लिया जाता है।[4] ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह आर्ष विवाह पुरातन आसुर विवाह का ही एक सुसंस्कृत रूप जान पड़ता है। किन्तु कुछ अन्य सूत्रकारों एवं भाष्यकारों ने युक्तियुक्त रूप में इस शुल्क धारणा का खण्डन करने का प्रयास किया। उनके अनुसार आर्षविवाह में दिया जाने वाला धन क्रयमूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि यह धर्मपालन के लिए है। बाजार में बिकने वाली वस्तु का मूल्य उसके गुणों के अनुसार अधिक या कम होता रहता है किन्तु इस विवाह में हर कन्या के पिता को उतना ही निश्चित धन दिए जाने के कारण उसे वधूमूल्य नहीं कहा जा सकता।[5] सत्रहवीं शती के निबन्धकार मित्रमिश्र ने भी यही व्यवस्था दी कि आर्षविवाह में सम्बन्ध धर्मनिमित्तक होता है, लोभ निमित्तक नहीं; और वर द्वारा दिया जाने वाला गोयुगल पिता के द्वारा यौतुक के साथ ही वर वधू को लौटा दिया जाता था। वर द्वारा यह उपहार कन्या को सम्मानित करने की दृष्टि से दिया जाता था, अतः आर्ष विवाह को क्रय विवाह नहीं कहा जा सकता।[6]

---

१. गौ०ध० १.४.६. आर्षे गोमिथुनं कन्यावते दद्यात्।
म०स्मृ० ३.२९. एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते॥
कौ०अर्थ ३.२.४, या०स्मृ० १.५९.

२. ना०स्मृ० १२.४१.: का०सू० ३.१.९.

३. अल्तेकर, ए०एस० – पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ ४४

४. महाभारत १३.४५.२०-२१.; म०स्मृ० ३.५३.

५. जै०गृ० ६.१५. क्रयस्य धर्ममात्रत्वम्।
शबर भाष्य — नासौ क्रय इति। क्रयो ह्युच्चनीचपणो
भवति। नियतं त्विदं दानम्।

६. वी०मि०सं०प्र०-- पृष्ठ ८५०.५१. धर्मनिमित्तो ह्यसौ सम्बन्धो न लोभनिमित्तः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अगस्त्य ऋषि का विदर्भ देश की राजकन्या लोपामुद्रा के साथ विवाह आर्ष प्रकार का ही था। यदि वर द्वारा दिया जाने वाला मूल्य वस्तुतः कन्या-शुल्क या क्रयमूल्य होता तो निर्धन अगस्त्य ऋषि राजकन्या के उपयुक्त क्रयमूल्य न दे पाते। अतः वर द्वारा दिया जाने वाला गौयुगल अथवा वस्त्र कन्या के प्रति सम्मान के प्रतीक मात्र होते थे – यही मानना समीचीन है।

आर्ष विवाह को महत्त्व वस्तुतः ऋषि से मिला। ऋषिगण प्रायः ज्ञानान्वेषण के लिए मुक्त रहना चाहते थे और विवाह की इच्छा ही नहीं करते थे। किन्तु मेधावी ऋषि की सन्तति समाज के लिए वैभव हो सकती थी। अतः ऋषि द्वारा कन्या के पिता को गौयुगल या वस्त्रयुगल देना विवाहेच्छा का सूचक था। डॉ० वेद मित्र भी यही प्रतिपादित करते हैं –

'It is clear that the cattle given by the groom is not the sale price of the bride; it merely indicated that the sagely groom has decided to live a house holder's-life and earn his livelihood by agricultural pursuits.........Even if no children are born of such union, the sagely temper and the congenial companionship are ensured.[२]

आर्ष विवाह में भी वरचयन में कन्या की सहमति, असहमति अथवा सम्मति का कोई प्रश्न नहीं था। इसमें वर द्वारा वधू का चयन होता था और कन्या के माता पिता अथवा अभिभावक द्वारा स्वीकृति मिलती थी।

आर्ष विवाह को प्रशस्त और धर्म्य विवाह प्रकारों में परिगणित किया गया। यह विवाह ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण के उपयुक्त था।[३] आर्ष विवाह से उत्पन्न सन्तति समाज में प्रशंसनीय होती थी और अपनी तीन पीढ़ियों का नरक से उद्धार करती थी।[४]

राक्षस विवाह :

कन्यापक्षीय जनों को घायल करके या मार कर रोती चिल्लाती हुई कन्या को बलपूर्वक हरण करके ले जाना राक्षस विवाह कहलाता है।[५] इस विवाह का प्रमुखतम लक्षण है 'बलपूर्वक हरण'। यह कन्या का हरण या तो पिता के घर से हो सकता है,[६] अथवा उद्यान की ओर जाती हुई या एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जाती हुई कन्या का हो सकता है।[७] वसिष्ठ, वात्स्यायन एवं मनु के मत में हरण होते समय कन्या के जो भी आत्मीय जन या परिजन बाधक सिद्ध होते थे,

---

१. वा०रा० ७.२.२५.
२. मित्र, वेद – हैप्पी मैरिड लाइफ इन एनशेंट इण्डिया, पृ०ठ ३३.
३. आप०ध० २.५.१२.३.; गौ०ध० १.४.१२.;
बौ०ध० १.२.२०.१०.; महाभारत १.७३.८-९.; १.९६.९.
४. गौ०ध० १.४.२५.; आ०गृ० १.४.२७-२८.;
५. गौ०ध० १.४.१०. प्रसह्यादानाद् राक्षसः।
६. म०स्मृ० ३.३३. हत्वा छित्त्वा भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥
७. का०सू० ३.५.२७. ग्रामान्तरमुद्यानं वा गच्छन्तीं विदित्वा सुसम्भृतसहायो।
नायकस्तदा रक्षिणो वित्रास्य हत्वा वा कन्यामपहरेत्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनकी या तो हत्या कर दी जाती थी, या उन्हें क्षत विक्षत कर दिया जाता था या उनका मकान तोड़ दिया जाता था।[1]

स्त्री हरण करके उससे विवाह कर लेने की प्रथा राक्षसों में सर्वाधिक प्रचलित थी और इसी से सम्भवत: इस विवाह प्रकार का नाम राक्षस विवाह पड़ा। रावण की भतीजी कुम्भीनसी को मधु राक्षस बलपूर्वक हरण करके ले गया और उससे विवाह किया।[2] रावण ने सीता का बलपूर्वक हरण करके उनसे अपनी भार्या बनने का अनुरोध किया था। सीता यद्यपि दूसरे की विवाहिता स्त्री थी, फिर भी रावण ने कहा कि 'मेरी भार्या बनने से धर्मलोप नहीं होगा क्योंकि राक्षसों में यह प्रथा प्राचीन काल से प्रचलित है।'[3] यदि विवाहिता स्त्री का हरण करके उससे विवाह किया जा सकता था, तो कन्याओं का हरण तो और भी अधिक सरल रहा होगा। सीता हरण के पश्चात् उन्हें बलपूर्वक अपनी पत्नी बना लेने का प्रस्ताव जब रावण के मन्त्रियों ने किया,[4] तब रावण ने पुंजिकस्थला अप्सरा के कारण दिए गए जिस शाप का उल्लेख किया – वह कथा उस समय राक्षसों में होते हुए सामाजिक सुधारों की ओर इंगित करती है। इन सुधारों की आवश्यकता सम्भवत: इसलिए थी कि स्त्री के प्रति की गई हानि की पूर्ति हो। साथ ही यह अपेक्षा कृत सभ्य आर्य जाति द्वारा प्रस्तुत उदाहरण का प्रभाव भी हो सकता है।[5]

सभी धर्मशास्त्रों में बलपूर्वक हरण का निषेध किया गया है और इस अपराध के लिए विभिन्न दण्ड विधान हैं। किन्तु इस विवाह का अनुमोदन न करते हुए भी धर्मशास्त्रकारों ने विवाह प्रकारों में इसे स्थान इसलिए दिया, जिससे हरण की गई स्त्री समाज में धर्मसम्मत विवाहिता स्त्री का पद पा सके। कन्या के माता पिता अथवा अभिभावक के सम्मिलित हुए बिना ही यह विवाह सम्पन्न हो जाया करता था क्योंकि माता पिता या सम्बन्धीजनों को तो वर क्षतविक्षत कर आता था।

वसिष्ठ ने राक्षस विवाह को 'क्षात्र' आचार बताया है।[6] महाभारत में तो विभिन्न स्थलों पर राक्षस विवाह को ही क्षत्रियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विवाह प्रकार कहा गया है।[7] अर्जुन ने सुभद्रा का बलपूर्वक हरण करके उससे राक्षस विवाह किया, उस समय बलराम आदि यादवों

---

१. व०ध० १.३४.; का०सू० ३.५.२७.; म०स्मृ० ३.३३.;

२. वा०रा० ७.२५.२५.

३. वा०रा० ५.२०.५. स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ॥
वा०रा० ७.२४.१.; ३.४९.२०.

४. वा०रा० ६.१३.

५. व्यास, एस०एन० – इण्डिया इन द रामायण एज, पृष्ठ ३५.

६. व०ध० १.३४.

७. महाभारत १.२११.२२ प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते।
विवाहहेतुः शूराणामिति धर्मविदो विदुः ॥
महाभारत १.९६.११, १.७३.११.;

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के क्रुद्ध होने पर कृष्ण ने राक्षस विवाह प्रकार को ही क्षत्रियों के लिए उपयुक्त आचार बताया था—

'प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोऽनुमंस्यते ।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात्पुरुषो भुवि ।।
एतान्दोषांश्च कौन्तेयो दृष्टवानिति मे मतिः ।
अतः प्रसह्य हृतवान्कन्यां धर्मेण पाण्डवः ।।'

(महाभारत १.२१३.४-५)

अर्थात् 'गायबैल आदि पशुओं के समान कन्या के दान का कौन समर्थन कर सकता है ? (अतः चारों प्रशस्त विवाह प्रकार क्षात्रिय के उपयुक्त नहीं है) सन्तति को कौन पुरुष इस संसार में बेचेगा ? (अतः आसुर विवाह भी सम्भव नहीं है) इन दोषों को देख कर ही अर्जुन ने धर्मपूर्वक सुभद्रा का हरण किया क्योंकि क्षत्रियों के पराक्रम और स्वभाव के अनुकूल राक्षस विवाह ही है ।'

कृष्ण ने स्वयं भी रुक्मिणी का बलपूर्वक हरण करके उससे राक्षस विवाह किया था ।[1]

कन्या का यह बलपूर्वक हरण अपने लिए न होकर दूसरे व्यक्ति के लिए भी हो सकता है । भीष्म ने अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए काशिराज की तीन कन्याओं अम्बा, अम्बालिका एवं अम्बिका का बलपूर्वक हरण किया था ।[2]

क्षत्रियों के अपेक्षाकृत पराक्रमी होने के कारण यद्यपि इसी वर्ण में राक्षस विवाह के अधिकाधिक उदाहरण प्राप्त होते हैं, तथापि इस राक्षस विवाह प्रथा को अपना लेने पर भी क्षत्रियों ने इसमें एक सुधार किया था । यदि हृता कन्या अथवा स्त्री सम्मति न दे तो उससे विवाह नहीं किया जाता था, वरन् कन्या की इच्छानुसार लौटा दिया जाता था । भीष्म ने काशिराज की जिन तीन कन्याओं का अपहरण किया, उनमें अम्बा सबसे बड़ी थी और उसने राजा शाल्व को मन ही मन अपना वर चुना था । स्वयंवर में अम्बा राजा शाल्व को ही पति चुनती, किन्तु भीष्म पहले ही उसे हरण कर लाए । अम्बा के मुख से वास्तविकता को जानने के पश्चात् भीष्म ने अम्बा को सादर वापस भेज दिया था ।[3]

बलपूर्वक हरण कर लेने के पश्चात अपहरणकर्ता को कन्या से विधिपूर्वक विवाह करना होता था, जिसमें होम और सप्तपदी के कृत्य आवश्यक थे ।[4] इससे विवाह को वैधता प्राप्त हो जाती थी । यदि अपहरणकर्ता उस कन्या से विवाह करने को तत्पर नहीं हो तो वह कन्या दूसरे व्यक्ति को दी जा सकती थी; किन्तु उस अपराधी अपहरणकर्ता को भीषण दण्ड भुगतना पड़ता था ।[5] महाभारत में भीष्म और परशुराम का युद्ध भी इसीलिए हुआ था कि जब

---

१ श्रीमद्भागवत १०.५२.१८. भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ।।
१०.५४.१८. रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णाद्विडसहन्स्वसुः ।।

२. महाभारत १.९६.११.; ७.११९.१०-११.;

३. महाभारत १.९६.४७-५१.; १३.४४.३७-३८.

४. म०स्मृ० ८.३६६.;

५. या०स्मृ० २.२८७-८८.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भीष्म द्वारा वापस भेजी गई अम्बा को राजा शाल्व ने स्वीकार नहीं किया तो अपमानिता अम्बा ने लौट कर भीष्म से स्वयं विवाह करने को कहा, क्यों कि भीष्म ही अपहरणकर्ता थे। किन्तु आजन्म ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा के कारण भीष्म ने अम्बा से विवाह करना स्वीकार नहीं किया।[१] भीष्म के इस आचरण से क्रुद्ध परशुराम ने भीष्म से भयंकर युद्ध किया। अपमानिता अम्बा ही अगले जन्म में शिखण्डी बनकर भीष्म की मृत्यु का कारण बनी।[२]

समस्त वर्णों में अधिक बलशाली माने जाने के कारण क्षत्रियों के लिए तो यह विवाह धर्म्य है किन्तु स्मृतिकारों के मत में यह विवाह ब्राह्मणों के लिए अधर्म्य है।[३]

राक्षस लोग अपने क्रूर एवं शक्तिशाली कार्यों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। राक्षस विवाह में क्रूरतापूर्वक कन्या के आत्मीय जनों को मारने और शक्तिपूर्वक कन्या का हरण करने के कारण इस विवाह प्रकार का नाम राक्षस विवाह पड़ा।[४] राक्षस जाति में सर्वाधिक प्रचलित होने के कारण इस विवाह का नाम राक्षस विवाह हुआ – इस आशय के रामायण के कथन में 'राक्षस' शब्द और 'राक्षस जाति' को परस्पर पर्याय मान लेने के भ्रम से यह विचार प्रवृत्त हो सकता है। मूलतः यह पद 'जिससे बचाव या रक्षा की आवश्यकता है' – इस भाव का द्योतक होकर दुष्ट, गुण्डे आदि का वाचक रहा होगा। इस विवाह प्रथा में संभ्रांत जनों द्वारा अपनी कन्याओं को अपहर्त्ताओं से बचाना अभीष्ट था, परन्तु इसमें वे सफल नहीं हो पाते थे। कदाचित् इस नाम का यही या यह भी आधार रहा हो।

इस विवाह का परिहरण करना चाहिए क्योंकि यह निन्दित अथवा अधर्म्य विवाह है और निदिन्त विवाह से निन्दित सन्तान ही उत्पन्न होती है।[५]

आसुरविवाह –

कन्या के माता पिता अथवा अभिभावक को सामर्थ्यानुसार उचित मूल्य देकर वधू प्राप्त करना आसुर विवाह कहलाता है।[६] वसिष्ठ ने इस विवाह को मानुष विवाह की संज्ञा दी है।[७] इस संज्ञा से वसिष्ठ का तात्पर्य सम्भवतः यह था कि विवाह का यह प्रकार वैश्यों और शूद्रों में ही सर्वाधिक प्रचलित था। क्यों कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए विवाह के अन्य प्रकार उचित बताए गये थे, अतः वैश्य तथा शूद्र 'मानुष' में उसी प्रकार परिगणित कर लिए गए हों जैसे 'विश' का अर्थ प्रजा होने पर भी यह शब्द सामान्यतया वैश्यों के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है।

---

१. महाभारत ५.१७८.४-७-३८.
२. महाभारत ५.१८६-१९०.
३. बौ०ध० १.११.२०.१२.: महाभारत १.७३.११
४. काणे,पा०वा० — धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २९८.
५. म०स्मृ० ३,४१-४२.
६. गौ०ध० १.४.९. वित्तेनाननतिः स्त्रीमतामासुरः।
म०स्मृ० ३.३१. ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते।
७. व०ध० १.३५. परिणत्वा धनक्रीतां स मानुषः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आसुर विवाह प्रकार में वर द्वारा कन्या का शुल्क दिया जाता था, किन्तु प्रायः सभी सूत्रकार तथा स्मृतिकार कन्याशुल्क की सीमा अथवा परिमाण के सम्बन्ध में मौन हैं। कम से कम अथवा अधिक से अधिक कन्याशुल्क कितना हो – यह किसी धर्मशास्त्रकार ने नहीं लिखा है। मनु आदि ने केवल यही निर्देश दिया कि कन्या की योग्यता और वर की सामर्थ्य के अनुसार कन्या शुल्क दिया जाना चाहिए।[1] यह कन्याशुल्क न केवल कन्या के माता पिता अथवा अभिभावक को दिया जाए वरन् कन्या को भी अपनी सामर्थ्यानुसार वस्त्र, रत्न एवं स्वर्ण दिया जाना चाहिए।[2] धर्मसूत्रकारों में वसिष्ठ तथा आपस्तम्ब ही ऐसे हैं जिन्होंने कन्याशुल्क के निर्धारण का प्रयत्न किया।[3] किन्तु वसिष्ठ द्वारा बताया गया शुल्क सामान्य स्थिति के व्यक्ति के योग्य प्रतीत नहीं होता; इसके अतिरिक्त वसिष्ठ ने अलग अलग स्थलों पर भिन्न भिन्न करते मात्रा में शुल्क निर्धारित किया है।

कन्या शुल्क लिए जाने के कारण आसुर विवाह में कन्या विक्रय की वस्तु थी। अतः माता पिता अथवा अभिभावकों के लिए स्मृतिकारों ने यह निर्देश किया कि वे कन्या के समस्त गुणों अथवा अवगुणों को वर के सम्मुख स्पष्ट कर दें। कन्या के गुणावगुण को जानकर वर उसके सम्बन्ध में स्पष्ट निश्चय कर सकता था। यदि माता पिता अपनी कन्या के दोषों को स्पष्ट नहीं थे तो वे दण्ड के भागी होते थे।[4]

वैदिक साहित्य में वधूशुल्क लेकर कन्याओं के विवाह के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं।[5] किन्तु उस समय क्रय विक्रय की प्रथा के प्रचलित होने पर भी उन प्रसंगों में ही इस प्रथा के प्रति अनादर का-सा भाव परिलक्षित होता है, क्योंकि आदरयोग्य जामाता को अनादर पूर्वक विजामाता कह कर संबोधित किया गया है।[6] यह अनादर स्पष्ट सूचित करता है कि द्रव्य देकर कन्या ग्रहण करने वाले व्यक्ति के प्रति माता पिता अनिच्छा का भाव ही प्रगट करते थे।

रामायण एवं महाभारत में भी आसुर विवाह के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। राजा दशरथ ने कैकेयी से आसुर विवाह किया था, क्योंकि उन्होंने रत्नादि के अतिरिक्त कन्या का शुल्क राज्य के रूप में दिया था और कैकेयी के पिता से यह प्रतिज्ञा की थी कि कैकेयी का पुत्र ही दशरथ के राज्य का राजा बनेगा।[7]

---

१. म०स्मृ ३.३१.

२. आ०गृ० १.४.३०

३. व०ध० १ ३६.; २९.१९.; आप०ध० २.६.१३.११

४. म०स्मृ० ८.२२४. यस्तु दोषवतीं कन्यां अनाख्याय प्रयच्छति।
तस्य कुर्यान्नृपो दंडं स्वयं षण्णवति पणान् ॥
या०स्मृ० १.६५. अनाख्याय ददद्दोषं दण्डच उत्तमसाहसम्।

५. ऋ०वे० १.१०९.२.; निरुक्त ३.४.; ६.९.;
ऐ०ब्रा० ३३; तै०सं० ५.२.१.३.; तै०ब्रा० १.७.१०.

६. ऋ०वे० १.१०९.२. अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।

७. वा०रा० २.१०७.३.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाभारत में ऋचीक ऋषि का वर्णन है जिन्होंने वधू शुल्क देकर राजा गाधि की पुत्री सत्यवती से आसुर विवाह किया।[१] भीष्म अपने पौत्र पाण्डु के लिए मद्रदेश की राजकन्या माद्री को पर्याप्त वधूशुल्क देकर लाए थे।[२] महाभारत के समय में यद्यपि यह आसुर विवाह पर्याप्त प्रचलित था किन्तु समाज के मनीषी इसको हेय दृष्टि से देखते थे – यह भी उन्हीं प्रसंगों से स्पष्ट हो जाता है। भीष्म ने जब पाण्डु के लिए माद्री को माँगा तो शल्य ने बहुत संकोचपूर्वक अपनी कुल परम्परा की दुहाई देते हुए अपनी बहन माद्री के लिए वधू शुल्क माँगा।[३] यदि इस प्रथा को हेय न माना जाता होता तो शल्य को संकोच करने की आवश्यकता ही नहीं थी। महाभारत में ही अन्य स्थलों पर स्पष्टतया वधूशुल्क प्रथा की निन्दा की गई है – 'कन्या का मूल्य लेने वाला पातक करता है, मृत्यूपरान्त नरक में गिरता है और सात पीढ़ी तथा कुल को कलंकित करता है।[४]

कालिदास के साहित्य में यद्यपि आसुर विवाह का स्पष्ट उदाहरण प्राप्त नहीं होता, तथापि उन्होंने रघुवंश में एक स्थल पर अप्रत्यक्ष रूप में आसुर विवाह की ओर संकेत किया है।[५] इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालिदास के समय में आसुर विवाह ज्ञात अवश्य रहा होगा, क्योंकि हर समाज के हर काल में कुछ ऐसे धनी व्यक्ति अवश्य हो सकते हैं, जो अयोग्य होने पर भी धन के द्वारा इच्छित वस्तु प्राप्त कर लें।[६]

सूत्रकारों में भी इस विवाह प्रकार के सम्बन्ध में दो मत हैं। अधिकांश सूत्रकार आसुर विवाह को निन्दित एवं अधर्म्य बताते हैं क्योंकि कन्या का विक्रय अपराध है।[७] किन्तु वसिष्ठ ने आसुर विवाह का अनुमोदन किया है।[८]

यद्यपि समाज में प्रचलित परम्परा को ध्यान में रखकर सूत्रकारों ने आसुर विवाह का विधान कर दिया है तथापि यह भी निर्देश किया है कि मूल्य देकर क्रय की गई वधू को पितरों एवं देवताओं के लिए किए जाने वाले यज्ञों में भाग लेने का अधिकार नहीं है।[९] मनु ने व्यवस्था दी है कि 'पिता को अपनी कन्या के बल पर कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि वह कुछ भी लेता है तो कन्या को बेचने वाला कहा जाएगा। यदि कन्या के सम्बन्धी वर-पक्ष द्वारा दिए

---

१. महाभारत १३.४.९-१२.

२. महाभारत १,१०५.४-५.

३. महाभारत १.११२.९. (बम्बई एडीशन) पूर्वैः प्रवर्तितं किञ्चित्कुलेऽस्मिन्नृपसत्तमैः।
साधु वा यदि वाऽसाधु तन्नातिक्रान्तुमुत्सहे॥

४. महाभारत १३.४५.१८-१९.; १३.९५.५८.; १३.९६.३१.

५. रघुवंश ११-३८. ....दुहितृशुल्कसंस्थया।

६. उपाध्याय, बी०एस० – इण्डिया इन कालिदास. पृष्ठ १८२.

७. म०स्मृ० ३.५१.; बौ०ध० १.११.२१.५.

८. व०ध० १.३५.

९. बौ०ध० १.११,२१.४-५. क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते।
सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां कश्यपोऽब्रवीत्।
शुल्केन ये प्रयच्छन्ति स्वसुतां लोभमोहिताः।
पतन्ति घोरे नरके घ्नन्ति चासप्तमात्कुलम्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गए पदार्थ कन्या को वापस दे देते हैं तो यह कन्या विक्रय नहीं कहा जाएगा। इस प्रकार वर-पक्ष से धन लेकर कन्या को दे देना कन्या का आदर करना है। सम्बन्धियों को चाहिए कि वे अपने कल्याण के लिए आभूषण आदि देकर कन्या को सम्मानित करें।'[१]

इस विवाह प्रकार का नाम आसुर कैसे पड़ा – इसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं होता। डॉ० अल्तेकर का कथन है कि प्राचीन असीरियन लोगों में वधू शुल्क लेने की प्रथा थी। उसी आधार पर इस विवाह का नाम आसुर हो सकता है।[२]

शतपथ ब्राह्मण में कुसीदियों को असुर कहा गया है।[३] प्रतीत होता है कि असु का एक अर्थ 'धन' भी था। अतः धन लेने, अपहरण करने वाला असुर कहलाता होगा। इस आधार पर भी इस विवाह को आसुर कहा गया हो सकता है।

जैसा ऊपर कहा गया है, इस विवाह में पिता धन लेकर अपनी पुत्री को उसके प्रार्थी वर को दे देता था। इस में वर के गुणावगुण के विचार का स्थान नहीं था, अतः पिता मानों कन्या को फेंक देता था। अतः √अस्=अस्यति से भी इसे आसुर विवाह कहा गया हो सकता है। निरुक्त-कार ने निघण्टु की व्याख्या करते हुए कुछ इसी प्रकार का भाव प्रकट किया है।[४]

हारीत ने आसुर विवाह की एक बिल्कुल ही भिन्न परिभाषा दी है जो किसी भी शास्त्रकार से मेल नहीं खाती – 'जब कन्या एक ऐसे पुरुष को दी जाए, जिसे दूसरे लोग कपटी एवं वंचक मानते हैं, तो वह आसुर विवाह कहलाता है।'[५] ऐसा व्यक्ति आपाततः ही असुर की कोटि में आता है।

आसुर विवाह को स्मृतिकारों ने ब्राह्मण के लिए अधर्म्य किन्तु क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए धर्म्य बताया है।[६] इसका कारण सम्भवतः यह है कि ब्राह्मण तो गुणवान् होता ही था। वैसे भी वह धनहीन होता था। उस के लिए यह विवाह सम्भव ही नहीं था। परन्तु अन्य वर्णों में विगुण या कम गुण वाले व्यक्ति सम्भव थे अतः वे इस विवाह में प्रवृत्त हो सकते थे। यह विवाह का निन्दित प्रकार था और निन्दित विवाह से निन्दत सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना रहती ही है। इसलिए ब्राह्मणेतर वर्णों को भी आसुर विवाह का परिहार करना चाहिए।

गान्धर्व विवाह :

कन्या एवं वर के पारस्परिक प्रणय के कारण पारस्परिक स्वेच्छा से दोनों का सम्मिलन गान्धर्व विवाह कहलाता है।[७] मनु के मत में इस विवाह का मूल काम से प्रेरित और

---

१. म०स्मृ० ३.५१., ५४, ५५.
२. अल्तेकर ए०एस० – पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृष्ट ३९,
३. शत०ब्रा० १३.४.३.११.
४. निरुक्त ३.४. तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमां समिति।
५. वीरमित्रोदय, संस्कार प्रकाश पृष्ठ ८५३.
६. म०स्मृ० ३.२४. एकमासुरं वैश्यशूद्रयोः।
महाभारत १.७३.११. विट्शूद्रेष्वासुरः स्मृतः।
७. गौ०ध० १.४.८, इच्छन्त्याः स्वयं संयोगो गान्धर्वः।
ना०स्मृ० १२.४२.; कौ०अर्थ० ३.२.६.; आप०ध० २.५.११.२०.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मैथुन है।[1] आश्वलायन ने इसमें इतना और जोड़ दिया कि कन्या और प्रेमी के बीच को: समझौता होने पर ही गान्धर्व विवाह होता है।[2]

स्मृतियों और महाकाव्यों आदि में वर्णित गान्धर्व विवाह के स्वरूप विवेचन से ज्ञात होता है कि किसी समय यह विवाह प्रकार अच्छा माना जाता था, परन्तु कालान्तर में समाज के विचारों में परिवर्तन आया। संस्कृत साहित्य में विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में मान्य है, जिसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक कृत्यों द्वारा सद्गुणों की प्राप्ति और उत्तम सन्तानोत्पत्ति है। किन्तु गान्धर्व विवाह के विभिन्न उदाहरणों से ज्ञात होता है कि इसका प्रारम्भ काम-पिपासा की शान्ति मात्र के लिए था, इसलिए इस विवाह में वर-वधू दोनों की सहमति-सम्मति होने पर भी स्मृतिकारों ने इसे चारों धर्म्य विवाह प्रकारों की अपेक्षा निकृष्ट एवं अस्वीकृत माना है।

गान्धर्व विवाह की प्रथा राजकुलों में ही अधिक प्रचलित रही है।[3] महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म युधिष्ठर से कहते हैं – 'हे युधिष्ठिर ! अपनी इच्छा का परित्याग करके कन्या उसी व्यक्ति को देनी चाहिए, जिसको कन्या चाहती हो और जो कन्या को चाहता हो। वेदज्ञ मनुष्यों के द्वारा यह गान्धर्व (विवाह) धर्म कहा जाता है।'[4]

महाभारत में ही दुष्यन्त-शकुन्तला का विवाह गान्धर्व प्रकार का उत्कृष्ट निदर्शन है। शकुन्तला को विवाह के लिए प्रेरित करता हुआ दुष्यन्त कहता है – 'हे शकुन्तले ! गान्धर्व विधि विवाहों में श्रेष्ठ कही गई है। गान्धर्व विधि से ही मेरा वरण करो। सकामा कन्या का सकाम पुरुष से – विवाह संस्कार में प्रयुक्त मन्त्रों के पाठ के बिना ही – एकान्त में सम्बन्ध – यह गान्धर्व विधि क्षत्रिय के लिए श्रेष्ठ कही गई है।'[5]

प्रेम विवाह अथवा गान्धर्व विवाह के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के धर्मशास्त्रकार एकमत नहीं हैं कि इसको प्रशस्त विवाह प्रकारों में गिना जाए अथवा अप्रशस्त विवाह प्रकारों में। बौधायन ने अन्य विचारकों का मत प्रस्तुत करते हुए गान्धर्व विवाह को प्रशस्त श्रेणी में माना क्योंकि इसमें पारस्परिक प्रणय है।[6] कामसूत्र में वात्स्यायन ने गान्धर्व विवाह को आदर्श माना है। उन्होंने इसके अनेक कारण दिए हैं – गान्धर्व विवाह पारस्परिक प्रणय पर आधारित होने के कारण

१, म०स्मृ० ३.३२. इच्छयान्योन्यसंयोग: कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्य: कामसम्भव: ॥

२. आ०गृ० १.४.२९. मिथ: समयं कृत्वोपयच्छेत स गान्धर्व:।

३. वा०रा० ३.१७.२५., ५.९.६८-६९.

४. महाभारत १३.४४.५. आत्माभिप्रेतमुत्सृज्य कन्याभिप्रेत एव यत्।
अभिप्रेता च या यस्य तस्मै देया युधिष्ठर ॥
गान्धर्वं इति तं धर्मं प्राहुर्वेदविदो जनाः ॥

५. महाभारत १.७३.४. विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्व: श्रेष्ठ उच्यते।
१.७३.२७. क्षत्रियस्य च गान्धर्वो विवाह: श्रेष्ठ उच्यते।
सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः ॥

६. बौ०ध० १.११.२०.१६. गान्धर्वं अप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सर्वोत्तम है क्योंकि वस्तुतः पारस्परिक प्रेम ही विवाह का मूलभूत आधार और लक्ष्य है। यह विवाह सुखद, अल्पप्रयत्नसाध्य और विधि विधानों के प्रतिबन्धों से मुक्त होता है, तथा अनुराग ही इसमें प्रधान होता है।[१] भवभूति द्वारा मालतीमाधव में उद्धृत प्राचीन विचारक अंगिरा का भी गान्धर्व विवाह के प्रति यही भाव था।[२]

किन्तु कालक्रम में धीरे-धीरे गान्धर्व विवाह के प्रति विचारकों की धारणा बदलती गई। समाज में विवाह योग्य आयु जैसे-जैसे कम होती गई, गान्धर्व विवाह भी अपना प्रशस्त रूप खोता गया। इस विवाह में कामातुरता ही प्रधान होने के कारण इसको हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। इस विवाह प्रकार का नाम भी गान्धर्व इसीलिए पड़ा, क्योंकि वैदिक युग से ही गन्धर्व जाति अपनी शृंगार-प्रियता और प्रेमशीलता के लिए प्रसिद्ध रही है।[३] इस विवाह में धार्मिक संस्कारों के सम्पन्न होने से पूर्व ही कामवासना-तृप्ति होने के कारण इसका नाम गान्धर्व विवाह पड़ा।[४]

कालिदास ने पौराणिक सूत्र से प्राप्त कथानक को सिद्ध करने के लिए 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में गान्धर्व विवाह को श्रेयस्कर सिद्ध करने का प्रयत्न अवश्य किया है, किन्तु ऐसे विवाह के प्रति समाज की अरुचि एवं भर्त्सना इसी नाटक में भली प्रकार प्रतिविम्बित हुई है। दुष्यन्त ने शकुन्तला को समझाने की चेष्टा करते हुए कहा—

'गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः॥'[५]

इस श्लोक में 'श्रूयन्ते' पद से ही यह ज्ञात हो जाता है कि कालिदास के समय तक गान्धर्व विवाह का प्रचलन विरल अथवा समाप्त – प्रायः हो चुका था। कण्व ने वस्तुस्थिति को जानने के पश्चात् शकुन्तला का जो अभिनन्दन किया,[६] उससे भी यही ध्वनित होता है कि 'कामातुर अवस्था में कन्या एवं पुरुष वस्तुतः एक दूसरे को जान नहीं पाते, किन्तु भाग्यवशात् तुम्हें ठीक ही पति मिला।

इसी नाटक के पञ्चम अंक में राजसभा में जब राजा अपनी पूर्व परिणीता पत्नी को न

---

१. का०सू० ३.५.२९. व्यूढानां हि विवाहानामनुरागः फलं यतः।
मध्यमेऽपि हि सद्योगो गान्धर्वोस्तेन पूजितः॥
३.५.३०. सुखत्वादबहुक्लेशादपि चावरणादिह।
अनुरागात्मकत्वाच्च गान्धर्वो प्रवरो मतः॥
२. मा०मा० – अंक २ – इतरेतरानुरागो हि दारकर्मणि परार्ध्यं
मंगलं गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा यस्यां
मनश्चक्षुषोरनुबंधः तस्यामृद्धिर्भवति।
३. तै०सं० ६.१.६.५.; ऐ०ब्रा० ५.१. स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः।
४. अल्तेकर, ए०एस० – पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृष्ठ ४२.
काणे, पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २९८.
५. अभि०शा० ३.२०.
६. अभि०शा०, चतुर्थ अंक—दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि
यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पहचान कर शकुन्तला का प्रत्याख्यान करता है, तब गौतमी एवं शार्ङ्गरव के तिरस्कारयुक्त वचन भी तत्कालीन जनमानस की भावनाओं का नेतृत्व सा करते प्रतीत होते हैं।[1] जिस विवाह में माता पिता अथवा गुरुजनों की पूर्व सम्मति न हो – उसमें स्खलन की सम्भावनाएँ बहुत होती हैं। विवाह की भूल सुधारी नहीं जा सकती, क्योंकि यह अविच्छेद्य सम्बन्ध है। इसीलिए कालिदास चेतावनी-सी देते प्रतीत होते हैं – 'भली भाँति परीक्षा करके एकान्त में संग करना चाहिए। अज्ञात हृदय के प्रति मित्रता वैरी हो जाती है।'[2] रघुवंश में कालिदास ने ऐसी कन्या की प्रशंसा की है, जो विवाह में पिता की इच्छा को महत्त्व देती है।[3] शाकुन्तलम् में भी गान्धर्व विवाह की वासना अन्ततोगत्वा विरहाग्नि में जलकर ही निखर सकी है।

वसिष्ठ ने गान्धर्व विवाह में सवर्णा कन्या को ही ग्रहण करने को कहा है।[4] शाकुन्तलम् में कालिदास ने इसी नियम के अनुकूल राजा की मन:स्थिति का वर्णन किया है। शकुन्तला को देखने के पश्चात् अनुरागयुक्त राजा के मन में यह विचार आता है कि कहीं कण्व की यह पुत्री ब्राह्मण कन्या न हो, किन्तु फिर स्वयं ही वह अपने अन्तःकरण के प्रमाण पर इस सन्देह को निराकृत कर देता है।[5] सखियों के मुख से शकुन्तला को क्षत्रिय पुत्री – सवर्णा – जान कर राजा को बहुत सन्तोष मिलता है – लब्धावकाशो मे मनोरथः।

किन्तु गान्धर्व विवाह सवर्णों में ही हो, यह सम्भव नहीं जान पड़ता। वर्ण अथवा जाति भेद को ध्यान में रखकर प्रणय नहीं होता। वसिष्ठ ने यह नियम सम्भवतः गान्धर्व विवाह के क्षेत्र को सीमित रखने के लिए बनाया होगा।

मनु ने गान्धर्व विवाह और राक्षस विवाह को भिन्न-भिन्न भी माना है और गान्धर्व विवाह को राक्षस विवाह से संयुक्त भी माना है।[6] महाभारतकार ने भी बिल्कुल ऐसा ही वर्णन किया है।[7] इस प्रकार गान्धर्व विवाह के भी दो उपभेद हो जाते हैं – राक्षस विवाह से संयुक्त गान्धर्व

---

१. अभि०शा० ५.१६. नापेक्षितो गुरुजनोऽनया त्वया पृष्टो न बन्धुजनः।
एकैकमेव चरिते भणामि किमेकमेकस्य॥
२. अभि०शा० ५.२४. अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्संगतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥
३. रघुवंश ५.३८. श्रीः साभिलाषाऽपि गुरोरनुज्ञां,
धीरेव कन्या पितुराचकांक्ष।
४. व०ध० १.३३.
५. अभि०शा० १.२१. असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
यदार्य्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥
६. म०स्मृ० ३.३६. पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ॥
७. महाभारत १.७३.१३. गान्धर्वराक्षसौ क्षत्रे धर्म्यौ तौ मा विशंकिथाः।
पृथग्वा यदि वा मिश्रौ कर्तव्यौ नात्र संशयः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह, और राक्षस विवाह से असंयुक्त गान्धर्व विवाह। राक्षस विवाह से संयुक्त गान्धर्व विवाह का सुन्दर उदाहरण कृष्ण रुक्मिणी विवाह है। यह विवाह भी राक्षस विवाह के नियमों से नियमित होता है।

बौधायन एवं नारद ने गान्धर्व विवाह को सब वर्णों के उपयुक्त बताया है।[1]

पैशाच विवाह–

कन्या की प्रमत्तता, सुप्तावस्था अथवा उन्मत्तावस्था में उस से सम्भोग करना पैशाच विवाह कहलाता है।[2]

स्मृतिकारों ने इस विवाह प्रकार को अधमतम बताया है। हर स्थल पर पैशाच विवाह की बहुत भर्त्सना की गई है। कुछ स्मृतिकारों ने इस विवाह की परिभाषा इस प्रकार दी कि 'जिस विवाह में कन्या को धोखा दिया जाए वह पैशाच विवाह है।'[3] आपस्तम्ब और वसिष्ठ ने अपने धर्मसूत्रों में इस विवाह प्रकार का उल्लेख ही नहीं किया है।

राक्षस विवाह और पैशाच विवाह में परस्पर बहुत अधिक अन्तर नहीं पाया जाता। राक्षस विवाह में यदि कन्या का बलपूर्वक हरण है तो पैशाच विवाह में कपटपूर्वक कन्या का सतीत्वनाश और चरित्रभ्रंश है। एक प्रकार से पैशाच विवाह को राक्षस विवाह का ही अधिक भ्रष्ट रूप कहा जा सकता है।

पैशाच विवाह को राक्षस विवाह की भी अपेक्षा निकृष्ट इसलिए कहा गया है कि इस विवाह के सभी तत्त्व समाजविरोधी और गर्हित है। कपट, प्रतारणा एवं वंचनापूर्वक किए गए सभी कार्य स्मृतिकारों ने शून्य माने हैं। इसी प्रकार कन्या की सहमति के बिना उससे सम्भोग करना भी अत्यन्त गर्हित एवं दन्डनीय दूषण है। पैशाच विवाह में कपटपूर्वक कन्या से सम्भोग होने के कारण ही स्मृतिकारों ने इसे घोर पाप और निकृष्टतम विवाह माना है।

इस विवाह प्रकार का नाम पिशाच जाति के आधार पर पड़ा प्रतीत होता है। पिशाच लोग लुक छिप कर कर्म करते है, अतः धोखे से किए गए बलात्कार को पैशाच संज्ञा दी गई हो सकती है। यह भी सम्भव है कि यह विवाह आदिम कहलाने वाली जातियों की प्रथाओं के प्रभाव से आर्यों में आया हो।

पैशाच विवाह के सर्वथा विरुद्ध होते हुए और उसके लिए सहमति न देने पर भी स्मृतिकारों द्वारा इस विवाह को वैध विवाह मान लेना समाज के वैदग्ध्य का परिचायक है। वंचनापूर्वक किए गए बलात्कार को विवाह रूप में वैध बना कर दुराचार से प्रताड़ित कन्या को सुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। इस का एक दूसरा पक्ष भी है। शीलभंग

---

१. बौ०ध० १.११.२०.१६.; ना०स्मृ० १२.४४.

२. गौ०ध० १.४.११. असंविज्ञातोपसंगमनात् पैशाचः।
म०स्मृ० ३.३४. सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः॥
महाभारत १.९६.१०. प्रमत्तामुपयन्त्यन्ये।

३. या०स्मृ १.६१. पैशाचः कन्यकाछलात्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कन्या को पतिता मान कर उसे ऐसे पापी के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया जाता होगा। परिणामतः ऐसे विवाहों को समाज ने अनिर्वा। रूप से मान्यता दी। पिछली शताब्दी में आर्यसमाज के प्रादुर्भाव से पूर्व विधर्मी जन हिन्दू स्त्रियों और कन्याओं को धोखे से छू देते थे, पानी आदि डाल देते थे और इन स्त्रियों को उन के साथ जाने और विधर्मी बनने के लिए विवश होना पड़ता था। हो सकता है कि ऐसी ही किन्हीं अत्र अज्ञात परिस्थितियों में इस विवाह प्रकार को मान्यता मिली हो।

मनु ने पैशाच विवाह को ब्राह्मण वर्ण के लिए अधर्म्य बताया है।[1] बौधायन ने वैश्य एवं शूद्र के लिए यह विवाह धर्म्य मानते हुए कारण दिया है कि 'वैश्य एवं शूद्र अपना स्त्रियों को नियन्त्रण में नहीं रख पाते।'[2] तो भी यह निन्दित विवाह है, और इस विवाह का निषेध ही किया गया है।[3]

विवाह-प्रकार-विवेचन :

विवाह के इन प्रकारों की संख्या एवं उनकी शास्त्रीयता के सम्बन्ध में धर्मसूत्रकारों में पर्याप्त मतभेद पायाजाता है। लौकिक संस्कृत साहित्य के किसी भी नाटक अथवा महाकाव्य में आठों प्रकार के विवाहों को ढूँढ़ निकालना तो कथावस्तु के प्रसंग पर निर्भर करता है, किन्तु धर्मसूत्रों में ही नियम विधान में मतैक्य नहीं पाया जाता। स्मृतियों ने विभिन्न वर्णों के लिए इन आठ विवाह प्रकारों की उपयुक्तता के विषय में विभिन्न मत दिए हैं। फिर भी कुछ तथ्यों पर सभी एकमत हैं। सभी ने प्रथम चार विवाह प्रकारों को प्रशस्त एवं धर्म्य बताया है; सभी ने ब्राह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ एवं पैशाच विवाह को निकृष्टतम कहा है। किन्तु विभिन्न स्मृतियों और धर्मसूत्रों में इन विवाह प्रकारों का क्रम भिन्न है।

धर्मसूत्रकारो में गौतम सबसे प्राचीन माने जाते हैं।[4] उनके अनुसार प्रथम चार विवाह प्रकार – ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य और आर्ष — धर्म्य हैं। लेकिन गौतम ही कहते हैं कि कुछ अन्य विचारकों के अनुसार गान्धर्व और आसुर भी धर्म्य है।[5] गौतम ने राक्षस एवं पैशाच विवाहों को प्रचलित मानते हुए भी उन्हें मान्यता नहीं दी है।

वसिष्ठ ने छह ही विवाह प्रकारों का उल्लेख किया है। प्राजापत्य एवं पैशाच विवाह का उल्लेख ही नहीं किया। आपस्तम्ब ने भी प्राजापत्य एवं पैशाच विवाह को छोड़ कर अन्य छह विवाह प्रकारों का ही वर्णन किया है। वसिष्ठ ने राक्षस विवाह को क्षात्रविवाह एवं आसुर विवाह को मानुष-विवाह की संज्ञा दी है। नामों के इस परिवर्तन से वसिष्ठ का तात्पर्य सम्भवतः यह था कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह और वैश्यों में आसुर विवाह ही सर्वाधिक प्रचलित थे।

---

१. म०स्मृ० ३.२३.

२. बौ०ध० १.११.२०.१३-१४— अनियन्त्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति।

३. म०स्मृ० ३.२५ पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यो कदाचन।

४. काणे, पा०वा०— धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग पृष्ठ १०।

५. गौ०ध० १.४.१२-१३ चत्वारो धर्म्याः प्रथमाः। षडित्येके।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बौधायन ने विवाह के आठों प्रकारों का उल्लेख किया है।[१] इन्होंने ब्राह्म, प्राजापत्य, दैव तथा आर्ष विवाह को ब्राह्मण वर्ण के लिए धर्म्य बताते हुए हर पहले प्रकार को अगले विवाह प्रकार से उत्तम बताया है। क्षत्रिय के लिए राक्षस तथा गान्धर्व विवाह, वैश्य के लिए आसुर विवाह और शूद्र के लिए पैशाच विवाह को धर्म्य माना है।

मनु ने भी विवाह के आठों प्रकारों का वर्णन किया है। साथ ही गान्धर्व विवाह के दो उपभेद कर दिए हैं, जैसा गान्धर्व विवाह में लिखा जा चुका है। कौटिल्य ने विवाह के आठों ही प्रकारों को मान्यता दी है।[२]

महाभारत में विवाह प्रकारों के सम्बन्ध में तीन सूचियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें से दो तो आदि पर्व में ही हैं और एक सूची अनुशासन पर्व में है।[३] किन्तु ये तीनों ही सूचियाँ परवर्ती समय की ज्ञात होती हैं, क्योंकि ये धर्मशास्त्रों के नियमों से मेल खाती हैं। इनमें से दो सूचियों में तो विवाह के आठ-आठ प्रकार दिए गए हैं, किन्तु तीसरी सूची में विवाह के पांच ही प्रकार प्राप्त होते हैं। अतः यह भी सम्भव है कि यद्यपि उस समय विवाह के आठों प्रकार लोकसम्मत तो थे किन्तु व्यवहार में केवल पाँच ही प्रकार थे। ये पाँच विवाह प्रकार इस प्रकार हैं – ब्राह्म, गान्धर्व, राक्षस; आसुर एवं पैशाच। पांच विवाह प्रकारों का उल्लेख करने के आधार पर ही इस सूची को प्राचीनतर नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्राजापत्य एवं दैव विवाह ब्राह्म विवाह से मिलते जुलते होने के कारण सम्भवतः उसी में मिला दिए गए हैं – इन सब में ही अभिभावक की सम्मति और कन्या दान समान है। आर्ष विवाह को आसुर विवाह में मिला दिया गया है। इन पाँच प्रकारों में भी प्रथम तीन को धर्म्य और प्रशस्त माना है तथा अन्तिम दो – आसुर और पैशाच को अधर्म्य एवं अप्रशस्त बताया है।[४] महाभारत में क्षत्रियों की परम्परा का ही वर्णन होने के कारण राक्षस और गान्धर्व विवाह को प्रशस्त कहा गया है क्योंकि क्षत्रिय प्रायः इन्ही राक्षस एवं गान्धर्व विधियों से विवाह करते थे।

चारों धर्म्य विवाह प्रकारों में पिता या अन्य अभिभावक के द्वारा कन्यादान दिया जाता है। विवाह में 'दान' शब्द का प्रयोग गौण अर्थ में किया गया था। इसका तात्पर्य था कि पिता के अभिभावकीय उत्तरदायित्व का भार तथा कन्या का संरक्षण एवं नियन्त्रण पति को दे दिया गया।[५] आसुर विवाह में धन तथा धन के मूल्य का सौदा होता था अतः आसुर विवाह को धर्म्य रूप में स्वीकृत नहीं किया गया। आर्ष में भी यद्यपि गोयुगल ग्रहण किया जाता था,

---

१. बौ०ध० १.११ २०.१.

२. कौ०अर्थं० ३.२....

३. महाभारत १.७३.८-९. अष्टावेव समासेन विवाहा धर्मतः स्मृताः—
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमः स्मृतः।
महाभारत १.९६.८-११.; १३.४४.३-९.

४. महाभारत १३.४४.८. पंचानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कथंचन॥

५. काणे, पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २९७.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किन्तु आर्ष एव आसुर में यह अन्तर था कि आर्ष में एक व्यावहारिक सीमा बांध दी गई जब कि आसुर में धन की कोई सीमा ही नहीं थी। राक्षस और पैशाच विवाहों को विवाह प्रकारों के अन्तर्गत गिनाने पर भी स्मृतिकारों ने उन्हें मान्यता नहीं दी, क्योंकि उन्होंने इन दोनों को अपहरण का एक प्रकार – मात्र माना प्रतीत होता है – वास्तविक विवाह नहीं।[1]

आश्वलायन ने विवाह के आठों प्रकारों का वर्णन करके पुनः होम और सप्तपदी की व्यवस्था की है अतः स्पष्ट है कि राक्षस, आसुर, पैशाच – सभी विवाह प्रकारों में होम और सप्तपदी विवाह विधि के आवश्यक कृत्य हैं। राक्षस एवं पैशाच को अपहरण का प्रकार मानने पर भी होम और सप्तपदी का विधान विधिशास्त्रियों ने इसीलिए किया जिससे कन्या का भविष्य सुरक्षित हो जाए, और उनको यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में तथा सन्तान को दाय में भाग का अधिकार मिल जाए। कृष्ण जब रुक्मिणी का हरण करके ले आए तो नगर में आकर उन्होंने रुक्मिणी से विधिपूर्वक विवाह किया था।[2]

सभी स्मृतिकारों ने धर्म्य विवाह प्रकारों से उत्पन्न सन्तति को शीलगुणान्वित एवं कुल तथा पितरों को सुशोभित करने वाला बताया है। मानवीय दुर्बलताओं और विशिष्ठ परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समाज में व्यवस्था, अनुशासन और समन्वय को बनाए रखने के लिए आसुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच इन चार विवाह प्रकारों को अधर्म्य रूप में स्वीकृत तो किया गया है किन्तु इन विवाहों से उत्पन्न सन्तति को क्रूर, असत्यवादी और वेदनिन्दक बताया गया है।

ऐतिहासिक कालक्रम :

ऐतिहासिक समयक्रम की दृष्टि से यदि इन आठों विवाह प्रकारों के क्रमिक विकास का स्वरूप निर्धारित किया जाय, तो धर्म्य विवाह प्रकारों की अपेक्षा अधर्म्य विवाह प्रकार ही अधिक प्राचीन ज्ञात होते हैं। जैसा इस अध्याय के प्रारम्भ में लिखा जा चुका है, संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में विवाह विधिपूर्वक स्थापित सुसंस्कृत संस्था के रूप में प्राप्त होता है और प्राचीन काल की स्थितियों का वहाँ कोई परिचय नहीं मिलता है; तथापि संस्कृत साहित्य में यत्र तत्र बिखरे हुए कतिपय प्रसंगों और समाजशास्त्र की दृष्टि से इन विवाह प्रकारों के कालक्रम का कुछ स्वरूप दर्शन अवश्य किया जा सकता है।

इतिहास में विवाह-प्रकारों का काल निर्धारण करते हुए एक तथ्य उभर कर सम्मुख आता है और वह है, कन्या पर माता पिता या अभिभावक का प्रभुत्व। सन्तति पर माता पिता के अधिकार की तीन श्रेणियाँ की जा सकती हैं –

(१) कन्या पर माता पिता की सत्ता न होना।
(२) कन्या पर माता पिता का अनुशासन होना।
(३) कन्या पर माता पिता का पूर्ण प्रभुत्व होना।

---

१. काणे, पा०वा०—धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २९७

२. श्रीमद्भागवत १०.५४.५३. भगवान्भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान्।
पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह: ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी तथ्य को दूसरे शब्दों में कन्या की विवाह के समय आयु से भी जोड़ा जा सकता है। जब पहली स्थिति में कन्या पर माता पिता की सत्ता न थी, उस समय निश्चित रूप से विवाह के समय कन्या पर्याप्त प्रौढ़ अवस्था की होती होगी। माता पिता के प्रभुत्व स्थापित होने का तात्पर्य है कि कन्या की विवाह की आयु कम हो गई और कन्या पर माता पिता की पूर्ण सत्ता के समय कन्या की विवाह आयु घट कर छह या सात वर्ष अथवा उससे भी कम रह गई। साहित्य में उदरस्थ बालकों के विवाह के प्रसंग भी मिलते हैं। अतः माता पिता का प्रभुत्व और कन्या की विवाह योग्य आयु – ये दोनों ही तथ्य परस्पर सापेक्ष हैं।

(१) **कन्या पर माता पिता की सत्ता न होना :** इस दृष्टिकोण से देखने पर गान्धर्व, राक्षस और पैशाच विवाह सबसे अधिक प्राचीन जान पड़ते हैं।

गान्धर्व विवाह की प्राचीनता की साक्षी स्वयं ऋग्वेद देता है। कन्या एवं पुरुष में पारस्परिक प्रणय हो जाने पर फिर माता-पिता द्वारा विवाह किया जाना एक औपचारिक कृत्य मात्र था। प्रेमिका एवं प्रेमी का पारस्परिक प्रणय, प्रेमी पर विजय पाने की कामना से तिथि पर्वों पर कन्या द्वारा पहने जाने वाले विशेष आभूषण, प्रेमी द्वारा प्रेमिका को उपहार आदि अनेक प्रसंग ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं।[१] इससे स्पष्ट सूचित होता है कि माता-पिता या भाई की पूर्व सम्मति अनिवार्य नहीं थी, केवल कन्या की ही रुचि प्रधान थी।

गान्धर्व विवाह में तो पारस्परिक प्रणय था ही किन्तु यदि यह आकर्षण केवल पुरुष पक्ष में ही होता था, तो वहाँ राक्षस विवाह होता था। पुरुष बलपूर्वक अभीष्ट कन्या को उठा ले जाता था। यदि माता पिता बाधा देते थे तब तो युद्ध होता था, अन्यथा युद्ध नहीं होता था। ऋग्वेद में विमद नामक पुरुष द्वारा बलपूर्वक कन्या को ले जाए जाने का प्रसंग प्राप्त होता है।[२] सायणादि की इस सन्दर्भ में स्वयंवर की कल्पना अनावश्यक है। सायणीय कल्पना इस प्राचीन अवशेष के रूप को बिल्कुल बदल देती है।

समाजशास्त्र की दृष्टि से भी राक्षस विवाह बहुत प्राचीन है। यह उस समय का स्मृति चिह्न है जब युद्ध में शत्रुओं को हराने के बाद आदिम मनुष्य युद्ध के पुरस्कार रूप में स्त्री को मूल्यवान् सम्पत्ति की भाँति उठा ले जाया करते थे। आदिम सामाजिक स्थितियों में स्त्री कई प्रकार से उपयोगी थी। पुत्रोत्पत्ति, पशुधन की रक्षा, कृषि, गृहप्रबन्ध और सेवा कार्य – ये सभी स्त्री के कार्य थे। अतः बलपूर्वक हरण के समय जो युद्ध होता था, वह भी कारणों पर आश्रित रहता होगा। यथा – पति से प्राप्त होने वाले अमानुषिक व्यवहार के भय से कन्या अपहरणकर्ता से युद्ध करती थी; अथवा माता-पिता कन्या की सेवाओं से वंचित नहीं रहना चाहते थे; अथवा वीर पुरुष युद्ध विजय के चिह्न-स्वरूप कन्या को ले जाकर अपनी वीरता प्रदर्शित करता था। यह भी सम्भव था कि माता पिता कन्या के अपहरण से अपनी अपकीर्ति और पौरुष पर कलंक मानते हों। सुभद्रा के हरण से रुष्ट हुए यादवों के क्रोध के मूल में यही कारण था।[३]

---

१. ऋ०वे० १.११५.२.; १.११७.१८.; ९.३२.५.

२. ऋ०वे० १.११६.१.

३. महाभारत १.२१०.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पैशाच विवाह में स्थिति और भी गिरी हुई थी। पराक्रम की दृष्टि से पुरुष जब अभीष्ट कन्या का अपहरण करने में असमर्थ होता था, कन्या उसके प्रति नितान्त असहमत होती थी अथवा कन्या के अभिभावक आदि सभी जन कन्या की रुचि देखकर उस पुरुष से विवाह करने से इंकार कर देते होंगे, तब समय देखकर पुरुष सुरापान आदि के द्वारा कन्या को मदमत्त करके अथवा धोखा देकर अथवा सुप्तावस्था में पाकर बलात्कार द्वारा अपनी काम-तृप्ति कर लेता था। अत: स्मृतिकारों की इस निकृष्टतम विवाह की मान्यता के मूल में प्रागैतिहासिक काल की प्रथाओं के सूत्र सुरक्षित हैं।

(२) **कन्या पर माता पिता का अनुशासन होना :** सभ्यता के विकास के साथ सन्तति पर माता पिता का प्रभुत्व स्थापित होने लगा। उस समय माता पिता ने कन्या देना तब स्वीकार किया जब उन्हें उसके बदले में धन प्राप्ति हो। मूलत: वधू शुल्क लेने-देने का तात्पर्य यही था कि कन्या की सेवा – गो दोहन आदि से वंचित परिवार को क्षतिपूर्ति रूप में कुछ धन प्राप्त हो सके।[1] इसी से आसुर विवाह प्रारम्भ हुआ होगा। वधू शुल्क के मूल में यह विचार भी सम्भव था कि बिना कुछ लिए और वर की आर्थिक क्षमता जाने बिना कन्या दे देना असम्मानजनक था। इस काल में कन्याओं की संख्या अल्प रही होगी और लड़कों की अधिक, अन्यथा पुष्कल शुल्क मिलने का अवसर ही उपस्थित नहीं हो सकता था। कम से कम आसुर विवाह इतना तो सम्पादित करता ही है कि स्त्री का भी मूल्य था। इस विवाह में वधू शुल्क की कोई सीमा नहीं थी। माता पिता अपनी इच्छानुसार कुछ भी मूल्य माँग सकते थे अथवा वर अपनी सामर्थ्यानुसार अधिक से अधिक कन्या मूल्य दे सकता था।

किन्तु कन्या का इस प्रकार से क्रय विक्रय होने से समाज में एक अव्यवस्था फैलने लगी। धनवान् पुरुष मुँहमांगा धन देकर कई कई कन्याओं का क्रय कर सकता था,[2] पर निर्धन पुरुष मूल्य न दे सकने के कारण एक पत्नी प्राप्त करने में भी असमर्थ रह जाता था। इसी से क्रमश: आर्ष विवाह का उद्गम हुआ होगा। इसमें वधूशुल्क की सीमा निर्धारित कर दी गई। एक या दो गोयुगल या वस्त्रयुगल देकर पुरुष कन्या से विवाह कर लेता था। इसमें माता पिता भी अपनी प्रभुता की स्वीकृति से प्रसन्न हो जाते थे और पुरुष को पत्नी भी प्राप्त हो जाती थी।

(3) कन्या पर माता पिता का पूर्ण प्रभुत्व :

कालक्रम में जैसे जैसे कन्या पर माता पिता का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित होता गया, वैसे ही वैसे जिसे और जैसे चाहें, कन्या दे देने का प्रचलन बढ़ता गया। इहलोक और परलोक सम्बन्धी मान्यताओं और विचारों के पुष्ट हो जाने पर यह विश्वास बढ़ता गया कि परिवार के लिए उपयोगी कन्या का 'दान' बिना किसी लोभ के कर देना बहुत श्रेष्ठ है और पुण्य का कारण है। इस प्रकार ब्राह्म, दैव और प्राजापत्य विवाह प्रकारों का प्रचलन बढ़ता गया। कन्या की विवाह योग्य आयु स्वभावतः ही बहुत कम हो गई थी, क्योंकि पुण्य प्राप्ति के लोभ

---

१. अल्तेकर, ए०एस – पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृष्ठ ३९.

२. का०सू० ३.४.५२. प्रायेण धनिनां दारा बहवो। - अतएव
धनवान्बहून्दारान्प्रतिगृह्णाति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में माता पिता शीघ्र से शीघ्र विवाह कर देना चाहते होंगे। इन विवाहो में सामाजिक शालीनता का पूर्णरूपेण पालन किया जाता था तथा धार्मिक विचारों के महत्त्व का ध्यान रखा जाता था। इन तीनों विवाहों कि प्रकृति से ही ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से ये अति प्राचीन नहीं हो सकते, क्यों कि इनके लिए सामाजिक अभ्यासों की सुदीर्घ संस्कृति अपेक्षित है।[1]

स्वयंवर :

विवाह के आठों प्रकार के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि गान्धर्व विवाह को छोड़ कर विवाह के अन्य किसी भी प्रकार में वरचयन के सम्बन्ध में कन्या की सम्मति अथवा रुचि-अरुचि नहीं पूछी जाती थी। कन्या की स्वतंत्र इच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। कन्याएं पतिवरण के संबंध में सर्वथा 'पितृवशा' होती थीं। पिता अथवा अभिभावक की सम्मति के बिना पतिवरण करना अथवा प्रेमी का विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर लेना अशोभनीय माना जाता था। रामायण में ऐसे अनेक प्रसंग है। राजा कुशनाभ की कन्याओं के रूप पर मुग्ध वायु ने उनसे अपनी भार्या बन जाने का प्रस्ताव रक्खा, किन्तु कन्याओं ने निषेधपूर्वक उत्तर दिया – 'अरे मूढ। सत्यवादी पिता की उपेक्षा करके हम स्वेच्छापूर्वक पतिवरण करें, ऐसा समय कभी न आए।'[2] 'पिता हमारे परम देव है'। पिता जिसको सौंप देंगें, वे ही हमारे पति होंगे – यस्य नो दास्यति पिता, स नो भर्ता भविष्यति।' इसी प्रकार राजा दण्ड और शुक्रपुत्री अरजा का वार्तालाप भी कन्या के विवाह संबंध में पिता की पूर्ण सत्ता को प्रदर्शित करता है।[3] महाभारत में भी सुवर्चला ने श्वेतकेतु पर यह प्रकट तो कर दिया कि वह उससे प्रणयाबद्ध है, किन्तु फिर भी उसने श्वेतकेतु से यही कहा कि तुम मेरे पिता से मेरी प्रार्थना करो – यही वेदविधि हैं।[4]

किन्तु इन प्रसंगों से माता पिता की विवाह संबंध में पूर्णसत्ता प्रगट होने पर भी रामायण एवं महाभारत में ही अनेक स्थलों पर स्वयंवर का वर्णन है। रामायण में सीता स्वयंवर और महाभारत में द्रौपदी स्वयंवर कथा के अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग हैं। महाकाव्यों और परवर्ती साहित्य में कवियों द्वारा वर्णित इस 'स्वयंवर' के सम्बन्ध में स्मृतिकारों ने किसी भी प्रकार का विधान नहीं किया है, यद्यपि स्मृतियों में सर्वत्र गान्धर्व विवाह का उल्लेख हुआ है। यह द्रष्टव्य है कि यद्यपि गान्धर्व विवाह और स्वयंवर विवाह एक ही नहीं है, फिर भी परवर्ती संस्कृत साहित्य में वर्णित स्वयंवर और गान्धर्व विवाह दोनों में वरचयन में कन्या की स्वेच्छा समान है।

---

१. पाण्डेय, राजबली - हिन्दू संस्कार, पृष्ठ २१७.

२. वा०रा० १.३२.२१. मा भूत्स कालो दुर्मेधः पितरं सत्यवादिनम्।
अवमन्य स्वधर्मेण स्वयंवरमुपास्महे ॥

३. वा०रा० ७.८०.९-११ मा मां स्पृशन् बलाद्राजन् कन्या पितृवशा ह्ययम्।
वरयस्व नरश्रेष्ठ पितरं मे महाद्युतिम् ॥

४. महाभारत १२.२२४.३८. (वम्बई एडीशन)
मनसापि वृतो विद्वन् शेषकर्ता पिता मम।
वृणीष्व पितरं मह्यमेष वेदविधिः स्मृतः ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्मृतिकारों द्वारा स्वयंवर का उल्लेख न किए जाने के विभिन्न कारण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। संस्कृत साहित्य में स्वयंवर केवल क्षत्रिय राजाओं में ही पाया जाता है; सामान्य समाज में नहीं। द्रौपदी स्वयंवर में ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन द्वारा लक्ष्यवेध और द्रौपदी द्वारा जयमाला डाल दिए जाने के पश्चात् क्षुब्ध राजाओं ने यही कहा कि स्वयंवर केवल क्षत्रियों का होता है, ब्राह्मणों को यह अधिकार नहीं है।[1] स्वयंयर के लिए एकत्रित हुए राजसी जमाव में ब्राह्मण केवल साक्षी रूप में और दान लेने आया करते थे।[2] धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी के स्वयंवर की उद्घोषणा करते हुए केवल राजाओं और राजकुमारों को ही सम्बोधित किया था।[3] सारे राजाओं और राजकुमारों के असफल हो जाने पर ही ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन ने अपना पराक्रम दिखाने का साहस किया था।[4] अर्जुन के जीत जाने के बाद भी राजा एवं कुमारगण बिना युद्ध के पराजय मानने को तैयार नहीं थे।[5]

स्वयंवर को प्राजापत्य विवाह का ही एक रूप भी माना जा सकता है, क्योंकि स्वयंवर में भी प्राजापत्य की ही भाँति पुरुष ही अर्थी बन कर आया करते थे। हो सकता है कि स्मृतिकारों ने इसी कारण स्वयंवर का अलग से उल्लेख न किया हो।

स्वयंवर के उल्लेख न किए जाने का एक कारण यह भी सम्भव है कि स्वयंवर तो वरचयन का एक ढंग मात्र था। आजकल जैसे समाचारपत्रों में विवाह-विज्ञापन निकलते हैं, वैसे ही स्वयंवर में उपयुक्त वर का चयन मात्र किया जाता था, वास्तविक विवाह तो बाद में सम्पन्न होता था।

स्मृतिकारों द्वारा अवर्णित किन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य में वर्णित स्वयंवर के सम्बन्ध में विवेचन यहाँ अप्रासंगिक न होगा। समस्त काव्यों के स्वयंवर उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि स्वयंवर प्रथा भी प्रारम्भ में काव्यों में भिन्न रूप में वर्णित है और धीरे-धीरे उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया है।

रामायण - महाभारत में सीता और द्रौपदी के विवाह प्रसंगों को छोड़ कर भी अनेक स्वयंवर प्रसंग हैं। इनमें कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जहाँ अभिभावक या पिता ने स्वयं ही पुत्री को कहीं भी वरचयन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी। सावित्री और कैकसी के नैपुण्य और गुणोत्कर्ष के कारण जब उनके पिता उपयुक्त वर को ढूंढ़ने में असमर्थ रहे, तो उन्होंने अपनी कन्याओं को वरचयन की अनुमति दे दी। सावित्री के पिता ने सम्भावित सार्वजनिक कलंक से डर कर पुत्री को स्वयं वर चयन करने को कहा।[6] सुमाली ने अवश्य अपनी पुत्री कैकसी को पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ निर्देश दिए थे।[7] इनके अतिरिक्त भी शूर्पनखा, हिडिम्बा, उलूपी, और गंगा आदि ने

---

१. महाभारत १.१८०.६. न च विप्रेष्वधिकारो विद्यते वरणं प्रति।
स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः॥

२. महाभारत १.१७५.११-१५.

३. महाभारत १.१७६.३४-३६.

४. महाभारत १.१७९.१.

५. महाभारत १.१८०.१-१०.

६. महाभारत ३.२७७.३२-३५.

७. वा०रा० ७.९.८-१४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वयं आगे बढ़ कर पति वरण का प्रयास किया था।[1]

इन प्रसंगों के अतिरिक्त स्वयंवर प्रथा के जो प्रसिद्ध उदाहरण संस्कृत साहित्य में प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर स्वयंवर के दो रूप थे।

स्वयंवर का एक रूप वह था जिसमें पूर्व निर्धारित कुछ शर्तों को पूरा करने वाला व्यक्ति कन्या से विवाह कर लेता था, इसमें कन्या वीर्यशुल्का थी। दूसरा रूप वह था जिसमें एक नियत स्थान पर एकत्रित हुए विवाहेच्छुक वरों में से कन्या अपनी रुचि के अनुकूल एक पति को चुन लिया करती थी।

ऋग्वेद में स्वयंवर के प्रथम रूप द्वारा विवाह का एक सन्दिग्ध स्थल है, जहाँ सूर्या देवों की अनुमति लेकर अश्विनों के रथ पर चढ़ती है।[2] सायण ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है– 'सूर्या से विवाह के इच्छुक अनेक जन थे। अतः सूर्य तक दौड़ लगाने की शर्त रही और इसमें जो विजयी हो, सूर्या को उसी की वधू बनाने का निश्चय हुआ; अश्विन इस दौड़ में विजयी हुए और सूर्या उनके रथ पर बैठी।"

सीता स्वयंवर और द्रौपदी स्वयंवर में भी स्वयंवर प्रथा का पहला रूप प्राप्त होता है। इस विवाह को स्वयंवर कहे जाने पर भी वधू को वरचयन की स्वतन्त्रता नहीं थी। कन्या के विवाह के सम्बन्ध में पिता का पूर्ण अधिकार था। पिता अपनी कन्या के विवाह के लिए कुछ शर्तें नियत कर देता था। उन शर्तों को पूरा करने वाला व्यक्ति कन्या के पाणिग्रहण का अधिकारी होता था – भले ही वह व्यक्ति किसी भी कुल, वंश या वर्ण का हो, निर्धन हो या धनवान्; कुरूप हो या सुन्दर। सीता स्वयंवर का सारा आयोजन पिता जनक ने किया था और घोषणा की थी कि 'जो व्यक्ति शिव के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा – मेरी कन्या उसी की भार्या बन जाएगी।'[3] महाभारत में द्रौपदी के स्वयंवर का प्रसंग भी बहुत कुछ ऐसा ही है। राजा द्रुपद ने स्तम्भ पर घूमती मछली की आँख को नीचे रखे तैल में देखकर वेध देने की जो शर्त रखी थी, उसे पूरा कर देने वाला व्यक्ति द्रौपदी से विवाह करने का अधिकारी था।[4] किन्तु सीता स्वयंवर एवं द्रौपदी स्वयंवर में एक सूक्ष्म सा अन्तर दिखाई देता है। सीता के धनुर्यज्ञ में पृथिवी के सभी वर्णों और जातियों के मनुष्यों ने ही नहीं वरन् नागों और राक्षसों तक ने आकर धनुष को चढ़ाने का प्रयत्न किया था। यदि उनमें से कोई सफल हो जाता तो सीता उसी की भार्या बन जातीं। किन्तु द्रौपदी के स्वयवर में स्थिति थोड़ी भिन्न रही। द्रुपद के द्वारा रक्खी गई शर्त को पूरा करने के लिए जब कर्ण तत्पर हुआ तो द्रौपदी ने उच्च स्वर में कहा – 'मैं सूत-पुत्र का वरण नहीं

---

१. वा०रा० ३.१७.२५. शूर्पनखा द्वारा राम से विवाह प्रार्थना
महाभारत १.१३९.२३-२४ हिडिम्बा द्वारा भीम का वरण
१.२०६.३२. उलूपी द्वारा अर्जुन का वरण
१.९२.५ गंगा द्वारा राजा प्रतीप का वरण

२. ऋ०वे० १.११६.२.; १.११६.५.

३. वा०रा० २.११८.४२ इदं च धनुरुद्यम्य सज्जं यः कुरुते नरः।
तस्य मे दुहिता भार्या भविष्यति न संशयः॥

४. महाभारत १.१७६.९-११

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करूँगी।'[1] इससे यह ध्वनित होता है कि यद्यपि पुत्री पर पिता का पूर्ण अधिकार था एवं स्वयं वरचयन कर लेना शिष्ट आर्य परिवार में सम्भवतः अनुचित माना जाता था, फिर भी कन्या अपनी अरुचि को प्रदर्शित कर ही सकती थी। इस प्रकार के स्वयंवर क्षत्रियों के ही वर्णित हुए हैं। इनमें जीत की शर्त का आधार शौर्य और रणकौशल है। स्वयंवर के पश्चात् उपस्थित प्रार्थियों और विजेता में कई बार युद्ध भी दिखाया गया, जिसमें विजेता उसी प्रकार सफल निकलता है. जिस प्रकार याज्ञवल्क्य ने जनक की सभा में अपने आपको ब्रह्मिष्ठ प्रमाणित किया था। सम्भव है, शर्त रखते समय व्यक्ति-विशेष को ध्यान में रखा जाता हो। कम से कम द्रौपदी स्वयंवर की शर्त के मूल में अर्जुन का शस्त्र कौशल प्रतिबिम्बित हो रहा है।

स्वयंवर विवाह के इस प्रकार में पिता अपनी पुत्री एवं वर को सामर्थ्यानुसार पर्याप्त यौतुक दिया करता था। राजा जनक ने सीता विवाह पर प्रभूत कन्या धन दिया था।[2] द्रौपदी का विवाह हो जाने पर द्रुपद ने भी बहुत धन-सम्पत्ति अपनी कन्या एवं वर को दी थी।[3]

स्वयंवर प्रथा का दूसरा रूप वह है, जो संस्कृत साहित्य के रघुवंश, नैषध आदि काव्यों में प्राप्त होता है। पिता विवाह योग्य कन्या के लिए स्वयंवर सभा का आयोजन कर देता था और कन्या आगत व्यक्तियों में से प्रत्येक का कुल-शील वर्णन जानकर अपने उपयुक्त व्यक्ति को वरमाला पहना देती थी। कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती स्वयंवर का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।[4] इन्दुमती स्वयंवर के पश्चात् विदर्भराज ने अपनी छोटी बहन इन्दुमती और वर अज को सामर्थ्यानुसार धन दिया।[5] नैषध में दमयन्ती ने यद्यपि स्वयंवर से पूर्व ही राजा नल को अपना वर मनोनीत कर लिया था, तथापि उसके लिए स्वयंवर का आयोजन किया गया।' उसमें भी दमयन्ती ने अपने प्रिय व्यक्ति को ही वर रूप में चुना।[6] बिल्हण ने विक्रमांकदेव चरित के नवें सर्ग में करहाट के शिलाहार राजा की पुत्री चन्द्रलेखा (चन्दलदेवी) के ऐतिहासिक स्वयंवर का चित्रण किया है जिसमें कन्या ने चालुक्य राजा विक्रमांक या आहवमल्ल को चुना।

साहित्य में प्राप्त स्वयंवर के इन वर्णनों के अतिरिक्त स्मृतिकारों ने भी पिता या अभिभावक द्वारा बड़ी आयु तक विवाह न किए जाने की अवस्था में कन्या द्वारा स्वयंवरण का विधान किया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सूक्त में भी ऐसा वर्णन है कि 'रूपवती और अलंकृता वधू मनुष्यों के बीच स्वयं अपने मित्र को ढूँढ़ लेती है।'[7]

---

१. महाभारत १.१७८.१७ के नीचे पादटिप्पणी में अन्य संस्करणों से उद्धृत
दृष्ट्वा तु तं द्रौपदी वाक्यमुच्चैर्जगाद
नाहं वरयामि सूतम्।

२. वा०रा० १.७४.३-६.

३. महाभारत १.१९०.१५-१८.

४. रघुवंश ५.३९,६४.७६.; ६.१०,६७,८०.

५. रघुवंश ७.३२.

६. नै०च० ६.३०; ६.६४.; १५.३४.

७. ऋ०वे० १०.२७.१२ भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा
मित्रं वनुते जने चित्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने भी ऐसी कन्या को स्वयं ही पति वरण करने का आदेश दिया है जिसका विवाह बड़ी आयु तक पिता ने न किया हो। गौतम कहते हैं कि कुमारी कन्या तीन मासिक धर्मों को बिताने के पश्चात् स्वयं अपनी रुचि के अनिन्दित-चरित्र व्यक्ति से विवाह कर ले और पिता या परिवार से प्राप्त आभूषणों को त्याग दे।[१] वसिष्ठ ने व्यवस्था दी कि ऋतुमती हो जाने के पश्चात् कुमारी तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करके फिर स्वयं सवर्ण पति को ग्रहण करले।[२] महाभारत में बिल्कुल वसिष्ठ के समान ही व्यवस्था प्राप्त होती है।[३] बौधायन ने इस व्यवस्था में इतना संशोधन और कर दिया कि उपयुक्त वर प्राप्त न होने पर कन्या गुणहीन व्यक्ति को ही वर रूप में ग्रहण कर ले।[४] याज्ञवल्क्य और मनु ने निश्चित विधान किया कि 'यदि विवाह कराने वाला कोई नहीं है तो कन्या तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करके समान गुण वाले वर को स्वयं ग्रहण कर ले। न दी गई कन्या यदि स्वयं पति के पास जाती है (ढूँढ़ती है), तो वह कन्या और वर – दोनों ही पाप के भागी नहीं होते।'[५]

कन्या के द्वारा स्वयंवरण के इस विधान में पिता द्वारा यौतुक दिए जाने का तो कोई अवसर था ही नहीं, सूत्रकारों ने यह विधान किया कि स्वयंवरण करने वाली कन्या पिता के द्वारा दिए गए अलंकारों को त्याग दे। यदि ऐसी कन्या अपने साथ पिता, माता या भाई द्वारा दिए गए अलंकारों को या धन को ले जाती थी तो वह चौरकर्म की भागी होती थी।[६]

स्मृतिकारों द्वारा दी गई स्वयंवरण की इस व्यवस्था के विवेचन से ज्ञात होता है कि इसके नियामक दो तत्त्व थे—(१) पिता का कन्या पर से अधिकार हट जाता था, (२) कन्या को आभूषणादि त्याग कर ही जाना होता था। इस प्रकार पिता और कन्या – दोनों को ही जो यह दण्ड मिलता था, यह स्पष्टतया सूचित करता है कि इस प्रकार का स्वयंवरण लोकप्रिय नहीं था और समृतिकार ऐसे विवाह को प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे।

---

१. गौ०ध० २.९.२०. त्रीन् कुमार्यृतूनतीत्य स्वय युज्येताऽनिन्दितेनोत्सृज्य—
पित्र्यानलंकारान्।

२. व०ध० १३.५९. कुमार्यृतुमती त्रीणि वर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो
वर्षेभ्यः पति विन्देत्तुल्यम्।

३. महाभारत १३.४४.१५ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती।
चतुर्थे त्वथ सम्प्राप्ते स्वयं भर्तारमर्ज्जयेत्॥

४. बौ०ध० ४.१.१५-१६ त्रीणि वर्षाणि ऋतुमती काँक्षेत् पितृशासनम्।
ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम्।
अविद्यमाने सदृशे गुणहीनमपि श्रयेत्॥

५. या०स्मृ० १.६४. गम्यन्त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात् स्वयंवरम्।
म०स्मृ० ९.९०-९१ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥
अदीयमाना भर्तारमधि गच्छेद्यदि स्वयम्।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साऽधि गच्छति॥

६. म०स्मृ० ९.९२. अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा।
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चतुर्थ अध्याय

विवाह में चयन एवं विधि-निषेध

बहिर्विवाह

१. सगोत्र विवाह निषेध

२. सप्रवर विवाह निषेध

3. सपिण्ड विवाह निषेध

अन्तर्विवाह

अनुलोम विवाह

प्रतिलोम विवाह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह में चयन एवं विधि-निषेध

इन्द्रिय सुख की प्रबलता को जानते हुए विश्व के हर समाज ने कुछ ऐसे साधन खोज निकाले थे जिनसे वैषयिक सुख को संयमित किया जा सके । जाति और समाज की उन्नति और समृद्धि के लिए विवाह रूपी जो अचूक साधन खोज निकाला गया था, उसमें भी वैयक्तिक रुचि को यद्यपि सामान्य रूप से महत्त्वपूर्ण माना गया था, तथापि शास्त्रकारों ने विवाह में चयन सम्बन्धी कुछ नियम स्थापित किए । संस्कृत साहित्य में भी ऐसे नियम एवं प्रतिबन्ध प्राप्त होते हैं । इन नियमों को सामान्यतया दो श्रेणियों में रखा जा सकता है – कुछ नियम बहिर्विवाह सम्बन्धी है, जिनके अन्तर्गत एक विशिष्ट समूह के सदस्य परस्पर विवाह नहीं कर सकते । कुछ अन्य नियम अन्तर्विवाह सम्बन्धी हैं, जिनमें एक विशिष्ट समूह के सदस्यों को उस समूह में ही विवाह करना आवश्यक है – उस समूह से बाहर वे विवाह नहीं कर सकते । संस्कृत साहित्य में ये दोनों ही नियम प्राप्त होते हैं, अतः बहिर्विवाह एवं अन्तर्विवाह सम्बन्धी विधि निषेधों का विवेचन अलग-अलग प्रस्तुत करना ही समीचीन होगा ।

बहिर्विवाह –

वस्तुतः बहिर्विवाह से तात्पर्य यह है कि एक बड़े समूह के भीतर छोटे छोटे जो उपसमूह होते हैं उनमें परस्पर विवाह न हो । संस्कृत साहित्य में बहिर्विवाह ऋग्वेद के समय से ही प्राप्त था; इसे 'दुहिता' शब्द की व्युत्पत्ति से सिद्ध किया जा सकता है । निरुक्तकार ने दुहिता शब्द की व्युत्पत्ति ही इस प्रकार की है – 'दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति'[1] अर्थात् कन्या का नाम दुहिता इसीलिए है कि इसका विवाह दूर देश में होने से ही कल्याण होता है ।

श्री दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में बहिर्विवाह के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं ।

> "................इसका प्रयोजन यह है कि-
> परोक्षप्रिया इव हि देवा: प्रत्यक्षद्विष: ।। शतपथ ।।

यह निश्चत बात है कि परोक्ष पदार्थ में जैसी प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्ष में नहीं । जैसे किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है, जैसे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र व माता पिता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो, उसी कन्या से वर का विवाह

---

१. निरुक्त ३.४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होना चाहिए। निकट और दूर विवाह करने में गुण ये हैं –

(१) जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते हैं – परस्पर क्रीड़ा, प्रेम और लड़ाई करते, एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और जो नंगे भी एक दूसरे को देखते हैं उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता।

(२) जैसे पानी में पानी मिलाने से विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृ व मातृकुल में विवाह होने से धातुओं में अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।

(३) जैसे दूध में मिश्री या शुंठ्यादि औषधियों का योग होने से उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ-पितृ कुल से पृथक् वर्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।

(४) जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और खान-पान के बदलने से रोगरहित होता है वैसे ही दूर-देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।

(५) निकट सम्बन्ध करने में एक दूसरे के निकट होने में सुख दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूरदेशस्थों में नहीं, और दूरस्थों के विवाह में दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है, निकटस्थ विवाह में नहीं।

(६) दूर-दूर देश के वर्तमान पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं इसलिए दुहिता दुहिता दूरे हिता भवतीति'- निरुक्त - ३·४.। कन्या का नाम दुहिता इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है निकट रहने में नहीं।

(७) कन्या के पितृकुल में दारिद्रय होना भी सम्भव है, क्योंकि जब-जब कन्या पितृकुल में आएगी तब-तब इसको कुछ न कुछ देना ही होगा।

(८) कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने-अपने पितृकुल के सहाय का घमण्ड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिता के कुल में चली जाएगी, एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी, क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है।"[१]

जहाँ तक निकट सम्बन्धियों के साथ विवाह के निषेध अथवा बहिर्विवाह का सम्बन्ध है, ऋग्वेद में यम और यमी के बीच एक सजीव वादविवाद प्राप्त होता है जो उस समय की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। यम और यमी को वैदिक साहित्य में परस्पर भाई बहन के रूप में चित्रित किया गया है,[२] यद्यपि श्री दयानन्द सरस्वती ने इन्हें भाई बहन न मान कर यमी को नियोग के लिए उत्सुक स्त्री माना है।[३] वासना पीड़ित यमी ने यम से कामतृप्ति की याचना की तब यम ने यही उत्तर दिया 'ऐसा पहले कभी नहीं हुआ, अतः तुम किसी अन्य पति की कामना करो।'[४] इससे यही ध्वनित होता है कि ऋग्वेद के युग में भी बहिर्विवाह किसी न किसी रूप में प्रचलित अवश्य था।

---

१. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृष्ट ४६-४७

२. ऋ०वे० १०.१०.११.

३. दयानन्द सरवस्ती – सत्यार्थ प्रकाश – चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ ७३

४. ऋ०वे० १०.१०.१,१०.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परवर्ती संस्कृत-साहित्य में बहिर्विवाह के अनेक रूप प्राप्त होते हैं यथा गोत्र, प्रवर एवं पिण्ड। अतः बहिर्विवाह के अन्तर्गत इन्ही तीनों उपसमूहों का ध्यान रखा जाता है कि वर एवं वधू परस्पर सगोत्र, सप्रवर एवं सपिण्ड न हों। वस्तुत: ये तीनों प्रकार के निषेध क्या हैं और संस्कृत साहित्य में किस समय से प्राप्त होते हैं – यह विवेचन अलग-अलग ही करना होगा।

सगोत्र विवाह निषेध :

वहिर्विवाह के इस रूप के अन्तर्गत एक ही गोत्र के स्त्री पुरुषों के बीच विवाह निषिद्ध होता है। संस्कृत साहित्य में सूत्रकाल के समय से 'गोत्र' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है, वह है किसी एक ऋषि से वंशपरम्परा का बढ़ना।' अर्थात् सगोत्री सारे ही व्यक्ति किसी एक पूर्वज ऋषि की सन्तान होते हैं। किन्तु जिस आधुनिक अर्थ में गोत्र' शब्द का प्रयोग किया जाता है वह अर्थ वेदों में प्राप्त नहीं होता। वेद में गोत्र शब्द बहुत बार प्रयुक्त हुआ है।[१] रॉथ इस शब्द की 'गोशाला' के रूप में व्याख्या करते हैं।[२] गेल्डनर ने इस शब्द का अर्थ यूथ अथवा समूह रूप में लिया है।[३] गेल्डनर द्वारा प्रस्तुत अर्थ ही परवर्ती संस्कृत साहित्य में 'गोत्र' शब्द के 'परिवार' अथवा 'वंशपरम्परा' अर्थ में प्रयोग की व्याख्या करता है।[४] अथर्ववेद में एक स्थल पर 'विश्वगोत्र्यः' पद आया है – जहां गोत्र शब्द का सुस्पष्ट अर्थ परस्पर संबद्ध मनुष्यों का दल' है।[५] गृह्यसूत्रों में गोत्र शब्द जिस वंशपरम्परा अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, उस अर्थ में इसका सर्वप्रथम प्रयोग छान्दोग्य उपनिषद् में प्राप्त होता है, जहाँ गुरू अपने पास शिष्य रूप में आए हुए सत्यकाम जाबालि से उसका गोत्र पूछते हैं।[६]

इस उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि वेदों में न पाए जाने पर भी जिस एक पूर्वज ऋषि की सन्तान' रूप अर्थ में गोत्र शब्द प्रतिष्ठित हो गया, उसके अनुसार सारे ही सगोत्री व्यक्ति परस्पर भाई बहन के समान हो गए। इसीलिए सगोत्री स्त्री पुरुषों में विवाह का निषेध कर दिया गया।

डॉ० अल्तेकर ने गोत्र शब्द के उपर्युक्त अर्थ को ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रान्त सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।[७] उनके अनुसार वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि गोत्र संस्थापक तो वस्तुतः ऋषि थे, किन्तु बहुत से गोत्र नामों के विवेचन से ज्ञात होता है कि उनसे परिवार अथवा वंश

---

१. ऋ०वे० १.५१.३., २.१७.१., ३.३९.४., ६.६५.५., ३.३०.२१., ४.१६.८.,

२. मैक्डॉनल-कीथ – वैदिक इण्डेक्स भाग एक पृष्ठ २६३ पर उद्धृत रॉथ

३. मैक्डॉनल-कीथ—वैदिक इंडेक्स, भाग एक, पृष्ठ २६३ पर उद्धृत

४. कापाडिया, के०एम० – हिन्दू किनशिप, पृष्ठ ५५।

"These various meanings attached to the word 'gotra' imply that the main idea associated with the word was that of enclosure. The word also at times used in the sense of an assemblage. From these two ideas of enclosure and assemblage, the word came to refer to persons who lived together within the same walls."

५. अ०वे० ५।२१।३।

६. छा०उप० ४।४।१।

७. ए०एस०अल्तेकर – पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृष्ठ ७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रारम्भ होना सम्भव नहीं हैं। कुछ गोत्र नाम प्रादेशिक महत्ता को सूचित करते हैं जैसे गान्धार, पांचाल, कौशाम्बेय आदि। कुछ गोत्रनाम व्यवसाय अथवा जीविका के सूचक हैं जैसे हस्तिप, होता, याजक आदि। कुछ गोत्र नाम व्यक्तिगत अंग विकृति पर आधारित है जैसे दीर्घजंघ, मत्स्यगन्धि, काण आदि। इसी प्रकार कोई व्यक्ति 'जय विश्वम्भर' कह कर अतिथियों को नमस्कार करता होगा और क्रमशः इसी नाम से गोत्र चल पड़ा इससे स्पष्ट है कि गोत्र का सम्बन्ध किसी वैदिक ऋषि की वंशपरम्परासे नहीं है।'

डॉ० अल्तेकर का उपर्युक्त कथन आंशिक सत्य है। गोत्र भले ही किसी एक पूर्वज 'ऋषि' को सूचित न करता हो, किन्तु डॉ० अल्तेकर द्वारा दिए गए गोत्र नाम भी किसी एक पूर्वज को तो पुष्ट करते ही हैं, जिसके व्यवसाय या प्रदेश या रुचि के नाम पर उस वंश-परम्परा को पहचाना जाने लगा।

ऋग्वेद में सगोत्र विवाह निषेध था अथवा नहीं – इसका निश्चित निष्कर्ष निकालना असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है क्योंकि उस समय 'गोत्र' शब्द आधुनिक अर्थ में प्रचलित ही नहीं था। ऋग्वेद में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और विवाह में युवती की रुचि को दी जाने वाली प्रधानता से यही धारणा पुष्ट होती है कि उस समय तक विवाह में सगोत्र निषेध प्रचलित नहीं था। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि 'मित्रों के समूह में से वधू स्वयं अपना मित्र चुन लेती है।'[१] पिता तो ऐसे विवाह पर सहमति मात्र देता था। परवर्ती संस्कृत सूत्रकारों द्वारा वर्णित गान्धर्व विवाह और उपरिलिखित वैदिक विवाह में विशेष अन्तर नहीं है। अतः जहां विवाह में प्रणय ही प्रधान विचारक तत्त्व हो, वहां सगोत्र निषेध प्राप्त होना कठिन है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में स्वयंवर विवाह का संकेत भी प्राप्त होता है।[२] बल परीक्षा में असगोत्र पुरुष ही श्रेष्ठ ठहरे यह आवश्यक नहीं – इससे भी यह निष्कर्ष निकलता है कि सम्भवतः ऋग्वेद के समय में सगोत्र विवाह निषिद्ध नहीं थे।

ऋग्वेद में सगोत्र विवाह-निषेध न होने के पक्ष में एक तर्क और प्राप्त होता है। अपरार्क ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर भाष्य लिखते हुए ब्रह्मपुराण का एक वचन उद्धृत किया है कि 'दीर्घकाल तक अविवाहित रहना, कमण्डलु धारण करना, सपिण्ड अथवा सगोत्र से विवाह करना, गो-हत्या, नरबलि, अश्वबलि तथा सुरा – ये सब वस्तुएँ द्विज के लिए कलिवर्ज्य हैं।'[३] श्री करन्दीकर ने इससे यह निष्कर्ष निकाला है कि 'कलिवर्ज्य' का स्वयं में ही यह तात्पर्य है कि ये कार्य पहले प्रचलित थे, बाद में निषिद्ध हो गए। इससे यह धारणा निश्चित होती है कि सगोत्र अथवा सपिण्ड विवाह भारत में पहले प्रचलित थे।[४]

यद्यपि ऋग्वेद में सगोत्र विवाह निषेध के स्पष्ट उदाहरण प्राप्त नहीं होते तथापि उस समय भी किसी न किसी रूप में बहिर्विवाह अवश्य प्रचलित था – यम-यमी संवाद और प्रजापति आख्यान इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।[५] इसके अतिरिक्त भी ऋग्वेद के विवाह सूक्त से भी यही

---

१. ऋ०वे० १०.२७.१२. भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्
२. ऋ०वे० १०.११६.१७.
३. करन्दीकर एस०वी०—हिन्दू एक्सोगैमी–पृष्ठ ९ पर उद्धृत अपरार्क
४. करन्दीकर एस०वी०—हिन्दू एक्सोगैमी–पृष्ठ ९
५. ऋ०वे० १०.१०. ; १०.६१.५-७.,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रतीत होता है कि वर एवं वधू परस्पर अपरिचित होते थे। अतः ऋग्वेद के समय विवाह सम्बन्ध परिवार के बाहर ही निश्चित किए जाते थे।[१]

ऋग्वेद के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में भी सगोत्र विवाह निषेध के सम्बन्ध में कुछ भी प्राप्त नहीं होता। ताण्ड्य ब्राह्मण में 'सगोत्र' शब्द प्राप्त होता है किन्तु वहाँ भी वह विवाह के प्रसंग में नहीं, वरन् सोमपान के प्रसंग में प्राप्त होता है।[२]

कुछ गृह्यसूत्रों ने विवाह में सगोत्र निषेध का विस्तृत विवेचन किया है। यह प्रथा एक या दो दिन में तो बनी नहीं होगी अतः ऐसा सम्भव है कि सगोत्र निषेध की यह प्रथा ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में प्रारम्भ तो हो गई थी, किन्तु उसका उल्लंघन पाप नहीं माना जाता था – इसीलिए ब्राह्मण ग्रन्थों ने इस का वर्णन नहीं किया है।

गृह्यसूत्रों में भी सभी ने गोत्र का विचार नहीं किया है। आपस्तम्ब, आश्वलायन तथा पारस्कर विवाह पर विचार करते समय वर अथवा वधू के गोत्र के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहते हैं।[३] जैमिनि, हिरण्यकेशी और गोभिल ने अवश्य इस पर बल दिया है कि कन्या समानगोत्री नहीं होनी चाहिए।[४]

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के समय में कन्या एवं वर के सगोत्री होने का स्पष्ट निषेध किया गया। आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनु-स्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति एवं विष्णु-धर्मसूत्र में वर के लिए सगोत्री कन्या विवाह में निषिद्ध ठहराई गई।[५] अर्थात् वर अपने पिता के समान गोत्र वाली कन्या से विवाह न करे। किन्तु व्यास इनसे एक पग आगे बढ़े। उन्होंने यह विधान किया कि जिस कन्या का गोत्र वर के पिता के समान अथवा वर की माता के समान हो, उससे विवाह नहीं करना चाहिए।[६]

किन्तु व्यास ने पिता और माता दोनों के गोत्र के समान गोत्र वाली कन्या से विवाह न करने का जो विधान किया है उसमें एक कठिनाई दिखाई देती है। संस्कृत साहित्य में तो हर स्थल पर यही प्रतिपादित किया गया है कि विवाह के समय ही कन्या का गोत्र वर के गोत्रवत् हो जाता है – 'स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे।' विवाहोपरान्त उत्पन्न सन्तति के माता पिता का गोत्र एक ही होता है भिन्न-भिन्न नहीं। इस स्थिति में यह कहना असंगत लगता है कि

---

१. करन्दीकर एस०वी०—हिन्दू एक्सोगैमी–पृष्ठ १२.
२. ता०ब्रा० १८.२.१२.
३. आप०गृ० १.३.११., आ०गृ० १.४.
पा०गृ० १.४.
४. जै०गृ० १.२०., हि०गृ० १.१९.२,
गो०गृ० ३.४.४ असगोत्रान्।
५. आप०ध० २.११.१५ सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत्।
म०स्मृ० ३.५. असगोत्रा च या पितुः।
या०स्मृ० १.५३., वि०ध० २४.९. न सगोत्रां – भार्यां विन्देत
व०ध० ८.१
६. व्या०स्मृ० २.२. सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह में पिता और माता दोनों की सगोत्री कन्या नहीं लेनी चाहिए। व्यास का यह कथन तो तभी समीचीन हो सकता है जब पत्नी का गोत्र पति के गोत्र से भिन्न हो, जैसा कि पुत्रिका रूप में होता है।[1]

सूत्रों एवं स्मृतियों ने विवाह में जो सगोत्र निषेध किया, उसके इस ऐतिहासिक-क्रम-विवेचन से यह ज्ञात होता है कि यह प्रथा क्रमशः अनिवार्य होती गई है। इस निषेध की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए क्रमशः परवर्ती सूत्रों एवं स्मृतियों ने सगोत्र उल्लंघन के लिए विभिन्न दण्डों की व्यवस्था की है। किन्तु यह दण्डव्यवस्था सगोत्र एवं सप्रवर दोनों के उल्लंघन पर ही प्राप्त होती है. अतः पहले प्रवर-निषेध पर विचार कर लेने के उपरान्त ही इस उल्लंघन के लिए की गई दण्डव्यवस्था पर विचार करना उपयुक्त होगा।

सप्रवर विवाह निषेध :

सूत्रों में जिस प्रकार सगोत्र विवाह का निषेध किया गया है उसी प्रकार सप्रवर विवाह भी निषिद्ध माना गया है। डॉ० काणे ने गोत्र एवं प्रवर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "गोत्र प्राचीनतम पूर्वज है। या किसी व्यक्ति के प्राचीनतम पूर्वजों में से एक है, जिसके नाम से युगों से कुल विख्यात रहा है, किन्तु प्रवर उस ऋषि या उन ऋषियों से बनता है जो अति प्राचीनतम रहे हैं, अत्यन्त यशस्वी रहे हैं और जो गोत्र ऋषि के पूर्वज या कुछ दशाओं में अत्यन्त प्रख्यात ऋषि रहे हैं।[2]

प्रवर शब्द गोत्र से भी प्राचीनतर है। प्रवर का अर्थ है – बुलाना, आह्वान करना अथवा चयन करना।[3] ऋग्वेद में प्रवर शब्द प्राप्त नहीं होता किन्तु इसी अर्थ में 'आर्षेय' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है जिसका अर्थ है ऋषिपरम्परा।[4] वस्तुतः ऋग्वेद के समय में वैदिक विधिसंबंधी विभिन्न शाखाएँ अपना-अपना भिन्न स्वरूप स्थिर करती जा रहीं थीं। व्यक्तिगत रूप में किए जाने वाले यज्ञों के स्थान पर जब सामूहिक यज्ञ और सत्र प्रारम्भ होने लगे, तब यज्ञ कराने वाले पुरोहितों के लिए अनिवार्य हो गया कि वे समस्त ब्राह्मण-परिवारों को कुछ नामों के अन्तर्गत संगठित कर दें। इस प्रकार संगठित या एकत्रित किए गए उन कुछ नामों के उच्चारण से ही उस विशिष्ट शाखा अथवा पद्धति का बोध होता था। जो व्यक्ति जिस ऋषि की पद्धति का अनुसरण अपने यज्ञ में करता, उसका प्रवर उसी ऋषि के नाम पर हो जाता था।

प्रवर के अन्तर्गत उन ऋषियों का नाम लेना आवश्यक क्यों था – इस प्रश्न का उत्तर कौषीतकी ब्राह्मण में प्राप्त होता है।[5] कौषीतकी ब्राह्मण ने कहा कि देवता उसकी आहुति स्वीकार नहीं करते जिसके पूर्वज यशस्वी न रहे हों, इसलिए यज्ञकर्ता के आर्षेय का स्वयं यज्ञकर्ता

---

१. कापाडिया के०एम० – हिन्दू किनशिप–पृ० ५८।

It is only when wife is not affiliated to the gotra of her husband, as in case of the putrika............

२. काणे, पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २९०

३. करंडीकर, एस० वी० – हिन्दू एक्सोगैमी, पृष्ठ ४२

४. जायल, शाकम्भरी – स्टेटस आफ वीमेन इन एपिक्स, पृष्ठ ३०९

५. कौ०ब्रा० ३.२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

या उसका पुरोहित उच्चारण करता है।' जिस यज्ञकर्ता के अपने पूर्वजों में कोई प्रसिद्ध ऋषि नहीं होता था, वह अपने पुरोहित के आर्षेय का ही उच्चारण करता था जिससे देवता उसकी आहुतियों को स्वीकार कर लें। ब्राह्मणों के तो अपने प्रवर हो सकते थे, किन्तु क्षत्रिय एवं वैश्य के अपने प्रवर होने कठिन थे, क्योंकि वे अपने अन्य व्यवसायों में व्यस्त रहते थे। अतः क्षत्रियों अथवा वैश्यों ने यज्ञ कराते समय जिस पुरोहित को यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए चुना, स्वभावतः उसी का प्रवर स्वीकार कर लिया। इस प्रकार प्रवर का उच्चारण करते समय यज्ञकर्ता वस्तुतः अपने यशस्वी पूर्वजों के नाम का उच्चारण नहीं करता है वरन् वह उस समय उस विशिष्ट पद्धति या शाखा के ऋषि के नाम का उच्चारण करता है, जिस विशिष्ट शाखा या पद्धति के अन्तर्गत उसके अपने पूर्वजों या उसी ने धार्मिक कृत्य और संस्कार सम्पन्न किए। इस प्रकार 'प्रवर संस्कारों या ज्ञान के उस सम्प्रदाय की ओर संकेत करता है जिससे व्यक्ति का निरन्तर सम्बन्ध रहा है।'[१]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि मूल रूप में प्रवर अथवा आर्षेय एवं गोत्र – ये दोनों परस्पर भिन्न थे। एक ओर प्रवर आध्यात्मिक सम्बन्ध का सूचक था तो दूसरी ओर गोत्र रक्त-सम्बन्ध को बताता था। किन्तु सूत्रकाल में कुछ सूत्रकारों ने इन दोनों को परस्पर मिला दिया।[२] जहाँ कुछ सूत्रकारों और स्मृतिकारों ने सगोत्रा कन्या से विवाह का निषेध किया, वहीं कुछ अन्य सूत्रकारों और स्मृतिकारों ने केवल समान प्रवर वाली कन्या से ही विवाह को निषिद्ध बताया-गोत्र का उल्लेख ही नहीं किया। इनमें भी गौतम ने 'असमान प्रवर वाली कन्या से विवाह' का विधान किया, किन्तु वसिष्ठ और शंख ने 'प्रवर' के स्थान पर 'आर्षेय' शब्द का प्रयोग किया।[३]

कन्या के सगोत्र अथवा समान प्रवर होने पर विवाह का जो निषेध सूत्रकारों अथवा स्मृतिकारों ने किया उसके उल्लंघन पर दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। मनु ने यद्यपि विवाह में असगोत्रा कन्या से विवाह करने के लिए कहा है।[४] तथापि उसके उल्लंघन पर उन्होंने कोई दण्ड दिए जाने कि व्यवस्था नहीं की है। मेधातिथि ने मनु पर भाष्य लिखते हुए यह स्पष्ट किया कि प्रशस्त विवाह में यह निषेध गौण वस्तु है।[५] किन्तु गौतम धर्मसूत्र तथा बौधायन धर्मसूत्र ने नियम उल्लंघन के लिए दण्ड विधान किया है।[६] इन दोनों सूत्रकारों के अतिरिक्त शातातप स्मृति में सगोत्रा कन्या से विवाह कर लेने से व्यक्ति को रोगयुक्त बताया गया है – 'सगोत्र स्त्री-प्रसंग करने पर व्यक्ति को भगन्दर हो जाता है और महिषीदान से इसकी निष्कृति होती है।'[७] इससे स्पष्ट

---

१. कापाडिया के०एम०–हिन्दू किनशिप–पृष्ठ ५६.५७.

२. करन्दीकर एस०वी०–हिन्दू एक्सोगैमी–पृष्ठ १०२.

३. गौ०ध० १.४.२. असमानप्रवरैर्विवाहः।
वा०ध० ८.१. असमानार्षमस्पृष्टमैथुनां............भार्यां विन्देत।
आप०ध० २.५.११.१६. पर हरदत्त द्वारा उद्धृत शंख –
दारानाहरेत् सदृशानसमानार्षेयानसम्बन्धानासप्तमपंचमात्
पितृबन्धुभ्यः।

४. म०स्मृ० ३.५. असगोत्रा च या पितुः

५. म०स्मृ० ३.११. पर मेधातिथि का भाष्य

६. गौ०ध० ३.५.१२.; ३.५.८-११.: बौ०ध० २.१.१.३८.

७. शा०स्मृ० ५.३७.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है कि शातातप ने सगोत्र विवाह को उच्च कोटि के नियमोल्लंघन में नहीं गिना है। बौधायन ने भी सगोत्रा कन्या से विवाह हो जाने पर सहवास वर्जित किया है जिससे सन्तति न हो सके। यदि सन्तति हो भी जाए तो बौधायन ने व्यक्ति को कृच्छ्व्रत का आदेश दिया और पत्नी को मातृवत् मानने के लिए कहा।[१] इस प्रकार बौधायन ने भी विवाह के निषेधोल्लंघन को भयंकर अपराध नहीं माना है। पाराशर ने सगोत्र विवाह को माता, पुत्रवधू अथवा मामी के साथ व्यभिचार के समान संज्ञा दी और तीन प्राजापत्य व्रतों तथा ब्राह्मण को दो गाएं दान में देने से इस पाप का परिमार्जन कहा।[२]

किन्तु गौतम ने इस नियमोल्लंघन को साधारण न मान कर गुरु पत्नी के साथ व्यभिचार के समान माना है।[३] इस अपराध के लिए उन्होंने जो प्रायश्चित विधान किया है उसी से इसकी भयंकरता का अनुमान किया जा सकता है – 'लोहे की चारपाई पर शयन करें, अथवा तपा कर लाल की गई लौहमयी स्त्री-प्रतिमा का आलिंगन करें, अथवा अण्डकोष-सहित जननेन्द्रिय काटकर अंजलि में रख कर दक्षिणपश्चिम दिशा में उस समय तक चले, जब तक गिर कर मर न जाए। मृत्यु के बाद ही पाप से मुक्त होता है।'[४] नारद ने भी सगोत्र विवाह के अपराधी की जननेन्द्रिय काट देने की व्यवस्था दी।[५] याज्ञवल्क्य ने सगोत्र विवाह को गुरुपत्नीगमन कहा और गौतम के समान ही दण्ड व्यवस्था की।[६] किन्तु मृत्यु के अतिरिक्त याज्ञवल्क्य ने और भी प्रायश्चित विधान किया कि '...........भोग करने वाला तीन वर्ष तक प्राजापत्य कृच्छ्व्रत करे अथवा तीन मास तक वेद संहिता का जप करता हुआ चान्द्रायण व्रत करे।'[७]

याज्ञवल्क्य के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने सगोत्र पति से विवाहित स्त्री को चाण्डाली की कोटि में रख दिया। उन्होंने कहा कि 'यदि अज्ञानवश चाण्डाली से सहवास हो, तो वह जातिच्युत हो जाता है और बारह वर्ष का प्रायश्चित करना होता है। यदि व्यक्ति जानबूझ कर चाण्डाली का सहवास करता है तो स्वयं भी चाण्डाल हो जाता है, तब मरण पर्यन्त प्रायश्चित करना होता है। यदि चाण्डाली के साथ केवल एक रात्रि का ही सहवास किया हो तो भी तीन वर्ष तक

---

१. बौ०ध० २.१.१.३८. सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेन्मातृवदेनां बिभृयात्। प्रजाता चेत्कृच्छ्राब्दपादं चरित्वा यन्म आत्मनो निन्दाऽभूत्पुनरग्निचक्षुरदादित्येताभ्यां जुहुयात्।

२. पा०स्मृ० १०.१५ मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत्।
गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः॥

३. गौ०ध० ३,५.१२. सखीसयोनिसगोत्राशिष्यभार्यासु स्नुषायां गवि च गुरुतल्पसमः।

४. गौ०ध० ३.५.८-११. तप्ते लोहशयने गुरुतल्पगः शयीत ॥........मृतः शुध्येत् ॥

५. ना०स्मृ० १२.७४-७५.

६. या०स्मृ० ३.२३१.२३३.२५९.;

७. या०स्मृ० ३.२६०. प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समावा गुरुतल्पगः।
चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रायश्चित करना होता है ।[1]

दण्डव्यवस्था की इस क्रमिक कठोरता से यह निष्कर्ष निकालना अत्यन्त सरल है कि गृह्यसूत्रों के समय से सगोत्र एवं सप्रवर विवाह निषेध प्रारम्भ हुआ, किन्तु उस समय यह आदेश रूप में नहीं थे ।[2] धर्मसूत्रों और स्मृतियों के समय तक ये नियम क्रमशः कठोर होते गए और इनका उल्लंघन भीषण अपराध अथवा जघन्य पाप माना जाने लगा ।

सपिण्ड विवाह निषेध :

संस्कृत साहित्य में विवाह के प्रति जो निषेध पाए जाते हैं उनमें बहिर्विवाह का एक और रूप सपिण्डविवाह निषेध के रूप में प्राप्त होता है ।

सपिण्ड का अर्थ सामान्य रूप से 'एक ही शरीर के अवयवों से युक्त' है । 'पिण्ड' शब्द के संस्कृत साहित्य में दो अर्थ पाए जाते हैं । पिण्ड का अर्थ है शरीर, एवं पिण्ड का अर्थ है मृतक को दिया जाने वाले भात का गोला । दोनों ही अर्थों में यह संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुआ है । याज्ञवल्क्य के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने पिण्ड का अर्थ शरीर लेते हुए सपिण्ड की व्याख्या इस प्रकार की – 'जो दो व्यक्ति एक ही शरीर के अंशों से परस्पर सम्बन्धित होते हैं वे सपिण्ड होते हैं । पिता के शरीर का अंश पुत्र में होने से पिता एवं पुत्र दोनों सपिण्ड हैं । इसी प्रकार बाबा के शरीर का अंश पिता द्वारा पुत्र में आ जाने से बाबा एवं पौत्र भी सपिण्ड हैं । माँ और पुत्र नाना एवं दौहितृ भी इसी प्रकार सपिण्ड हैं ।'[3] इस दृष्टि से असंख्यों पीढ़ियों तक व्यक्ति परस्पर सपिण्ड बन जाते हैं – इसी पर रोक लगाने के लिए याज्ञवल्क्य ने व्यवस्था दी कि 'पिता की ओर सात पीढ़ी और माता की ओर पाँच पीढ़ी तक ही सपिण्डता रहती है ।'[4]

पिण्ड शब्द का दूसरा अर्थ है मृतक को दिया जाने वाला भात का गोला । मनु आदि ने पिण्ड का यह अर्थ ग्रहण करते हुए सपिण्डता की व्याख्या इस प्रकार की – 'प्रथम पीढ़ी वह है जो पूर्वजों को पिण्ड देती है । उससे पूर्व के तीन पूर्वज पिण्ड के अधिकारी होते हैं । अर्थात् पुत्र द्वारा दिए जाने वाले पिण्ड को पिता, पितामह और प्रपितामह ग्रहण करते हैं । प्रपितामह से भी पूर्व के तीन पूर्वज केवल 'पिण्डलेप' ही प्राप्त करते हैं । अतः पुत्र से लेकर प्रपितामह के प्रपितामह तक

---

१. या०स्मृ० ३.२६०. पर विज्ञानेश्वर का मिताक्षरा भाष्य

तथा हि – अज्ञानतश्चाण्डालीगमनाभ्यासे पतति, अतः

पतितप्रायश्चित्तं द्वादशवार्षिकं कुर्यात् । कामतोऽत्यन्ताभ्यासे चाण्डालैः साम्य गच्छति । अतो द्वादशवार्षिकाधिकं मरणान्तिकं कुर्यात – एतच्च बहुकालाभ्यासविषयम् । एकत्राभ्यासे तु वर्षत्रयम् ।............अत्र वृषली शब्देन चण्डाल्यभिधीयते –

'चण्डाली बन्धकी वेश्या रजःस्था या च कन्यका ।

ऊढा या च सगोत्रा स्याद वृषल्य पञ्च कीर्तिताः ।।'

इति स्मृत्यन्तरे -

२. कापाडिया, के०एम० – हिन्दू किनशिप – पृष्ट ६१.

३. या०स्मृ० १.५३. पर मिताक्षरा ।

४. या०स्मृ० १.५३. पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सपिण्डता चलती है।'[१]

पिण्ड शब्द के इन दोनों अर्थों को ग्रहण कर लेने पर भी विवाह में सपिण्डनिषेध पर कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि दोनों व्याख्याओं का व्यावहारिक स्वरूप एक ही बनता है।

वेदों में बहिर्विवाह तो प्राप्त होता है जैसा अध्याय के प्रारम्भ में विवेचन किया जा चुका है किन्तु सपिण्ड विवाह निषेध का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता।[२] शतपथ ब्राह्मण में तृतीय पीढ़ी में किए जाने वाले विवाह का उल्लेख है।[३] पौराणिक गाथाओं में भी दिति और दनु दोनों बहनों का विवाह कश्यप ऋषि से हुआ और दोनों बहनों की सन्तति ने पुनः परस्पर विवाह करके सन्तति द्वारा सृष्टि विस्तार किया।

वैदिक साहित्य में विवाह में सपिण्डवर्जन को पुष्ट करने के लिए यद्यपि प्रमाण प्राप्त नहीं होते, तथापि सूत्रकाल एवं स्मृतिकाल में सपिण्ड-निषेध विवाह में अनिवार्य मान लिया गया। सपिण्डवर्जन में कितनी पीढ़ियों का निषेध हो – इस पर मतैक्य न होने पर भी सभी ने सपिण्ड-निषेध को एकमत से स्वीकार किया।

गोभिल गृह्यसूत्र में 'माता की असपिण्डा कन्या' से विवाह का विधान है।[४] मनु ने भी 'माता पिता की असपिण्डा कन्या को ही' विवाह में श्रेष्ठ कहा है।[५] किन्तु उन्होंने उस स्थल पर यह स्पष्ट नहीं किया कि माता तथा पिता की कितनी पीढ़ियों का वर्जन विवाह में होना चाहिए। यद्यपि मनु ने विवाह प्रसंग में सपिण्ड शब्द को स्पष्ट नहीं किया, तथापि अशौच प्रकरण और उत्तराधिकार प्रकरण में उन्होंने सपिण्डता की व्याख्या की है। ये दोनों व्याख्याएँ समान नहीं है। एक स्थल पर मनु ने सातवीं पीढ़ी तक सपिण्डता कही है, दूसरे स्थल पर चार पीढ़ी तक ही सपिण्डता मानी है।[६] सम्भवतः मनु के ये दोनों विचार सपिण्ड नियम के क्रमिक विकास को सूचित करते हैं। 'चार पीढ़ी तक सपिण्ड होने का विचार प्राचीन समय का बोधक है और सात पीढ़ी का विचार अपेक्षाकृत नवीन समय का।'[७] तृतीय पीढ़ी में विवाह का मनु ने बलपूर्वक खण्डन किया है और मौसेरी बहन, ममेरी बहन, अथवा बुआ की लड़की से विवाह करने वाले व्यक्ति के लिए चान्द्रायण व्रत का विधान किया है।[८] इनसे विवाह करने वाला व्यक्ति जातिच्युत हो जाता है।[९] इस तीसरी पीढ़ी के विवाह के लिए मनु ने दंड-

---

१. मनुस्मृति ५.६०.
२. करण्डीकर; एस०वी० – हिन्दू एक्सोगैमी – पृष्ठ १७९.
३. शतपथ ब्राह्मण १.८.३.६.
४. गो०गृ० ३.४.५. मातुरसपिण्डान्।
५. म०स्मृ० ३.५. असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
६. म०स्मृ० ५.६०. सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते।
म०स्मृ० ९.१८६. त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्ड प्रवर्तते।
चतुर्थः सम्प्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते॥
७. करण्डीकर, एस०वी० – हिन्दू एक्सोगैमी, पृष्ठ १८०-१८१.
८. म०स्मृ० ११.१७१.
९. म०स्मृ० ११.१७२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यवस्था दी है किन्तु चौथी अथवा पांचवीं पीढ़ी के सपिण्ड व्यक्तियों में विवाह हो जाने पर कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया है।

मनु ने यद्यपि तीसरी पीढ़ी में किए गए विवाहों को अमान्य ठहराते हुए दण्डव्यवस्था की है तथापि महाभारत, एवं श्रीमद्भागवत में चचेरे एवं ममेरे बहन-भाई के विवाह के अनेक प्रसंग प्राप्त होते है। महाभारत में अर्जुन ने अपनी ममेरी बहन सुभद्रा का अपहरण करके उससे विवाह किया।[1] सहदेव ने अपनी ममेरी बहन मद्रराजकुमारी विजया से विवाह किया।[2] भागवत में बुआ की लड़की एवं मामा की लड़की से विवाह के कई प्रसंग प्राप्त होते हैं।[3]

आर्ष काव्यों में विवाह सम्बन्धी कोई निषेध भी नहीं दिए गए हैं। महाभारतकार ने मनु का ही उल्लेख करते हुए एक स्थल पर मनु के समान ही वर्णन किया है।[4] एक अन्य स्थल पर माता के कुल में उत्पन्न कन्या से विवाह का निषेध किया गया है।[5]

मनु के अतिरिक्त बौधायन, गौतम तथा आपस्तम्ब ने भी विवाह में सपिण्डनिषेध किया है। गौतम ने सपिण्डनिषेध की स्पष्ट सीमा निर्धारित कर दी है – 'पिता सहित उसकी सात पीढ़ियों और माता सहित उसकी पाँच पीढ़ियों को छोड़कर ही कन्या से विवाह करे।'[6] अर्थात् जो कन्या पिता की ओर से सात पीढ़ियों तक और माता की ओर से पाँच पीढ़ियों तक असम्बद्ध है उसी से विवाह करना चाहिए। बौधायन ने अपने धर्मसूत्र में विवाह प्रसंग में यद्यपि सपिण्ड निषेध का उल्लेख भी नहीं किया, तथापि उन्होंने धर्मसूत्र के प्रारम्भ में ही लिखा है कि 'दक्षिण देश में प्रचलित विशिष्ट प्रथाओं में मामा एवं चाचा की कन्या से विवाह करना भी एक प्रथा है। दक्षिण देशवासी इन कार्यों को करते हुए दूषित नहीं होते किन्तु उत्तरापथ में यही कार्य करने से व्यक्ति दूषित होता है।'[7] बौधायन के इस कथन ने यही सिद्ध होता है कि वे भी विवाह में सपिण्ड निषेध के पक्षपाती थे। सपिण्डता की सीमा बौधायन ने सात पीढ़ी तक ही मानी।[8] आपस्तम्ब ने विवाह प्रसंग में सपिण्ड शब्द ही

---

१. महाभारत १.२१८.१७

२. महाभारत १.९५.७८-८०.

३. श्रीमद्भागवत ८.५८.५६; ८.६१.२३; ८.६१.२५,३७

४. महाभारत १३.४४.१७. असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
इत्येतामनुगच्छेत तं धर्मं मनुरब्रवीत् ॥

५. महाभारत १३.१०४.१३०.

६. गौ०ध० १.४.३. ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च
मातृबन्धुभ्यः पंचमात्।
बौ०ध० १.११.२०.

७. बौ०ध० १.१.२.१-५. पञ्चधा विप्रतिपत्ति—
दक्षिणतस्तथोत्तरतः। यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामः।
...—मातुलपितृष्वसृदुहितृगमनमिति। ... ..
इतरदितरस्मिन् कुर्वन् दुष्यतीतरदितरस्मिन् ॥

८. बौ०ध० १.५.११.२. सपिण्डता त्वासप्तमात्सपिंडेषु।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नहीं दिया है केवल यही उल्लेख किया है कि 'माता की ओर से अथवा पिता की ओर से सम्बद्ध व्यक्ति से कन्या का विवाह नहीं करना चाहिए ।'[१] इस से सपिण्ड निषेध तो प्राप्त हो जाता है, किन्तु विवाह में माता एवं पिता की कितनी पीढ़ियों के सम्बन्ध का परिहार हो – इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब मौन है । निष्कर्षत: एक या दो पीढ़ी का निषेध अभिप्रेत हो सकता है अथवा लोकप्य-वाद प्रमाण रहा होगा । वसिष्ठ ने अपने धर्मशास्त्र में स्पष्टतया सपिण्ड विवाह निषेध किया है और उसकी स्पष्ट सीमा भी दी है—'माता की ओर से पांचवीं और पिता की ओर से सातवीं पीढ़ी में सम्बद्ध कन्या से विवाह किया जा सकता है ।'[२] वसिष्ठ और गौतम दोनों की ही सीमाएँ सुनने में एक सी जान पड़ती हैं, पर वस्तुत: दोनों में एक-एक पीढ़ी का अन्तर है । गौतम ने पिता की ओर सात पीढ़ी तक और माता की ओर पाँच पीढ़ी तक सम्बद्ध कन्या का निषेध किया है किन्तु वसिष्ठ ने माता की ओर से चार पीढ़ी और पिता की ओर से छह पीढ़ी के सम्बन्ध का निषेध किया । याज्ञवल्क्य एवं विष्णु धर्मसूत्र में भी सपिण्डनिषेध का स्पष्ट विवरण है एवं दोनों ने ही गौतम के अनुसार पिता की ओर सात पीढ़ी और माता की ओर पांच पीढ़ी में सम्बद्ध कन्या से विवाह मना किया है ।[३]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि प्राय: सभी सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने सपिण्ड विवाह निषिद्ध ठहराया है । किन्तु विवाह में इस नियम का पालन न करने पर क्या अवस्था होती थी – इस सम्बन्ध में गौतम के अतिरिक्त अन्य किसी ने व्यवस्था नहीं दी । गौतम ने सपिण्ड विवाह कर लेने वाले व्यक्ति को पतित एवं जातिच्युत ठहराया है ।[४] जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि मनु ने केवल तीसरी पीढ़ी में विवाह करने वाले के लिए चान्द्रायण व्रत बताया था ।

सगोत्र एवं सपिण्ड विवाह निषेध बहिर्विवाह के अन्तर्गत आने पर भी दण्ड व्यवस्था दृष्टिकोण से परस्पर बहुत भिन्न दिखाई देते हैं । सगोत्र विवाह सभी शास्त्रकारों ने अमान्य ठहराया है जब कि सपिण्डविवाह के लिए निषेध करने पर भी उसे अमान्य नहीं ठहराया गया ।[५]

संस्कृत साहित्य में विवाह में विधि निषेध के दो रूपों – बहिर्विवाह एवं अन्तर्विवाह में से बहिर्विवाह का विवेचन किया जा चुका है । अब संस्कृतसाहित्य में अन्तर्विवाह का क्या अर्थ एवं स्वरूप है–यह देखना भी आवश्यक है ।

अन्तर्विवाह :

इसके अन्तर्गत अपने ही वर्ण अथवा जाति में विवाह करना आवश्यक है । जो व्यक्ति अपने वर्ण से बाहर विवाह करता है वह पाप का भागी होता है । समाजशास्त्रीय दृष्टि से यदि

---

१. आप०ध० २.५.११.१६ मातुश्च योनिसम्बन्धेभ्य: ।

२. व०ध० ८.२. पञ्चमीं मातृबन्धुभ्य: सप्तमीं पितृबन्धुभ्य: ।

३. या०स्मृ० १.५२. असपिण्डां···।

१.५३. पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृत: पितृतस्तथा ।

वि०ध० २४.१०. मातृतस्त्वा पञ्चमात्पुरुषात्पितृतश्चा सप्तमात् ।

४. गौ०ध० ३.३.१. ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमातृपितृयोनिसंबंधाग:

स्तेननास्तिकनिन्दितकर्माभ्यासिपतितात्यागयपतितत्यागिन:

५. करण्डीकर एस०वी०–हिन्दू एक्सोगैमी–पृष्ठ १९२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्तर्विवाह को परखा जाए तो इसके दो मुख्य उद्देश्य दिखाई देते हैं–प्रथमतः, अन्तर्विवाह का लक्ष्य प्रजातीय रक्त सम्बन्धी शुद्धता को बनाए रखना है। सामान्यतया यह धारणा पाई जाती है कि रक्तमिश्रण से प्रजाति के मूल गुणों का लोप हो जाता है। अतः अन्तर्विवाह के द्वारा इस दोष से बचा जा सकता है। द्वितीयतः, विशिष्ट वर्ण के रीतिरिवाजों, परम्पराओं, संस्कृति एवं सभ्यता आदि की दृष्टि से अन्तर्विवाह उपयोगी है। प्रत्येक जाति अथवा वर्ण की कुछ अपनी ही रूढ़ियाँ एवं पद्धतियाँ होती हैं जो उसको अन्य जातियों अथवा वर्णों से पृथक् करती हैं। अन्तर्विवाह के द्वारा एक सी रीतियों एवं परम्पराओं वाली जातियाँ ही विवाह द्वारा परस्पर सम्बद्ध होती हैं।

अन्तर्विवाह को सवर्ण विवाह भी कहा जाता है। सवर्णविवाह का इतिहास यदि हम ऋग्वेद से खोजना प्रारम्भ करें, तो उस समय इस प्रकार का बन्धन या निषेध प्राप्त नहीं होता। ऋषि श्यावाश्व का विवाह राजा रथवीति दार्भ्य की पुत्री से हुआ था।'[१] च्यवन ऋषि ने राजा शर्यात् की पुत्री सुकन्या से विवाह किया था।[२] शतपथ ब्राह्मण ने वाजसनेयी संहिता को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'वह राजा वैश्य नारी से उत्पन्न पुत्र का राज्याभिषेक नहीं करता।'[३] वैदिक साहित्य के इन उदाहरणों से यह तो सिद्ध होता है कि उस समय असवर्ण विवाह प्रचलित थे, किन्तु इनमें भी एक विशिष्टता दिखाई देती है। ये सारे ही विवाह उच्चवर्ण वाले व्यक्ति के द्वारा अपने से निम्न वर्ण की स्त्री के साथ किए गए हैं। अर्थात् ये अनुलोम विवाह हैं।

सूत्रकारों और स्मृतिकारों ने यद्यपि सर्वत्र ही सवर्णा पत्नी को श्रेष्ठ कहा है[४] तथापि अन्तर्जातीय अथवा असवर्ण विवाह भी प्रचलित रहे हैं। असवर्ण विवाह के भी दो रूप हैं। अपने वर्ण से निम्नवर्ण की कन्या से विवाह करना अनुलोम विवाह है तथा अपने वर्ण से उच्च वर्ण की कन्या से विवाह करना प्रतिलोम विवाह कहलाता है।

अनुलोम विवाह :

समाज में सवर्ण विवाह के उत्तम और प्रशंसनीय माने जाने पर भी, उच्चवर्ण के पुरुष और उससे निम्न वर्ण की स्त्री के परस्पर विवाह रूप अनुलोम विवाह के प्रति,[५] प्रायः सभी सूत्रकारों और स्मृतिकारों ने सहमति प्रदान की है। ब्राह्मण

---

१. ऋ०वे० ५.६१.१७-१९.
   बृह० ५.५०-८१.

२. शत०ब्रा० ४.१.५.

३. शत०ब्रा० १३.२.९.८. द्वारा उद्धृत वाजसनेयी संहिता २६.३०.

४. व०ध० ८.१. सदृशीं भार्यां विन्देत।
   या०स्मृ० १.५५.;
   म०स्मृ० ३.१२. सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
   गौ०ध० १.४.१., आप०ध० २.६.१३.१.,

कालिदास ने भी अभिज्ञान शाकुन्तलम् के द्वितीय अंक में कुछ ऐसा ही भाव प्रगट किया है। राजा और दुष्यन्त तपस्विकन्या शकुन्तला के प्रति अपने पणायाकर्षण को जब विदूषक के सामने अधीरता से प्रगट करता है तब विदूषक यही कहता है – 'आप जल्दी करें, कहीं वह तपस्विकन्या किसी तपस्वी के हाथ न पड़ जाए।' विदूषक के कथन मे स्पष्ट है कि सामान्यतया सवर्ण विवाह ही प्रचलित थे।

५. म०स्मृ० १०.५.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर्णानुक्रम से चार विवाह कर सकता था, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र केवल अपने ही वर्ण में विवाह कर सकता था।[१]

शास्त्रकारों ने अनुलोम विवाह को विहित तो किया किन्तु ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तति को वर्णसंकर घोषित किया।[२] जनमानस में अनुलोम विवाह के प्रति भय और वितृष्णा जगाने में यह एक बहुत बड़ा कारण बन गया। क्योंकि एक तो, कुल में वर्णसंकर उत्पन्न होना सामाजिक निन्दा का हेतु था;[३] दूसरे निम्नवर्ण की स्त्री से उत्पन्न पुत्र को उत्तराधिकार में भी दाय का कम अंश प्राप्त होता था।[४] अनुलोम विवाह के प्रति लोक रुचि न होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि उच्च वर्ण में गई हुई निम्न वर्ण की कन्या के साथ समानता का व्यवहार न किया जाता रहा हो।[५]

महाभारत, रामायण आदि में अनुलोम विवाह के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। अगस्त्य-लोपामुद्रा-विवाह, ऋचीक-सत्यवती-विवाह, जमदग्नि-रेणुकाविवाह तथा च्यवन-सुकन्या-विवाह – ये सभी अनुलोम विवाह हैं।[६] रामायण में समाज के आदर्श रूप का चित्रण ही अधिक होने पर भी ऐसे विवाह का उदाहरण प्राप्त होता है। श्रवणकुमार वैश्य पिता एवं शूद्रा माता का पुत्र था।[७]

संस्कृत नाटकों और गद्यकाव्यों में भी अनुलोम विवाह के उदाहरण प्राप्त होते हैं। मालविकाग्निमित्रम् नाटक में ब्राह्मणवंशी अग्निमित्र ने क्षत्रिय कन्या से विवाह किया। बाण ने हर्षचरित में उल्लेख किया कि भ्रमण यात्रा में उसके दो पारशव भाई भी साथ थे।[८] कर्पूर-

---

१. पा०गृ० १.४.८-११.; बौ०ध० १.८.१६.२-४.; या०स्मृ० १.५७,
म०स्मृ० ३.१३. शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥
वि०ध० २४.१-४. अथ ब्राह्मणस्य वर्णानुक्रमेण चतस्रो भार्या
भवन्ति॥ तिस्रः क्षत्रियस्य॥ द्वे वैश्यस्य। एका शूद्रस्य।
व०ध० १.२४-२५.

२. म०स्मृ० १०.६;१०.१४;
महाभारत १३.४८.१.

३. म०स्मृ० १०.४६; महाभारत १३.१०४.१३२-१३३.

४. म०स्मृ० ९.१४९-१५२.
९.१५३. चतुरोऽशांन् हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः।
वैश्यापुत्रो हरेद् द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत्॥
या०स्मृ० २.१२५; वि०ध० १८.१-५.

५. महाभारत ३.९७.१६.

६. महाभारत ३.९७.३.; ३.११५.२०-३१.; ३.११६.२-९.;
३.१२२.१२-२९.

७. वा०रा० २.६३.५०, शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप।

८. ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता की सन्तति पारशव कहलाती है – मनुस्मृति १९.८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मञ्जरी के प्रणेता ब्राह्मण राजशेखर की पत्नी चौहान नामक क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुई थी।[१] डॉ० काणे ने कुछ अभिलेखों को भी उद्धृत किया है जिनमें अनुलोम विवाह का वर्णन है।[२]

अनुलोम विवाह के अन्तर्गत यद्यपि सूत्रकारों ने शूद्रा से विवाह भी विहित माना, किन्तु उसकी निन्दा बहुत की। पारस्कर गृह्यसूत्र एवं वसिष्ठधर्मसूत्र ने विधान किया कि यदि शूद्रा से विवाह करना ही हो तो भी मन्त्रों का उच्चारण नहीं करना चाहिए।[३] वसिष्ठ ने शूद्रा के साथ विवाह करने पर कुल का अपकर्ष बताया और कहा कि मृत्यूपरान्त स्वर्ग भी प्राप्त नहीं होता।[४] याज्ञवल्क्य ने शूद्रा से विवाह का निषेध इसलिए माना क्योंकि 'स्त्री में स्वयं पुरुष ही जन्म लेता है।'[५] विष्णु ने शूद्रा विवाह का विधान करके भी उसे मात्र कामुकता की तृप्ति कहा।[६] विष्णु ने आगे भी कहा कि शूद्रा से विवाह करके कुल शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, सन्तान सहित व्यक्ति शूद्र हो जाता है, उसके पितृगण उसका पिण्ड भक्षण नहीं करते और वह स्वर्ग भी प्राप्त नहीं करता।'[७]

महाभारत में भी इन धर्मसूत्रों और स्मृतियों के अनुकूल ही विचार प्राप्त होते हैं। महाभारत में शूद्रापति को श्राद्ध में बुलाने का भी निषेध किया गया है।[८]

मनु ने शूद्रा से विवाह करने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य – तीनों को ही पतित माना है।[९] इसके उपरान्त मनु ने पुनः विशेष रूप से ब्राह्मण के लिए शूद्रा का निषेध किया है।[१०] इसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि क्षत्रिय एवं वैश्य अपने जीवन के विभिन्न कार्यों में निरन्तर शूद्रों के

---

१. कर्पूरमञ्जरी १.११.
२. काणे, पा०वा०- धर्मशास्त्र का इतिहास- प्रथम भाग- पृष्ठ २७८
३. पा०गृ० १.४.१२. सर्वेषां शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जम्।
   व०ध० १.२५. शूद्रामप्येके, मन्त्रवर्जं तद्वत्।
४. व०ध० १.२६.२७. तथा न कुर्यात्॥ अतो हि ध्रुवः
   कुलापकर्षः प्रेत्य चास्वर्गः॥
५. या०स्मृ० १.५६. यदुच्यते द्विजातीनां शूद्रदारोपसंग्रहः।
   नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम्॥
६. वि०ध० २६.५. रत्यर्थमेव सा तस्य।
७. वि०ध० २६.६-७. हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः॥
   कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्॥
   दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
   नाश्नन्ति पितृदेवास्तु न च स्वर्गं स गच्छति॥
८. महाभारत ७.७१.२-३. आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव।
   १३.४४.१३. रत्यर्थमपि शूद्रां स्यान्नेत्याहुरपरे जनाः।
   अपत्यजन्म शूद्रायां न प्रशंसन्ति साधवः॥
९. म०स्मृ० ३.१५-१६.
१०. म०स्मृ० ३.१७-१९.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्पर्क में आते रहते थे, अतः उनसे नितान्त शुद्ध आचरण की आशा रखना उचित नहीं था। इसीलिए धर्मसूत्रकारों ने प्रायः ब्राह्मणों के उपयुक्त आचार पर ही अधिक बल दिया है।[६]

संस्कृत साहित्य में अनुलोम विवाह नवीं-दसवीं शताब्दी तक प्राप्त होते हैं। कालान्तर में ये लुप्तप्राय हो गए।[७]

प्रतिलोम विवाह :

प्रतिलोम विवाह अनुलोम विवाह के बिल्कुल विपरीत है। निम्न वर्ण का पुरुष यदि उच्च वर्ण की स्त्री से विवाह करे, तो वह प्रतिलोम विवाह कहलाता है।

सामान्यतया संस्कृत साहित्य में प्रतिलोम विवाह निषिद्ध रहा है।[८] वैदिक साहित्य प्रतिलोम विवाह की साक्षी रूप में कोई उदाहरण नहीं प्रस्तुत करता। डॉ० राजबली पाण्डेय ने वैदिक समय में प्रतिलोम विवाह के प्रचलन के सम्बन्ध में एकाधिक प्रसंग दिया है। उनके अनुसार "यजुर्वेद संहिता में 'अयोगु' शब्द का उल्लेख आता है (३०.५.) और यदि उसका सम्बन्ध परवर्ती 'आयोगव' के साथ स्थापित कर दिया जाए तो उसका तात्पर्य शूद्र के साथ विवाहित एक अर्य (वैश्य) स्त्री से होगा (मनुस्मृति १०.१२.) वैदिक मन्त्र की इस व्याख्या का समर्थन आश्वलायन गृह्यसूत्र में सुरक्षित एक प्राचीन परम्परा से भी होता है जिसके अनुसार परिवार का दास भी विधवा के देवर के समान ही अपने स्वामी की विधवा स्त्री के साथ विवाह कर सकता था।"[१] छान्दोग्य उपनिषद् में गाड़ीवान् रैक्व एवं राजा जानश्रुति की कथा प्राप्त होती है जिसमें राजा ने रैक्व से ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपनी पुत्री का विवाह रैक्व से कर दिया। क्षत्रिय कन्या का शूद्र से विवाह निश्चित ही प्रतिलोम विवाह था। यद्यपि इस विवाह के पीछे ज्ञान लाभ की भावना वर्तमान थी फिर भी स्वयं रैक्व ने राजा को अपशब्द कहकर उसके कार्य की हीनता घोषित कर दी है।

प्रतिलोम विवाह को संस्कृतशास्त्रकारों ने कितना निन्दित माना – यह इसी से सिद्ध होता है कि ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तति चतुर्वर्ण में परिगणित न की जाकर अन्त्यज, निषाद तथा चाण्डाल कहलाई।[२] ऐसी सन्तति के लिए समाज के हीन कार्य ही विहित किए गए।

महाभारत में प्रतिलोम विवाह के दो एक प्रसंग प्राप्त होते हैं। मातंग ऋषि के माता-पिता का विवाह प्रतिलोम विवाह था।[३] देवयानी और राजा ययाति का विवाह भी प्रतिलोम विवाह था।[४] किन्तु इन दोनों ही प्रसंगों के प्राप्त होने पर भी इन विवाहों के प्रति गर्हा प्रसंग में ही झलकती है। अपने माता-पिता के प्रतिलोम विवाह के कारण ही मातंग ऋषि ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट

---

६. जायल, शाकम्भरी – स्टेटस ऑफ वीमेन इन एपिक्स – पृष्ठ ८७.

७. काणे, पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास – प्रथम भाग – पृष्ठ २७८.

८. वि०ध० १६.३.

१. पाण्डेय, राजवली – हिन्दू संस्कार – पृष्ठ २२७.

२. म०स्मृ० १०.११-१९.
वि०ध० १६.४-६.

३. महाभारत १३.२७.१७.

४. महाभारत १.८१.३६.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होकर चाण्डाल हुए।[1] राजा ययाति ने भी पहले निषिद्ध विवाह से उत्पन्न पाप को दूर करने की प्रार्थना शुक्राचार्य से की, उसके उपरान्त ही देवयानी से विवाह किया।[2] प्रतिलोम विवाह के प्रति जनगर्हा होने के कारण ही ययाति-देवयानी के विवाह के मूल में कच के शाप की कल्पना की गई दिखती है।[3] महाभारतकार ने प्रतिलोम विवाह करने वाले के लिए मृत्यूपरान्त निकृष्ट योनियों का विधान किया है।[4]

प्रतिलोम विवाह के इस प्रकार निन्दित ठहराए जाने के पीछे एक समाजशास्त्रीय तथ्य ज्ञात होता है। प्राय: पुरुष अपने अहं के कारण अपने से ऊँची सामाजिक स्थिति रखने वाली पत्नी के स्तर तक नहीं उठता, अत: दाम्पत्य निर्वाह के लिए पत्नी ही पति के सामाजिक स्तर के अनुकूल स्वयं को ढाल लेती है। हमारे ऋषियों एवं शास्त्रकारों ने जीवन को सदैव उर्ध्वगामी ही बनाना चाहा है – प्रतिलोम विवाह विहित कर देने पर यह लक्ष्य प्राप्त नहीं होता वरन् स्थिति विपरीत हो जाती है। अत: शास्त्रकारों ने प्रतिलोमविवाह को निषिद्ध ठहरा कर भी अनुलोम विवाह की अनुमति दी है। पति उच्च वर्ण का हो, तो स्त्री के उस स्तर तक आ जाने में कोई हानि नहीं, वरन् समाज को लाभ ही होता है।[5]

संस्कृत साहित्य में विवाह सम्बन्धी जो निषेध पाए जाते हैं, उनके यही दो मुख्य रूप हैं – बर्हिविवाह एवं अन्तर्विवाह। जैसा कि उपर्युक्त समस्त विवेचन से ज्ञात होता है, बर्हिविवाह के मूल में प्रजनन सम्बन्धी कारण ही प्रमुख हैं। अन्तर्विवाह के लिए जातिगत श्रेष्ठता का भाव एवं वर्णों की विभिन्न संस्कृति एवं परम्पराएं ही उत्तरदायी हैं। इन विवाह निषेधों के अपवाद स्वरूप भी कुछ प्रसंग प्राप्त होते है किन्तु सामान्यतया संस्कृत साहित्य में सर्वत्र इन नियमों का पालन ही हुआ है।

---

१. महाभारत १३.२७.१७,३०
२. महाभारत १.८१.३२.
३. महाभारत १.७७.१९.
४. महाभारत १३.१११.८९-९१
५. जायल. शाकम्भरी – स्टेटस ऑफ वीमेन इन एपिक्स – पृष्ठ ९०.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पंचम अध्याय

विवाह में वर-वधू की आयु

वैदिक साहित्य में विवाह की आयु
सूत्रों एवं स्मृतियों में विवाह की आयु
रामायण एवं महाभारत में विवाह की आयु
काव्यों तथा नाटकों में विवाह की आयु
कन्या की विवाह-आयु कम होने के कारण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह में वर-वधू की आयु

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के समग्र रूप का गवेषणात्मक अध्ययन करने पर विवाह के योग्य किसी एक निश्चित और सर्वसम्मत आयु का निर्धारण नहीं किया जा सकता। संस्कृत साहित्य में युगधर्म के अनुसार विवाह योग्य आयु घटती बढ़ती रही है। संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थों-वेदों – में जहाँ पूर्णतया युवक और युवती के विवाह सम्पन्न होने के प्रसंग प्राप्त होते हैं; वहाँ स्मृतियों आदि में शास्त्रकारों ने छह सात वर्ष की ही कन्या का विवाह कर देने का विधान किया है। प्राचीन साहित्य की मान्यताओं और परिवर्तित होते हुए युगमूल्यों का कदाचित् परस्पर समन्वय करने के प्रयत्न में ही रामायण और महाभारत में हमें परस्पर विरोधी तथ्य और प्रसंग प्राप्त होते हैं।

सूत्रकारों और स्मृतिकारों द्वारा किए गए विधि विधानों को यदि हम एक क्षण के लिए एक ओर रख दें तो संस्कृत साहित्य के काव्य, नाटक, उपन्यास, कथाओं आदि सभी में पूर्णतया युवक एवं युवती का विवाह ही चित्रित किया गया है। भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' में चित्रवीथी में राम-सीता के जिन विवाह कौतुकों का वर्णन किया है उनके अनुसार विवाह के समय जानकी बहुत अल्पायु थीं, यहां तक कि राम ने उन्हें शिशु कह कर सम्बोधित किया है।[1] किन्तु भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' के ही अन्य प्रसंगों से रामसीता की आयु विवाह के समय पर्याप्त युवा प्रतीत होती है जिसका विवेचन इसी अध्याय में 'काव्यों में विवाह की आयु' के समय किया जाएगा। पर्याप्त युवा आयु के ये विवाह एक ओर तो इस तथ्य का निर्देशन करते हैं कि समाज में सदैव पूर्णतया युवक युवती के ही विवाह प्रचलित रहे; दूसरी ओर इनका कारण यह भी है कि काव्य-रसों में शृंगार रस को जो प्रमुखता दी गई, उस शृंगार रस का परिपाक युवावस्था में ही हो सकता है। शैशव अथवा बाल्यावस्था में प्रणय सम्पर्क सम्भव नहीं होते।

संस्कृत साहित्य के विभिन्न कालों में विवाह योग्य अवस्था पृथक् पृथक् मानी गई है। पुरुष के लिए विवाह करने की कोई निश्चित अवधि कभी नहीं रही। पुरुष किसी भी आयु में विवाह कर सकता था। वेदाध्ययन समाप्ति के अनन्तर विवाह किया जा सकता था, किन्तु वेदाध्ययन समाप्ति की अवधि दैहिक और बौद्धिक क्षमताओं पर आधारित होने के कारण भिन्न-भिन्न थी। जितने भी वर्षों में व्यक्ति एक सम्पूर्ण वेद अथवा उसके अंश को पढ़ सकता था, उतने

---

१. उ०रा० १.२० प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै
दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै—
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमंगकैः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही वर्षों में वेदाध्ययन समाप्त हो जाता था। यह अवधि बारह वर्ष, चौदह वर्ष, छत्तीस वर्ष अथवा अड़तालीस वर्ष की अवस्था अथवा उससे भी अधिक हो सकती थी। मनुस्मृति के मत से तीस वर्ष के पुरुष और बारह वर्ष की कन्या अथवा चौबीस वर्ष के पुरुष और आठ वर्ष की कन्या का विवाह हो सकता है।[१] मनुस्मृति के इस विवरण के ही आधार पर विष्णु पुराण ने वर एवं कन्या की विवाह योग्य आयु का अनुपात तीन/एक रक्खा; अर्थात् वर की आयु से कन्या की आयु एक तिहाई होनी चाहिए।[२] अंगिरा के मत से कन्या वर से दो, तीन, पाँच या अधिक वर्ष छोटी हो सकती है। महाभारत में गौतम ऋषि अपनी कन्या का विवाह उत्तङ्क ऋषि से करने को तत्पर थे यदि उत्तङ्क की अवस्था सोलह वर्ष की हो जाए।[३] महाभारतकार ने मनु और विष्णु पुराण के ही समानान्तर रूप में वर और कन्या की आयु में स्पष्ट तीन-एक का अनुपात बताया है।[४] महाभारत में ही एक ऐसी लड़की की उपमा दी गई जो साठ वर्ष के पुरुष से विवाह नहीं करना चाहती।[५] इससे स्पष्ट है कि विवाह के समय पुरुष के लिए कोई निश्चित आयु नहीं रही। साठ वर्षीय पुरुष भी विवाह कर सकते थे।

वैदिक साहित्य में विवाह की आयु :

संस्कृत साहित्य में यदि विवाह योग्य आयु का ऐतिहासिक कालक्रम से विवेचन करें तो ऋग्वेद में यद्यपि विवाहावस्था के विषय में कोई स्पष्ट निर्देश प्राप्त नहीं होता; किन्तु फिर भी कन्याएँ अपेक्षाकृत बड़ी अवस्था में ही विवाहित होती थीं। ऋग्वेद में ऐसी कन्याओं का वर्णन है जो पिता के घर में अविवाहित ही वृद्धा होती रहीं।[६] युवती कन्या ही वैदिक समय में पति-वरण करती थी यह तथ्य 'युवतयो युवानम्' से स्पष्ट प्रतीत होता है।[७] रूपवती एवं अलंकृता कन्या मनुष्यों के बीच स्वयं अपने मित्र को चुन लेती थी।[८] सूर्य की पुत्री सूर्या का विवाह सोम के साथ उसी समय किया गया था जब वह युवती हो चुकी थी और पति प्राप्त करने के लिए उत्सुक थी।[९] सन्तान की कामना से विवाह किया जाता था अतः विवाह से पूर्व पिता के घर में कन्या का पूर्ण शारीरिक

---

१. म०स्मृ० ९.९४.

२. वि०पु० ३.१०.१६. वर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत त्रिगुणस्स्वयम्।

३. महाभारत १४.५५.२२. युवा षोडशवर्षो हि यद्यद्य भविता भवान्।
ददामि पत्नीं कन्यां च स्वां ते दुहितरं द्विज॥

४. महाभारत १३.४४.१३. त्रिंशद्वर्षो दशवर्षां भार्यां विन्दते नग्निकाम्।
एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात्॥

५. महाभारत २.५७.१५. ध्रुवं न रोचेद् भरतर्षभस्य
पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः॥

महाभारत ३.६.१५.

६. ऋ०वे० १.११७.७.; २-१७-७.; १०.४०.५.; १०.३९.३.

७. ऋ०वे० २.३५.४.

८. ऋ०वे० १०.२७.१२. भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।

९. ऋ०वे० १०.८५.९. सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितददात्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विकास हो जाना आवश्यक था।[1] उपर्युक्त उद्धरणों में कन्या का पति की कामना करना और सन्तानोत्पत्ति में सक्षम होना इस तथ्य का सूचक है कि कन्या की आयु कम से कम सोलह वर्ष की अवश्य होती होगी। विवाह के लिए प्रयुक्त 'उद्वाह – ले जाना' – ही सूचित करता है कि कन्या एवं वर पर्याप्त बड़ी आयु के होते थे क्योंकि विवाह के तुरन्त बाद वधू को पति अपने घर ले जाता था। विवाह के ऋग्वैदिक मन्त्रों से भी ज्ञात होता है कि कन्या एवं वर पर्याप्त प्रौढ़ होते थे।[2]

सुश्रुत संहिता ने कम आयु के स्त्री पुरुष को सन्तानोत्पत्ति का निषेध किया है। सोलह वर्ष से कम आयु की स्त्री यदि पच्चीस वर्ष से कम आयु के पुरुष के साथ संयोग से गर्भधारण करती है तो या तो गर्भपात हो जाता है, अथवा उत्पन्न होने पर बालक चिरञ्जीवी नहीं होता, अथवा जीवित रह जाने पर भी अत्यधिक दुर्बल इन्द्रिय वाला होता है।[3] आयुर्विज्ञान के अनुसार मानव शरीर की चार अवस्थाएँ होती हैं –

प्रथम – वृद्धि – सोलह वर्ष तक।
द्वितीय – यौवन – पच्चीस वर्ष तक।
तृतीय – सम्पूर्णता – चालीस वर्ष तक। इस समय शरीर के अंग, तन्तु तथा विभिन्न स्राव अपनी चरम अवस्था में होते हैं।
चतुर्थ – किंचित् परिहाणि – चालीस वर्ष से ऊपर – इस समय से शरीर में वृद्धि करने वाले विभिन्न स्राव एवं वीर्य आदि क्षीण होने प्रारम्भ हो जाते हैं।

अतः आयुर्विज्ञान के अनुसार पच्चीस वर्ष के पश्चात् विवाह आयु प्रारम्भ होती है और चालीस-बयालीस वर्ष की आयु विवाह के लिए सर्वोत्तम है। सोलह वर्ष की कन्या एवं पच्चीस वर्ष का पुरुष समान रज-वीर्य के होते हैं।[4]

---

१. ऋ०वे० १०.८५.२२. अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं संजायां पत्या सृज।
२. ऋ०वे० १०.८५.२७. इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री बिदथमा वदाथः॥
१०.८५.४६. सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥
३. सुश्रुत, शरीर स्थान, १०.४७-४८ ऊनषोडषवर्षायामप्राप्त पञ्चविंशतिम्।
यदाधत्ते पुमान् गर्भः कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरञ्जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥
४. सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय ३५. चतस्रो अवस्थाः शरीरस्य, वृद्धिर्यौवनं
सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। आषोडशाद् वृद्धिः।
आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः
किञ्चित् परिहाणिश्चेति।
पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद में विवाह योग्य कन्या और वर का बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। इन मन्त्रों में प्रयुक्त विशेषणों से कन्या एवं वर दोनों ही पर्याप्त प्रौढ़ ज्ञात होते हैं।

'जो किसी ने नहीं दुहीं, उन गौओं के समान, बाल्यावस्था से रहित, सब प्रकार के उत्तम व्यवहारों से पूर्ण, कौमार्य को त्याग ने के लिए तत्पर, नवीन शिक्षा एवं अवस्था से भरपूर, पूर्ण युवती स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य धारण करने के कारण शिक्षा-युक्त प्रज्ञा में स्थित होती हुई तरुण पतियों को प्राप्त करके गर्भ धारण करें।'[१]

'उपनयन संस्कार के समय धारण किए गए ब्रह्मचर्य के सेवनपूर्वक उत्तम शिक्षा और चरित्र ने युक्त, सुन्दर वस्त्रों को धारण करने वाला व्यक्ति ही पूर्ण यौवन में गृहाश्रम में आकर मानों ज्ञान और बुद्धि में दूसरा जन्म लेता है। वही प्रसिद्ध होता है और ज्ञान प्राप्त करता है। वह दृढ़ और साहसी तथा ज्ञानवृद्धि के प्रति केन्द्रित रहता है। धैर्ययुक्त विद्वान् व्यक्ति उसी पुरुष को उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं।'[२]

अथर्ववेद की एक ऋचा में अग्नि को सम्बोधित करके कहा गया है कि 'हे अग्नि! इस प्रजासमेत (उत्पादन शक्ति युक्त) जायावस्थापन्न कुमारी को विवाह-विधिपूर्वक मनुष्यज पतियों के लिए दो। हे अग्नि! दिव्य शक्तियों ने सूर्या अर्थात् आदित्य ब्रह्मचारिणी को मनुष्यज पतियों के साथ विवाह होने से पूर्व तुझे प्राप्त कराया था।[३] ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में प्रयुक्त हुई दो ऋचाएँ बहुत रहस्यपूर्ण हैं।[४] इन दोनों ऋचाओं के अनुसार कन्या के चार पति होते हैं — इनमें प्रथम तीन पति मनुष्यज नहीं होते किन्तु चतुर्थ पति मनुष्यज होता है। सायण ने इन ऋचाओं की व्याख्या इस प्रकार को है — 'अभी जब कामभोग की इच्छा भी उत्पन्न नहीं हो पाती, उस समय सोम कन्या का उपभोग करता है; जब यह कामेच्छा आरम्भ ही होती है तो गन्धर्व उसे ग्रहण कर लेता है और विवाह के समय वह उसे अग्नि को हस्तान्तरित कर देता है जिससे कि मनुष्य उसे (उसकी क्षमताओं और शक्तियों का पूर्ण विकास होने पर) ऐश्वर्य तथा सन्तति उत्पन्न करने के लिए प्राप्त करता है।'[५]

स्मृतियों में वेदों की ऋचा की सायण-व्याख्या को और अधिक स्पष्ट किया गया है। अत्रि

---

१. ऋ०वे० ३.५५.१६. आधेनवो धुनयन्तामीशांश्वीः शबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर् महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥

२. ऋ०वे० ३.८.४. युवा सुवासाः परिवीत आगात्, स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
धीरासः कवय उन्नयन्ति, स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥

३. अ०वे० १४.२.१.

४. ऋ०वे० १०.८५.४०-४१.; अ०वे० १४.२.३-४.

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयोऽग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजः ॥
सोमोऽददद् गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥

५. ऋ०वे० १०.८५.४०-४१. पर सायण-भाष्य।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने स्पष्ट लिखा – 'पहले सोम, गन्धर्व और अग्नि – ये तीन देव स्त्रियों का भोग करते हैं, उसके पश्चात् ही स्त्री मनुष्यों को प्राप्त होती है; किन्तु इससे स्त्रियाँ दूषित नहीं होतीं। सोम पवित्रता प्रदान करता है, गन्धर्व वाणी प्रदान करता है और अग्नि सर्वमेधत्व देता है। इसी से स्त्रियाँ सदैव पवित्र हैं।'[1]

श्री रघुनाथराव ने इन दोनों ऋचाओं की व्याख्या इस प्रकार की है – 'सोम सस्याधिपति या वनस्पतिजगत का अधिपति है तथा वह मन का भी अधिष्ठाता है।·········कन्या का शारीरिक विकास सोम देवता के अधीन है। कन्या के मन का विकास भी उसी की देख रेख में होता है।·········गन्धर्व सौन्दर्य का स्वामी है। कन्या के शरीर को सुन्दर बनाना तथा उसकी वाणी को मधुरता प्रदान करना उसका कार्य है।·········उसी की देख रेख में नेत्र प्रेम की भाषा बोलने लगते हैं तथा सम्पूर्ण शरीर में कुछ विचित्र सौन्दर्य व्याप्त हो जाता है। अपना कार्य समाप्त हो जाने पर वह उसे अग्नि को हस्तान्तरित कर देता है। अग्नि ही अग्नितत्व का अधिदेवता है।·········अग्नि ही वस्तुओं को फलवान् बनाता है। प्रजनन में समर्थ हो जाने पर अग्नि उसे अपने चतुर्थ, मनुष्य-जन्मा पति को सौंप देता है।[2]

वस्तुत: ऋचा में कथित कन्या के प्रथम तीन पति गुणीय हैं और कन्या के क्रमश: विकास की अवस्थाओं के नाम हैं। इन अवस्थाओं के लिए 'पति' शब्द यौगिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पति शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – रक्षा करने वाला (पाति इति पतिः – पा रक्षणे से)। विकास की प्रथम तीन अवस्थाओं में उपर्युक्त तीन गुण ही कन्या की रक्षा करने वाले होते हैं। अतः रक्षा करने के कारण वे पति कहे गए हैं। इन तीनों गुणीय पतियों में भी तीसरा पति अग्नि है। कन्या को युवती रूप में परिणत करने वाला मासिक धर्म ही अग्नि है। मासिक धर्म रक्त वर्ण होता है, अत: वह अग्नि का रूप है। आयुर्विज्ञान के ग्रन्थों में कन्या के आर्तव को आग्नेय कहा गया है। आर्तव की अवस्था कन्या के अग्नि-पतित्व की अवस्था है। प्रथम रजोदर्शन से लेकर पूर्ण यौवनावस्था तक – जब तक कन्या का विवाह मनुष्यज पति के साथ नहीं होता – कन्या का पति अग्नि है। इस अवस्था में उत्पादन शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। अग्निपति मनुष्यज पति को कन्या सौंपे – इसका अर्थ है कि कन्या पूर्ण युवती हो चुकी है। बौधायन धर्मसूत्र ने भी इसी तथ्य को दुहराया है।[3] वेदों के उक्त दो मन्त्रों की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि संहिता और ब्राह्मण साहित्य के समय युवक युवती ही परस्पर विवाह पाश में आबद्ध होते थे – बालक बालिका नहीं।

वेदों में विवाहार्थी युवक-युवतियों का जैसा चित्रण है, उससे ज्ञात होता है कि विवाह योग्य आयु तक विविध ज्ञानों का सङ्ग्रह करके संसार की मर्यादाओं, व्यवस्थाओं और नियमों को भली प्रकार समझने में समर्थ हो जाना सबके लिए अनिवार्य था। वेद में पिता द्वारा कन्या को दिए जाने

---

१. अ०स्मृ ५.५. पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः।
गच्छन्ति मानुषान् पश्चान्नैताः दुष्यन्ति धर्मतः॥
५.८. सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वश्च तथा गिरम्।
पावकः सर्वमेधत्वं मेधत्वं योषितां सदा॥

२. राव, रघुनाथ, दी आर्यन मैरिज, पृष्ठ २६-२७

३. बौ०ध० २.२.६२-६४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले दो प्रकार के यौतुक का वर्णन है। अपनी पुत्री का विवाह करते समय पिता अथवा अभिभावक अपनी कन्या को विविध प्रकार के आभूषण, वस्त्र तथा अन्य सम्पत्ति देता था – यह एक प्रकार का यौतुक था, जिसकी भौतिक सत्ता थी। इस भौतिक सम्पत्ति के अतिरिक्त पिता अपनी पुत्री को बौद्धिक विकास, मानसिक उच्च विचार, शील युक्त आचार-व्यवहार और आध्यात्मिक विवेक रूपी यौतुक भी दिया करते थे। पिता द्वारा पुत्री में उत्पन्न किए गए ये गुण ही उसकी वास्तविक सम्पत्ति हैं। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में इस द्वितीय प्रकार के यौतुक का बड़ा ही सुन्दर और आदर्श वर्णन है।[1] 'जब कन्या पति को प्राप्त करे तो तकिया या गद्दा, सुरमा, कोष या सम्पत्ति, वस्त्र, खाद्यान्न, सिर पर ओढ़ने का वस्त्र तथा आभूषण उसे (पिता से) प्राप्त हों। भली प्रकार सोचने या समझने की शक्ति ही तकिया या गद्दा है। पदार्थों को सम्यक् रूप से देखने व समझने, पहचानने की शक्ति सुरमा है। द्युलोक और पितृलोक के बीच आने वाले सारे जगत् का ज्ञान ही कोष है। धन सम्बन्धी विद्या (अर्थ शास्त्र) ज्ञान तथा नरनारी कर्त्तव्य ज्ञान सदा साथ रहने वाली सम्पत्ति है। भद्र आचरण ही वस्त्र है। सामवेद का संगीत साथ है। वेदमन्त्र-समूह का ज्ञान ही खाद्यान्न है तथा छन्दशास्त्र का ज्ञान ही सिर पर ओढ़ने का वस्त्र और आभूषण है।" ऋग्वेदादि वैदिक साहित्य में छन्दः पद रहस्यात्मक या प्रतीकात्मक भी है। यह सृष्टि विद्या का भी बोधक प्रतीत होता है।[2]

वेदों में यौतुक के उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में पर्याप्त युवावस्था में विवाह हुआ करते थे। क्योंकि जिस विवेक, ज्ञान, आचरण और कर्तव्यबोध का वर्णन यौतुक रूप में किया गया है, वह बाल्यावस्था या कैशोर्य में प्राप्त कर सकना बहुत कठिन है।

सूत्रों एवं स्मृतियों में विवाह की आयु :

प्रारम्भिक गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इन सूत्रों के समय में भी युवावस्था के प्रारम्भ में अथवा युवावस्था में ही विवाह हुआ करता था। कतिपय गृहसूत्रों में विवाह योग्य कन्या का एक लक्षण नग्निका' बताया गया है।[3] इस शब्द पर कालान्तर में टीकाकारों ने विभिन्न व्याख्याए प्रस्तुत कीं। ये व्याख्याएँ परिवर्तित होते हुए युगधर्म को स्पष्ट प्रदर्शित करती है। मातृदत्त ने हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र की व्याख्या में नग्निका ऐसी कन्या को

---

१. ऋ०वे० १०.८५.६ रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृता ॥
ऋ०वे० १०.८५.७. चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥
ऋ०वे० १०.८५.८. स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
अथर्ववेद में भी ये ही मन्त्र क्रमश १४.१.७; १४.१.६, १४.१.८. में प्राप्त होते हैं।

२. फतहसिंह – वैदिक दर्शन,
हंसराज – वैदिक कोष,

३. हि०गृ० १.१९.२. ताभ्यामनुज्ञातो भार्यामुपयच्छेत् सजातां
नग्निकां ब्रह्मचारिणीमसगोत्राम्।
गो०गृ० ३.४.६. नग्निका तु श्रेष्ठा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहा, जो सम्भोग के योग्य हो और ऋतु धर्म के सन्निकट हो।[1] स्वयं धर्मसूत्र में प्रयुक्त 'ब्रह्मचारिणी' पद ही कन्या की युवावस्था को ध्वनित करता है। अन्यथा सात-आठ वर्ष की कन्या के लिए यह विशेषण व्यर्थ ही था। वसिष्ठ ने नग्निका की व्याख्या 'अनागतार्तवा' कन्या के रूप में की।[2] अमरकोष ने भी नग्निका की यही परिभाषा दी है – 'नग्निकाऽनागतार्तवा।' मानवगृह्यसूत्र के टीकाकार अष्टावक्र के मत से नग्निका वह कन्या है जिसे अभी यौवन सुलभ भावनाओं की अनुभूति नहीं है। उन्होने एक अर्थ यह भी वताया कि 'नग्निका वह है जो बिना परिधान के भी सुन्दर लगे।' कुछ गृह्यसूत्रों ने वर्णन किया कि कन्या का ब्रह्मचर्य केवल दस या बारह वर्ष तक रहता है।[3] ब्राह्मण को नग्निका या गौरी से विवाह करना चाहिए।[4] पराशर स्मृति ने विधान किया कि आठ वर्ष की गौरी होती है, नौ वर्ष की रोहिणी होती है और दस वर्ष की कन्या होती है। इसके उपरान्त वह रजस्वला हो जाती है। अविवाहिता कन्या यदि रजस्वला हो जाती है तो माता पिता और बड़ा भाई ऐसी कन्या को देखकर नरक में जाते हैं। अज्ञान से मूढ़ ब्राह्मण यदि ऐसी कन्या से विवाह कर लेता है तो वह समाज से बहिष्कृत, न बोलने योग्य और शूद्रापति हो जाता है।[5]

मनुस्मृति में विवाह योग्य आयु के सम्बन्ध में परस्पर-विरोधी कथन प्राप्त होते हैं। मनु ने सम्भवतः कन्या की प्रौढ़ आयु की अपेक्षा वर की सद्गुणसम्पन्नता और सवर्णता पर ही अधिक वल देना चाहा है, क्योंकि वे स्पष्ट कहते हैं "श्रेष्ठ, सुन्दर और योग्य वर मिल जाए, तो कन्या की अवस्था विवाह-योग्य न होने पर भी कन्या का दान विधिपूर्वक कर देना चाहिए। ऋतुमती कन्या भी भले ही जीवन पर्यन्त पिता के घर में रह जाए, किन्तु कभी भी कन्या गुणहीन वर को प्रदान

---

१. हि०गृ० १.१९.२. पर मातृदत्त —

नग्निकामासन्नार्तवाम् ।..........................मैथुनार्हेत्यर्थः ।

२. व०ध० १७.६२. प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात् पिता ।
ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषः पितरमृच्छति ।।

३. लौगाक्षि गृह्यसूत्र १९.२. दशवार्षिकं ब्रह्मचर्यं कुमारीणां
द्वादशवार्षिकं वा ।

४. वैखानस ६.१२. ब्राह्मणो ब्राह्मणीं नग्निकां गौरीं वा कन्यां—
वरयेत् । अष्टवर्षादादशमान्नग्निका । रजस्यप्राप्ते
दशवर्षादाद्द्वादशवर्षाद् गौरीत्यामनन्ति ।

५. पराशर स्मृति ७.६-९.

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेद् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ।।
........माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ।।
यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणोऽज्ञानमोहितः ।
असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नहीं करनी चाहिए।"[१] इसी स्थल पर कन्या को स्वयंवरण का अधिकार देते हुए मनु लिखते हैं – 'कन्या ऋतुमती होने के पश्चात् तीन वर्ष तक पिता, भाई या अभिभावक द्वारा विवाह किए जाने की प्रतीक्षा करे। और तीन वर्ष के उपरान्त कन्या अपने गुणों के अनुरूप वर को स्वयं चुन ले।'[२] मनु के इन कथनों से ज्ञात होता है कि मनु कन्या के ऋतुमती होने से पूर्व विवाह को अपवाद रूप मानते थे और ऋतुमती होने के तीन वर्ष बाद तक विवाह होना नियम विरुद्ध नहीं था। किन्तु मनुस्मृति में इसी स्थल पर मनु ने यह नियम भी स्थापित किया कि 'तीस वर्ष की अवस्था का वर बारह वर्ष की सुन्दरी कन्या से विवाह करे और यदि धर्म नष्ट होने की आशङ्का हो तो चौबीस वर्ष का ही पुरुष आठ वर्ष की कन्या से विवाह करे।'[३] यह श्लोक कन्या के ऋतुमती होने से पूर्व ही विवाह कर देने का समर्थक है। इन परस्पर विरोधी श्लोकों से मनु ने अपने से पूर्ववर्ती और परवर्ती शास्त्रकारों के मतों में सम्भवतः समन्वय करने का प्रयत्न किया है। 'धर्मे सीदति सत्वरः' से यह भी संकेत मिलता है, कि कन्याओं के विवाह की ये अवस्थाएं आपत्तिकाल में प्रवृत्त हुई हों, जब विदेशी आक्रमण अथवा शासन के शैथिल्य में समाजगत दस्यु कन्याओं का अपहरण या शीलभंग करने में तत्पर हों। उनसे कन्याओं की रक्षा के लिए विवाह ही सर्वसुलभ उपाय रहा होगा। ऐसे विवाह संक्षिप्त और चटपट होते होंगे।

गृह्यसूत्रों के समय तक वर-वधू के युवक युवती होने का एक महत्त्वपूर्ण संकेत यह है कि अधिकांश गृह्यसूत्रों के मत में विवाहित व्यक्तियों को विवाह के पश्चात कम से कम तीन रात्रि सम्भोग नहीं करना चाहिए।[४] विवाह और सहवास के बीच के तीन दिन-रातों के लिए विविध व्रत नियम आदि का विधान किया गया था। पारस्कर के मत से 'विवाहित युगल को चाहिए कि वे तीन रातों तक पृथिवी पर सोएं, क्षार और लवण न खाएं, तथा वर्ष-भर अथवा बारह रातों तक, अथवा छह रातों तक अथवा कम से कम तीन रातों तक सम्भोग न करें।'[५] तीन रातों के इस प्रतिबन्ध से स्पष्ट है कि विवाह के समय वर और वधू युवावस्था में होते थे, अन्यथा सम्भोग की सम्भावना ही नहीं थी। इस त्रिरात्रव्रत का उद्देश्य वर-वधू को यौन जीवन में संयत-मार्ग का पाठ पढ़ाना प्रतीत होता है। साथ ही इन तीन रातों में वर-वधू परस्पर सुपरिचित और विश्वासपात्र हो जाते थे और मैथुन में संकोचादि दूर हो जाते थे।[६] भोजन के नियम से रज और

---

१. मनुस्मृति ९.८८-८९ उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

२. मनुस्मृति ९.९०. त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्युतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

३. मनुस्मृति ९.९४. त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥

४. आ०गृ० १.७.११.; आप०गृ० ८.८.९.; मा०गृ० १.१४.१४.
खा०गृ० १.४.९.; हि०गृ० १.२३.१०.;

५. पा०गृ० १.८.२१.

६. का०सू० ३.२.१. पर जयमंगला टीका

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वीर्य की शुद्धि और उत्तम सन्तान की प्राप्ति अभिप्रेत रही होगी।[1]

अधिकांश गृह्यसूत्रों में चतुर्थी कर्म नामक कृत्य का वर्णन है, जो विवाह के चार दिन बाद सम्पन्न होता था।[2] विद्वानों ने इस चतुर्थी कर्म को पश्चात्कालीन गर्भाधान का द्योतक माना है। इस दशा में यह चतुर्थी कर्म भी युवावस्था में ही विवाह होने का निर्देश देता है।

कतिपय गृह्यसूत्रों ने वैवाहिक क्रियाओं के बीच कन्या के रजस्वला हो जाने पर प्रायश्चित का विधान किया है।[3] रजस्वला हो जाने पर किए जाने वाले प्रायश्चित्त का विधान स्पष्ट यही इङ्गित करता है कि विवाह के समय वधू की आयु युवावस्था में ही होती थी।

रामायण एवं महाभारत में विवाह की आयु :

रामायण एवं महाभारत का अध्ययन करने से भी ज्ञात होता है कि उनके मूल रूप के निर्माण के समय भी विवाह युवावस्था में ही होते थे। परवर्ती क्षेपकों ने युगधर्म के अनुकूल विवाह सम्बन्धी अनेकों नए तथ्य मूल ग्रन्थों में जोड़ दिए। विशेषतया महाभारत में तो अत्यन्त प्राचीन और अर्वाचीन दोनों ही साहित्य के अनुकूल तथ्य प्राप्त हो जाते हैं। महाभारत ने बदलते हुए समाज के विभिन्न सोपानों को अपने में प्रतिबिम्बित किया है।

रामायण में राम सीता की आयु विवाह के समय क्या थी? इस सम्बन्ध में विभिन्न मतों की पुष्टि करने वाले तथ्य प्राप्त होते हैं। रामायण में एक स्थल पर राम एवं सीता की आयु विवाह के समय क्रमशः तेरह वर्ष और छह वर्ष बताई गई है। पञ्चवटी में रावण को अपना परिचय देते हुए सीता कहती हैं कि विवाह के बाद मैं बारह वर्ष ससुराल रही और वन आते समय मेरी आयु अठारह वर्ष की थी—

'उषित्वा द्वादशसमा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥'[4]

किन्तु यह श्लोक स्पष्टतः क्षेपक जान पड़ता है क्योंकि स्वर्णमृग को मारने के लिए गए हुए पति की सुरक्षा-निमित्त चिन्तिता सीता का नितान्त अपरिचित रावण से अपने सम्बन्ध में इतना दीर्घ वार्तालाप नितान्त असङ्गत जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस श्लोक के विरोध में कई श्लोक अलग-अलग काण्डों में प्राप्त होते हैं। बालकाण्ड में वर्णन है कि विवाह के उपरान्त ही सीता एवं अन्य बहनें अपने अपने पतियों के साथ सम्भोग में लिप्त हो गई थी।[5] तब सीता की आयु छह वर्ष कैसे हो सकती है? इसके अतिरिक्त अयोध्याकाण्ड में वन में अत्रिपत्नी अनसूया के समक्ष सीता कहती हैं कि मेरे पिता जनक मेरी विवाह योग्य आयु हो जाने पर बहुत

१. दयानन्द सरस्वती – संस्कार विधि, पृष्ठ ३६-३७.
२. गो०गृ० २.५.; खा०गृ० १.४.१२-१६.; पा०गृ० १.११.;
आप.गृ० ८.१०.; हि०गृ० १.२३.११.
३. बौ०गृ० ४.१.१०
४. वा०रा० ३.४७.
५. वा०रा० १.७७.१४ रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिर्मुदिता रहः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चिन्तित हुए।[१] सीता की आयु यदि विवाह के समय छह ही वर्ष की थी तो उससे पूर्व पिता के चिन्तित होने का कोई कारण ही नहीं था। स्वयं जनक ने विश्वामित्र से कहा था कि मेरी प्राप्तयौवना कन्या को पाने की इच्छा से अनेकों राजा आए किन्तु शारीरिक परीक्षा में सफल न होने पर निराश होकर चले गए।[२] इस श्लोक में 'वर्धमाना' पद सीता के यौवन को ही सूचित कराता है। सीता के साथ राम भी पूर्णतया युवक थे। विवाह के समय 'समुपस्थितयौवन' राम और लक्ष्मण के कान्तिमान् और सुगठित व्यक्तित्व को दर्शक निर्निमेष देखते रह गए थे।[३] राजा दशरथ से जब अन्धमुनि के पुत्र श्रवणकुमार की हत्या हो गई थी तब वे युवराज थे और तब तक उनका विवाह नहीं हुआ था।[४]

रामायण में कैकसी और मन्दोदरी भी विवाह से पूर्व पूर्ण युवती थीं।[५] कुशनाभ कन्याओं ने वायु के परिणय प्रस्ताव को ठुकरा कर उत्तर दिया था कि जिसको हमारे पिता सौंप देंगे वही हमारा पति होगा।[६] यह उत्तर बालिकाएं नहीं दे सकती थीं।

महाभारत में तो सारे ही प्रमुख नारी पात्रों का विवाह पूर्ण यौवनावस्था में हुआ था। कुणिगर्ग की कन्या सुभ्रू तो वृद्धावस्था तक अविवाहित ही रही। अविवाहिता कन्याओं के लिए महाभारत में प्रायः 'रूपयौवनसम्पन्ना' विशेषण प्रयुक्त हुआ है[७] जिससे ज्ञात होता है कि युवावस्था में विवाह होता था। विवाह से पूर्व ही कुन्ती ने सूर्य द्वारा कर्ण को और सत्यवती ने पराशर मुनि द्वारा व्यास को जन्म दिया था।[८] अतः कुन्ती और सत्यवती दोनों ही विवाह के समय युवती थीं। अर्जुन और सुभद्रा विवाह से पूर्व ही प्रणयपाश में आबद्ध थे। प्रणय युवावस्था की अनुभूति है अतः अर्जुन और सुभद्रा का विवाह युवावस्था में ही हुआ था।[९] इसी प्रकार नल और दमयन्ती भी विवाह से पूर्व प्रणयाबद्ध थे।[१०] गान्धारी का विवाह जब धृतराष्ट्र से निश्चित हुआ तो धृतराष्ट्र को अन्धा जान कर गान्धारी ने भी अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी जिससे वह पति की वास्तविक संगिनी बन सके।[११] इतनी समझ बालिका वधू में नहीं हो सकती। अभिमन्यु और उत्तरा के विवाह के छह मास पश्चात् सातवें मास में अभिमन्यु की मृत्यु हो गई थी,[१२] और

---

१. वा०रा० २.११८.३४. पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता।
चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः॥

२. वा०रा० १.६६.१५-१६.........वर्धमानां ममात्मजाम्।
वरयामासुरागत्य राजानः।

३. वा०रा० १.४८.२-६.

४. वा०रा० २.६३.१४. देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम्।

५. वा०रा० ७.९.७. पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं व्यतिवर्तते।

६. वा०रा० १.३२.२२.

७. महाभारत ३.२७७.३८

८. महाभारत १.६७.१३७; १.९९.७-१४, १.६३.८४-८५.

९. महाभारत १.२११.१५.

१०. महाभारत ३.५०.१५-१६.

११. महाभारत १.१०३.१०-१३.

१२. महाभारत ११.२०.२६.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उस समय उत्तरा गर्भवती थी, जिससे विवाह के समय दोनों की युवावस्था सूचित होती है। सावित्री स्वयं अपना पति चुनने गई थी जिससे उसका बौद्धिक विकास सूचित होता है।[१] द्रौपदी ने अपने स्वयंवर में गर्वपूर्वक सूतपुत्र को वरण करने से इन्कार कर दिया तथा विवाह के तुरन्त बाद गृहस्थी के विभिन्न कार्यों को सँभाल लिया।[२] शकुन्तला और गंगा ने गान्धर्व विवाह किया था जो बालिका नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त शकुन्तला के गान्धर्व विवाह का वृत्तान्त जब कण्व को मिला तो उन्होंने इस प्रकार शकुन्तला का अभिनन्दन किया – 'शुचिस्मिते! तुम्हारे बहुत से ऋतुकाल व्यर्थ ही चले गए; अब यह ऋतुकाल सफल हुआ है। अतः तुमने कोई पाप नहीं किया'[३]। अनुशासन पर्व में शिव-पार्वती संवाद में ऋतु-प्राप्त कन्या ही विवाह के उपयुक्त बताई गई है – 'ऋतु काल के पश्चात् स्नान करने वाली कन्या शुद्ध होती है। पिता, माता, मामा, चाचा, तथा भाई को चाहिए कि उसका विवाह कर दें।'[४]

काव्यों तथा नाटकों में विवाह की आयु :

रामायण-महाभारत के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के अन्य काव्यों, नाटकों आदि में भी नायक-नायिकाएँ युवावस्था में ही चित्रित किए गए हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में पद्मावती का विवाह जब उदयन से हुआ तब तक पद्मावती पर्याप्त युवती हो चुकी थी और उसने स्वयं प्रद्योत की पुत्रवधू बनने के प्रति अपनी अरुचि प्रगट की थी।[५]

कालिदास के काव्यों तथा नाटकों में चित्रित विवाहों में नायिका विवाह के समस्त कृत्यों और तज्जन्य उत्तरदायित्व से पूर्णतया अवगत होती थी। ध्रुवदर्शन आदि अवसरों पर वह स्पष्ट रूप में वाणी द्वारा अपनी स्वीकृति प्रदान किया करती थी।[६] स्वयंवर में पतिवरा इन्दुमती निश्चय ही शिशु अवस्था में नहीं हो सकती। विवाह कृत्यों में वर एवं वधू पारस्परिक स्पर्श से पुलकित हो उठते थे,[७] यह पुलक उनकी युवावस्था का सूचक है। कालिदास ने वैवाहिक कृत्यों की समाप्ति के बाद कौतुकागार में विवाह शय्या का जो वर्णन किया है, उससे भी नायक-नायिका की पूर्ण युवावस्था सूचित होती है।[८]

---

१. महाभारत ३.२७७.३७-४१.

२. महाभारत १.१८६.२३.;

३. महाभारत १.७३,३३. ऋतवो बहवस्ते वै गता व्यर्था शुचिस्मिते।
सार्थकं साम्प्रतं ह्येतन्न च पाप्माऽस्ति तेऽनघे॥

४. महाभारत १३.२८६.६ बम्बई एडीशन।

५. स्वप्नवासवदत्तम् – द्वितीय अंक – क एष महासेनो नाम?
भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति।

६. कु०स० ७.८५. ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन।
सा इष्ट इत्याननमुन्नमय्य ह्रीसन्नकण्ठी कथमप्युवाच॥

७. कु०स० ७.७७. रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नांगुलिः पुंगवकेतुरासीद्।
वृत्तिस्तयोः पाणिसमागमेन समं विभक्तेव मनोभवस्य॥

८. कु०स० ७.९४. ....कनककलशयुक्तं भक्तिशोभासनाथं,
क्षितिविरचितशय्यं कौतुकागारमागात्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कालिदास के अतिरिक्त अन्य संस्कृत कवियों की काव्य नायिकाएँ भी विवाह के समय शिशु नहीं जान पड़ती। हर्षचरित के अनुसार राज्यश्री विवाह के समय पूर्ण युवती थी। रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि नाटिकाओं की नायिकाएँ विवाह से पूर्व ही युवती थीं।

जैसा इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा जा चुका है, भवभूति ने अपने 'उत्तररामचरितम्' में राम और सीता के विवाह के समय उनकी शिशु अवस्था मानी है; किन्तु 'उत्तररामचरितम्' के ही अन्य श्लोकों से यह भी ध्वनित होता है कि राम और सीता विवाह के समय निश्चित रूप से शिशु नहीं रहे होंगे। चित्रवीथी में चित्रदर्शन के समय विवाह के चित्रों को देखते हुए राम भावातिरेक में देशकाल को भूल कर कह उठते हैं— 'हे सुमुखि ! यह तो मानो वही समय है जब शतानन्द द्वारा अर्पित तथा सुन्दर कंकरण धारण किए हुए तुम्हारे हाथ ने मुझे मूर्तिमान् उत्सव के समान आनन्दित किया था।'[1] इस श्लोक में प्रयुक्त दो पद 'समनन्दयत्' तथा मूर्तिमानिव महोत्सव करः' —ये दोनों ही भाव युवक युवती के मनोभाव के सूचक हैं —शिशु के नहीं। शिशु अवस्था में विवाह, पत्नी तथा तज्जन्य संस्पर्श आदि मन को आन्दोलित नहीं करते। कामजन्य ये विकार यौवनावस्था में ही उत्पन्न हो सकते हैं।

चित्र दर्शन के ही समय सीता ने विवाह दीक्षित चारों भाइयों को "एते खलु तत्कालकृत-गोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्" कहा है। अर्थात् विवाह से तनिक पूर्व ही राम आदि चारों भाईयों का 'गोदान संस्कार' किया गया था। मनु ने आयु के बाइसवें वर्ष में क्षत्रिय के केशान्त संस्कार का विधान किया है।[2] याज्ञवल्क्य पर मिताक्षरा टीका ने 'केशान्त संस्कार' को ही गोदान कर्म कहा है।[3] अतः भवभूति द्वारा प्रयुक्त वह 'तत्कालकृतगोदान' पद युवावस्था का परिचायक है, शैशव का नहीं। कालिदास ने भी रघुवंश में विवाह से पूर्व 'गोदान कर्म' कराया है।[4]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य के रामायण, महाभारत तथा अन्य काव्यों, नाटकों में भी यद्यपि पूर्ण युवावस्था में ही विवाह किए जाने के उदाहरण प्राप्त होते हैं; किन्तु सूत्र साहित्य का अध्ययन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यद्यपि गृह्यसूत्रों के समय तक विवाह योग्य आयु युवावस्था ही थी तथापि धर्मसूत्रों के समय से ही कन्याओं की विवाह योग्य आयु न्यूनतर किए जाने के स्पष्ट इङ्गित प्राप्त होने लगते हैं। धर्मसूत्रों का रचना काल सामान्यत: ईस्वी पूर्व ५०० वर्ष के पश्चात् माना जाता है। गौतम ने विधान किया कि ''कन्या के ऋतुमती होने से पूर्व ही विवाह

---

१. उ०रा० १.१८. समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत् सुमुखि ! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कणः
तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः॥

२. म०स्मृ० २.६५. केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः॥

३. या०स्मृ० १.३६. पर विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा टीका – 'केशान्तः पुनर्गोदानाख्यं कर्म'

४. रघुवंश ३.३३. अथास्य गोदानविधेरनन्तरं
विवाहदीक्षां निरवर्तयद्गुरुः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर देना चाहिए अन्यथा दोष होता है। कुछ का कथन है कि परिधान धारण करने से पूर्व ही विवाह कर देना चाहिए।"[१] गौतम के इस निर्देश से ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व छठी शती में भी कुछ विवाह बाल्यकाल में हो जाते थे। स्मृति साहित्य में तो स्पष्टतः कन्या की विवाह योग्य आयु के कम हो जाने के विभिन्न स्तर परिलक्षित होते हैं। एक ही स्मृति में एक ओर तो ऐसे वचन उपलब्ध होते हैं जिनसे प्रौढ़ वर वधू के विवाह में कोई दोष या पाप नहीं प्रतीत होता, और दूसरी ओर अन्य अनेक वचन आठ वर्ष जैसी बालअवस्था में ही कन्या के विवाह का विधान करते हैं।[२] मनुस्मृति के भीतर पाए जाने वाले इन परस्पर विरोधी वचनों का विवेचन किया ही जा चुका है। 'नग्निका' शब्द की व्याख्या के समय ही यह देखा जा चुका है कि ईसा की प्रथम शती के बाद के संस्कृत साहित्य के सूत्रों और स्मृतियों तथा टीकाकारों ने विवाह की आयु कन्या के लिए आठ या दस वर्ष ठहराई। कन्या के लिए विवाह योग्य आयु क्रमशः क्यों कम होती गई, इसके कतिपय कारण संस्कृत साहित्य में ढूँढ़े जा सकते हैं—

(१) ऋग्वेद के समय से ही यह रहस्यात्मक विश्वास चला आ रहा था कि सोम, गन्धर्व और अग्नि कन्या के दैवी अभिभावक हैं।[३] सोम सर्वप्रथम कन्या का उपभोग करता है; रजोदर्शन हो जाने पर भोग गन्धर्व करता है और कुच विकसित हो जाने पर अग्नि उपभोग करता है।[४] अतः क्रमशः यह धारणा प्रचलित होने लगी होगी कि कन्या के अंग किसी भी प्रकार विकसित होने से पूर्व ही उसे मनुष्य पति को सौंप देना चाहिए।

(२) भारत की विजय पूर्ण हो जाने पर विजेता आर्यों की जीवनचर्या अधिकाधिक विलासपूर्ण होती गई। वे देश में सर्वोच्च थे और अपनी स्थिति के प्रति आश्वस्त थे। अतः उन्होंने जीवन के समस्त सुखों का सम्पूर्ण उपभोग प्रारम्भ कर दिया। इस सुखोपभोग ने उन्हें शीघ्रतर यौन-जीवन की ओर उन्मुख कर दिया और विवाह योग्य आयु निम्नतर होती गई।[५]

(३) बौद्ध धर्म का जैसे जैसे विस्तार होता गया वैसे ही वैसे बौद्धधर्म में दीक्षित होने वालों की संख्या बढ़ती गई। भिक्षु और भिक्षुणियों की संस्थाओं की स्थापना होने लगी। परस्पर साथ रहने के कारण भिक्षु एवं भिक्षुणियों के नैतिक जीवन में ह्रास होने लगा। बौद्ध धर्म की प्रगति ने वैदिक धर्म को बहुत हानि पहुंचाई थी। इसीलिए संस्कृत साहित्य में श्रमण आदि का

---

१. गौ०ध० २.९.२१-२३. प्रदानं प्रागृतोः।
अप्रयच्छन् दोषी। प्राग्वाससः प्रतिपत्तिरित्येके।

२. म०स्मृ० ९.८८–९४.

३. ऋ०वे० १०.८५.४० सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजः॥

४. काणे, पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास. प्रथम भाग, पृष्ठ २७५ पर उद्धृत
रोमकाले तु सम्प्राप्ते सोमो भुङ्क्तेऽथ कन्यकाम्।
रजो दृष्ट्वा तु गन्धर्वाः, कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः॥
तस्माद् विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्।
विवाहो ह्याष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते॥

५. पाण्डेय, राजबली —हिन्दू संस्कार – पृष्ठ २३८.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उल्लेख बड़े तिरस्कार पूर्वक हुआ है। समाज के इस नैतिक ह्रास को रोकने के लिए और कन्याओं को भिक्षुणी न बनने देने के लिए बाल्यकाल में ही विवाह पर बल दिया जाने लगा होगा।

(४) पहले कन्याएं भी वेदाध्ययन और पठन-पाठन करती थी किंतु धीरे धीरे कन्याओं को पढ़ाने की प्रवृत्ति कम होती गई। विद्याध्ययन करते हुए आयु युवावस्था तक पहुँच जाया करती थी किन्तु न पढ़ने पर अविवाहिता कन्या को निरर्थक रूप में पिता के घर रहने देना समाज को मान्य नहीं रहा होगा।[1]

(५) साहित्य में अनेक ऐसे उदाहरण प्राप्त होते है जिनसे ज्ञात होता है कि समाज में यह विश्वास व्याप्त था कि अविवाहित रूप से मर जाने पर स्त्री को मोक्ष प्राप्त नहीं होता क्योंकि वेदाध्ययन आदि करके कन्या मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न कर नहीं सकती थी। महाभारत में कुणिगर्ग की कन्या की कथा से यही ज्ञात होता है।[2] सम्भवतः इसलिए भी शीघ्र ही छोटी आयु में विवाह कर देने का प्रचलन बढ़ता गया। इस का अनिवार्य निष्कर्ष यह है कि उस समय अल्पायु कन्याओं कि मृत्यु पर्याप्त रही होगी।

(६) संस्कृत शास्त्रकारों ने सम्पूर्ण मानव जीवन के विभिन्न अवसरों पर विभिन्न संस्कारों की व्यवस्था की, जिनसे मनुष्य का चतुर्मुखी विकास होता था। संस्कारों में उपनयन एक महत्वपूर्ण संस्कार है। किन्तु स्त्री और पुरुष के संस्कारों में बहुत भेद किया गया है। 'कन्या के लिए भी उचित समय और उचित क्रम में ये सारे संस्कार होने चाहिएँ, जिनसे वह पवित्र हो सके, किंतु कन्या के संस्कार करते समय मन्त्रोच्चारण नहीं होना चाहिए।'[3] ऐसा विधान धर्मशास्त्रकारों ने किया। कालान्तर में कन्याओं के लिए विवाह ही उपनयन संस्कार कहा जाने लगा।[4] उपनयन संस्कार की अवस्था लगभग आठ वर्ष मानी गई थी अतः विवाह की भी वही अवस्था मानी जाने लगी।[5] मनु ने उपनयन संस्कार और विवाह संस्कार में कुछ सादृश्यों के कारण अभेद मान लिया।[6] उपनयन संस्कार में ब्रह्मचारी पितृगृह से गुरु के घर चला जाता था, विवाह संस्कार में कन्या पितृगृह से श्वशुरालय जाती है। ब्रह्मचारी गुरु के अग्निहोत्र के लिए समिधा लाकर अग्नि प्रदीप्त करता था और कन्या दोनों समय पतिगृह में अग्नि पर भोजन पकाती थी।

---

१. अल्तेकर, ए०एस०, पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन-पृष्ठ ५६.
   काणे पा०वा०, धर्मशास्त्र का इतिहास - प्रथम भाग पृष्ठ २७५.

२. महाभारत ९.५१.११. असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकस्तवानघे।

३. म०स्मृ० २.६६. अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
   संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥

४. काणे, पा०वा० धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २७५. पर उद्धृत
   विवाहं चोपनयनं स्त्रीणामाह पितामहः
   तस्माद् गर्भाष्टमः श्रेष्ठो जन्मतो वाष्टवत्सरः

५. वही   स्त्रीणामुपनयनस्थानापन्नो विवाह इति।
   तदुचितावस्थायां विवाहस्योचितत्वात्॥

६. म०स्मृ० २.६७. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
   पतिसेवा गुरौ वासः गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(७) रामायण एवं महाभारत के उपदेशपरक अंशों में भी यद्यपि युवावस्था को कन्या विवाह का एक गुण माना गया है, तथापि एक प्रवृत्ति इन दोनों महाकाव्यों में यह भी है कि तारुण्य प्राप्त हो जाने के बाद कन्या को अधिक दिनों अविवाहिता नहीं रहने देना चाहिए। ऋतु अथवा मासिक धर्म गर्भाधान का उचित समय है अतः कन्या का ऋतु सन्तति-रक्षण के ईश्वरीय विधान का चिह्न है, और स्त्री के लिए अपरिहार्य कर्तव्य है। यदि पिता विवाह करने में असफल हैं तो कन्या को स्वंय विवाह कर लेना चाहिए अन्यथा यह प्रजापति के विरुद्ध एक पाप हैं।[1] इस पाप के भय से और कन्या के ऋतु को निष्फल न होने देने की दृष्टि से पिता अपनी पुत्री के लिए तत्परता से वर ढूंढ़ता था। कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए पिता वर मिलते ही विवाह कर देता था चाहे कन्या की आयु छोटी हो क्यों न हो।

(८) गान्धर्व विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह को समाज प्रशंसा की दृष्टि से नहीं देखता था। इस प्रकार के विवाह पर्याप्त तरुण-अवस्था में ही सम्भव होते थे। अतः इन दोनों प्रकारो के विवाहों को रोकने के लिए भी विवाह योग्य आयु कम मानी गई।

(९) महाभारत के विभिन्न प्रसंगों से ज्ञात होता है कि उस समय कन्या में कौमार्य बहुत आवश्यक नहीं था। कुन्ती एवं सत्यवती विवाह से पूर्व ही माता बन चुकी थीं। किन्तु ऐसे उदाहरण समाज में नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन कर देते थे। महाभारतकार व्यास ने भी इन प्रसंगों पर लीपापोती कर के इन्हें संभालने का प्रयत्न किया है। अतः समाज में नैतिक मूल्य की वृद्धि के लिए क्रमशः कन्या के कौमार्य पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा। कौमार्य को सुरक्षित रखने का सबसे सरल उपाय था कि युवावस्था प्राप्त होने से पूर्व ही कन्या का विवाह कर दिया जाए। युवा कन्या मार्गच्युत न हो जाए – इस भय से चिन्तित पिता कन्याओं का विवाह शीघ्र करने लगे और विवाह योग्य आयु घटती गई।

(१०) मनुस्मृति ने विधान किया था कि स्त्री कभी भी स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं है– 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' – जीवन की हर अवस्था में उस पर किसी न किसी का प्रभुत्व तथा संरक्षण होना ही चाहिए। विवाह होने पर कन्या पर पिता का प्रभुत्व पति में संक्रमित हो जाता था। यह प्रभुत्व–संक्रमण यदि बड़ी आयु में होता तो कन्या उस पर आपत्ति उठा सकती थी अतः कन्या के द्वारा माता-पिता के प्रभुत्व से इन्कार कर सकने लायक बौद्धिक क्षमता के आने की आयु से पूर्व ही माता पिता कन्याओं का विवाह करना श्रेयस्कर समझने लगे।[2]

(११) भारत पर विदेशी आक्रमण ईस्वी पूर्व चतुर्थ और तृतीय शती से ही प्रारम्भ हो गए थे। शक, यूनानी, वाह्लीक आदि भारतीयों की अपेक्षा भौतिक दृष्टि से अधिक सबल थे, किन्तु सुसंस्कृत नहीं थे। भारत के उत्तर पश्चिमी प्रदेशों यर अधिकार कर लेने वाले इन शकों आदि में स्त्री का स्थान बहुत तुच्छ था; वह उनके कामोपभोग की सामग्री मात्र थी। भारतीयों

---

१. महाभारत १३.४४.१६. न प्रजा हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ।
अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः ॥

२. कपाडिया, के०एम० – भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार – पृष्ठ १४८.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का जीवन जब इन आक्रान्ताओं से प्रभावित हुआ तो सुरक्षा की दृष्टि से कन्याओं का विवाह छोटी आयु में किया जाने लगा।[1]

उपर्युक्त समस्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद से लेकर गृह्यसूत्रों के काल तक कन्या एवं पुरुष दोनों ही युवावस्था में विवाह के अधिकारी थे, एवं युवावस्था में ही विवाह सम्पन्न हुआ करते थे। इस दृष्टि से समाज में कन्याओं की स्थिति पर्याप्त उच्च थी तथा वे सम्मान के योग्य थीं। किन्तु कालक्रम में अनेक कारणों, से विशेषतया कन्या के लिए विवाह की आयु कम होती गई। कन्या की विवाह योग्य आयु के कम होते जाने में धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक अपमान एवं निन्दा ने बहुत बड़ा योग दिया।

१. पांडेय, राजबली – हिन्दू संस्कार – पृष्ठ २३८.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

षष्ठ अध्याय

वर एवं वधू के गुण तथा अवगुण

वर के गुण
वर के अवगुण
वधू के गुण
वधू के अवगुण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर एवं वधू के गुण तथा अवगुण

गृहस्थाश्रम के सामाजिक महत्त्व को और जीवन में विवाह की गुणवत्ता को जान लेने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि विवाह संस्कार में परस्पर संयुक्त हो जाने वाले वर एवं वधू के सम्बन्ध में पहले ही पूर्ण अन्वेषण कर लिया जाए। कन्या एवं पुरुष में क्या क्या गुण हों – जिनसे वैवाहिक जीवन सुखी हो सके और समाज का भी हित हो सके ? कन्या के कौन से ऐसे अवगुण है जो वैवाहिक जीवन को विशृंखल कर के सम्पूर्ण व्यवस्था को ही अस्तव्यस्त कर सकते हैं ? वर में किन अयोग्यताओं का विचार भली प्रकार किया जाना चाहिए ? – ये सारे प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उचित कन्या और योग्य वर के विवाह में ही सुख रहता है।

संस्कृत साहित्य के प्राचीन वैदिक समय में यद्यपि हमें कन्या एवं वर के गुणों की स्पष्ट तालिका प्राप्त नहीं होती तथापि वैवाहिक मन्त्रों के आधार पर दोनों ही पक्षों के गुणावगुण का यत्किञ्चित् अवधारण किया जा सकता है। गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों और स्मृतियों तथा काव्य नाटकादि के आधार पर तो इन गुणावगुणों की लम्बी सूची बन जाती है। सामान्य रूप में धन, रूप, स्वास्थ्य, बुद्धि और कुल – ये ही विवाह में विचारणीय प्रमुख तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। विभिन्न धर्मशास्त्रों ने इनमें से विभिन्न तत्त्वों को प्रधानता दी है। किसी ने बुद्धि को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है, तो दूसरे ने रूप या स्वास्थ्य को। किसी अन्य ने पुरुष के पौरुष तथा स्त्री के स्त्रीत्व को ही विवाह के लिए योग्यतम उपाधि सिद्ध किया है, क्योंकि विवाह धर्मपालन के लिए है और सन्तानोत्पत्ति विवाह का प्रयोजन और धर्मपालन का कारण है। व्यक्तिगत जीवन में भी हर स्त्री और पुरुष ने अपनी रुचि के अनुकूल ही किसी एक या अधिक को प्रधानता दी होगी – 'विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।'

वर के गुण :

जीवन में आश्रमों के क्रम में गृहस्थाश्रम का स्थान द्वितीय है। उससे पूर्व ब्रह्मचर्याश्रम है। अतः वर चयन में सर्वप्रथम गुण यह द्रष्टव्य है कि उसने ब्रह्मचर्याश्रम को भली-भाँति समाप्त कर लिया हो। उसने एक या दो या सभी वेदों का अध्ययन कर लिया हो और विद्याग्रहण के पश्चात् गुरु से द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति भी मिल गई हो।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति ने वर

---

१. म०स्मृ० ३.२. वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।
३.४. गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधिः।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के गुणों में 'श्रोत्रिय' होना भी आवश्यक बताया है।[१] मिताक्षरा ने श्रोत्रिय की व्याख्या करते हुए लिखा है – 'श्रोत्रियः स्वंय च श्रुताध्ययनसम्पन्नः– (जो स्वंय वेदादि के ज्ञान से युक्त हो)।' आश्वलायन ने बुद्धिमान को वर रूप में ग्रहण करने की व्यवस्था की।[२] मनुष्य बुद्धिमान् तभी होता है जब विभिन्न शास्त्रों के पठन-पाठन पूर्वक वह वस्तुओं के वास्तविक तत्त्व को जानने में समर्थ हो जाए। अतः वर में प्रथम गुण यह है कि उसने ब्रह्मचर्याश्रम को यथाविधि समाप्त कर के ज्ञान ग्रहण कर लिया हो।

बुद्धिमान् होने के अतिरिक्त वर की एक और विशेषता सूत्रकारों ने वर्णित की। वर को अखण्ड ब्रह्मचारी होना चाहिए। दक्ष ने स्पष्ट विधान किया कि 'जिसने अपने ब्रह्मचर्य को लुप्त नहीं होने दिया, ऐसा व्यक्ति गुणवती कन्या से विवाह करे।'[३] सामान्य रूप में भी ब्रह्मचारी पद से यही अर्थ ग्रहण किया जाता है कि जिसने अपना वीर्य-रक्षा का व्रत भंग न किया हो। बौधायन ने घोषित किया है कि गुणवान् ब्रह्मचारी को कन्या देनी चाहिए।[४] मनु तथा याज्ञवल्क्य ने भी गृहाश्रम में प्रवेश करने वाले को 'अविलुप्तब्रह्मचर्य' गुण से युक्त होना माना है।[५]

किन्तु वर के सम्बन्ध में ब्रह्मचर्य को अनिवार्य गुण नहीं माना जा सकता। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर अथवा उसके रोगयुक्त होने पर अथवा प्रथम पत्नी से पुत्र प्राप्ति न होने पर अथवा मात्र रतिसुख की प्राप्ति के लिए पुरुष वहुविवाह करता है। स्मृतिकारों ने इनमें से हर स्थिति में पुरुष के पुनर्विवाह का विधान किया है।[६] 'यदि शीलवती पत्नी की मृत्यु हो जाए तो पति अग्निहोत्र की अग्नि से उसका दाहसंस्कार करके यथाशीघ्र विधिपूर्वक दूसरी पत्नी ग्रहण करे और पुनः अग्नि-होत्र का आधान करे।'[७] इस व्यवस्था से स्पष्ट है कि विधुर को, अथवा एक पत्नी रहने पर भी व्यक्ति को दूसरा विवाह करने का अधिकार था। अतः अनन्यपूर्वकत्व या 'अखण्ड ब्रह्मचर्य' वर के लिए अनिवार्य नहीं था। फिर भी विधुर पुरुष की अपेक्षा कुमार वर को विवाह में कन्या देना अधिक श्रेष्ठ माना जाता था।' जिस पुरुष ने अपनी (मृत) पत्नी का दाह संस्कार नहीं किया है, उसको कन्यादान करना अनन्तफल दायक है। जिसका पहले विवाह हो चुका है, और पत्नी मर चुकी है, ऐसे पुरुष के साथ कन्या का विवाह करने में आधा ही फल प्राप्त होता है। अनेक विवाह

---

१. या०स्मृ० १.५५.

२. आ०गृ० १.४.९. बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत्

३. पारस्कर गृह्यसूत्र १.८. पर गदाधर भाष्य में उद्धृत दक्ष–
'अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियं उद्वहेत्।'

४. बौ०ध० ४.१.१२. दद्यात् गुणवते कन्यां नग्निकां ब्रह्मचारिणे।

५. म०स्मृ० ३.२. अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।
या०स्मृ० १.५२. अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।

६. या०स्मृ० १.७३. सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यर्थघ्न्यप्रियंवदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा॥

७. या०स्मृ० १.८९. दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करने वाले पुरुष को कन्यादान करना निष्फल है।'[१] इससे स्पष्ट है कि वर में ब्रह्मचर्य अनिवार्य तो नहीं, किन्तु अभिलषणीय अवश्य है।

वर चयन में गुणों का विचार करते हुए यद्यपि स्मृतिकारों ने वर की आयु के सम्बन्ध में काई निर्देश नहीं किया है, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर विवाह का विधान है। ब्रह्मचर्य की भी तीन श्रेणियाँ की गई हैं – वसु (पच्चीस वर्ष तक), रुद्र (छत्तीस वर्ष तक) और आदित्य (चवालिस या अड़तालिस वर्ष तक) – अतः यह स्वतः सिद्ध है कि वर को युवावस्था में होना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने वर के गुणों में 'युवा' भी एक गुण कहा है।[२] लिंग पुराण ने यह घोषित किया कि 'सर्व प्रथम वर की आयु की परीक्षा करनी चाहिए, उसके पश्चात् अन्य लक्षणों को विचारना चाहिए। क्योंकि यदि मनुष्य की विवाह योग्य आयु ही व्यतीत हो चुकी हो, तो अन्य लक्षणों के विवेचन से क्या लाभ?'[३]

स्मृतिकारों ने वर में पुरुषत्व को एक अनिवार्य गुण माना है। वंशपरम्परा और धर्मपालन के लिए विवाह होता है। यदि पुरुष में पुंस्त्व ही नहीं है तो कन्या का उससे विवाह करना ही निरर्थक है। याज्ञवल्क्य ने वर के गुणों में लिखा है कि 'वर के पुंस्त्व की यत्नपूर्वक परीक्षा कर ली गई हो।'[४] नारद ने भी यही व्यवस्था दी है – 'पुरुष के पुंस्त्व की उसी के अंगलक्षणों से परीक्षा करनी चाहिए। जो पुरुष अपने अंगलक्षणों से पौरुषयुक्त सिद्ध हो, वही कन्या प्राप्त करने का अधिकारी है।'[५] वर के पौरुष की परीक्षा का उपाय भी नारद ने विस्तृत रूप में वर्णन किया है।' वर के पौरुष की यह परीक्षा इसलिए आवश्यक है क्योंकि 'स्त्रियाँ सन्तान के लिए बनाई गई हैं। स्त्री क्षेत्र है और पुरुष बीजी है अतः क्षेत्र बीजवान् को ही देना चाहिए।'[६]

श्रुतिसम्पत्, ब्रह्मचर्य तथा पौरुष के अतिरिक्त सम्पत्ति, सौन्दर्य, कुल आदि अन्य विचारणीय गुण है। याज्ञवल्क्य ने वर में भी उन समस्त गुणों को आवश्यक माना है जो वधू के लिए आवश्यक माने जाते हैं।[७] पारस्कर गृह्यसूत्र पर गदाधर भाष्य में उद्धृत यम ने वर की सामान्य विशेषताओं

---

१. वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ७५६. अदग्धहस्ते यद्दत्तं तदनन्तफलं स्मृतम्।
दग्धहस्ते तदर्धं स्यान्निष्फलं बहुगृह्णतः॥

२. या०स्मृ० १.५५.

३. वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ७५२ पर उद्धृत लिंग पुराण
पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
आयुर्हीननराणाञ्च लक्षणैः किं प्रयोजनम्॥

४. या०स्मृ० १५५. ....यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे।

५. पा०गृ० १.८. पर गदाधर द्वारा उद्धृत नारद
परीक्ष्य पुरुषः पुंस्त्वे निजैरेवांगलक्षणैः।
पुमांश्चेदविकल्येन स कन्यां लब्धुमर्हति॥

६. या०स्मृ० १.५५. पर मिताक्षरा टीका द्वारा उद्धृत नारद
पा०गृ० १.८. पर गदाधर द्वारा उदधृत नारद्र
अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टाः, स्त्री क्षेत्रं, बीजिनो नराः।
क्षेत्रं बीजवते देयं, नाबीजी क्षेत्रमर्हति॥

७. या०स्मृ० १.५५. ....एतैरेव गुणैर्युक्तः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और इच्छित गुणों का बहुत तर्कसङ्गत वर्णन किया है – 'विद्वानों को चाहिए कि वे कुल, शील, शरीर, आयु, विद्या, वित्त और साधन सम्पन्नता – इन सात गुणों की परीक्षा करके वर को कन्या दें। इनके अतिरिक्त विचारणीय कुछ नहीं है।'[१] यम की इस व्यवस्था में वर से सम्बन्धित प्रायः सभी गुण आ जाते हैं। गौतम और आपस्तम्ब में भी इन्हीं गुणों की पुनरावृत्ति सी है कि 'विद्यावान् चरित्रसम्पन्न, श्रुतवान्, रोगहीन को कन्या देनी चाहिए।'[२]

स्मृतिकारों ने यद्यपि वर के रूप सौन्दर्य के विषय में कुछ नहीं कहा है क्योंकि 'रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते, पराक्रमेण तु पुरुषाः।' किन्तु संस्कृत साहित्य के काव्यपक्ष में वर में रूप सम्पद् का भी वर्णन किया गया है। कन्या की दृष्टि से तो वर में सर्वाधिक काम्य गुण रूप ही है। पुष्पधन्वा के समान सुदर्शन एवं मनोहर पुरुष कन्या के स्वप्न लोक का वर होता है। स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के द्वितीय अङ्क में पद्मावती के मनोगत भाव को चेटी प्रगट करती है कि पद्मावती राजा उदयन से विवाह करना चाहती है क्योंकि वह दयालु और दर्शनीय हैं। महाभारत में स्थल-स्थल पर ऐसे वर की खोज है अथवा ऐसा वर श्रेष्ठ कहा गया है जो रूपवान्, दर्शनीय तथा कान्तिमान् हो।[३]

वर के सम्बन्ध में इन गुणों के सामान्य विवेचन से ज्ञात होता है कि गुणवान् पुरुष विवाह योग्य वर माना जाता था।[४] ये गुण चयनकर्ता की व्यक्तिगत रूचि के अनुरूप प्रमुख या गौण बन जाते थे। किन्तु वर को कन्या के अनुरूप होना ही आवश्यक था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के सम्बन्ध में जब अनसूया और प्रियम्वदा से पूछा तो उन्होंने यही उत्तर दिया 'पिता ने इस शकुन्तला को अनुरूप वर के लिए प्रदान करने का सङ्कल्प किया है।'[५] महाभारत में जनमेजय ने जब वपुष्टमा को माँगा तो पिता ने अच्छी तरह परीक्षा करके विवाह कर दिया—

'ततः स राजा प्रददौ वपुष्टमां
कुरुप्रवीराय परीक्ष्य धर्मतः।' (महाभारत १.४४.९.)

वर के अवगुण :

विवाह में वर के जिन गुणों का विवेचन किया गया उनसे विपरीत धर्म स्वतः ही वर के अवगुण रूप में सिद्ध हो जाते है। इसी कारण प्रायः सूत्रकार अथवा स्मृतिकार वर के अवगुणों के सम्बन्ध में मौन है। वेदों में वर की अयोग्यता के सम्बन्ध में कहीं-कहीं श्लोक प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद में वर्णन है कि जिस व्यक्ति में दान, धर्म और गुण नहीं है वह विवाह के अयोग्य है।[६]

---

१. पा०गृ० १.८. पर गदाधर द्वारा उद्धृत यम
कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथताञ्च।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः लेशमचिन्तनीयम्॥

२. गौ०ध० १.४.४. विद्याचारित्रबन्धुशीलसम्पन्नाय दद्यात्।
आ०ध० १.३.२०. बन्धुशीललक्षणसम्पन्नः श्रुतवानरोग इति।

३. महाभारत ५.९५.२०.; ५.९६.११.; ५.१०१.१३.

४. अभि०शा० – चतुर्थ अंक— गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत्प्रथमः सङ्कल्पः।

५. अभि०शा० – प्रथम अंक— गुरो पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः।
अभि०शा० ४.१३. संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशम्।

६. य०वे० १२.६२.
अ०वे० २.३०.३.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथर्ववेद में विवाह के लिए अयोग्य ठहराए जाने वाले मनुष्यों की एक लम्बी तालिका प्राप्त होती है।[१] 'हे विवाह योग्य स्त्री ! तेरी माता ने पति रूप में प्राप्त होने वाले जिन पुरुषों को तुझ कन्या के लिए निषेध किया है, उनमें से एक त्वचागत संक्रामक रोग से आक्रान्त है और दूसरा पुरुष कुष्ठी तथा बच्चों का पालन करने वाला (वृद्ध) अथवा रोग विशेष से पीड़ित है। ये दोनों ही पुरुष तेरे योग्य नहीं है। माता को भी इस प्रकार का निर्देश दिया गया है कि निम्नलिखित अवगुणों से युक्त पुरुष कन्या के वर होने के योग्य नहीं हैं।

(१) मांसभक्षी अथवा उसकी सन्तान;

(२) हिंसक स्वभाव

(३) छली अथवा निर्दयी मनुष्य जिसका स्वभाव उल्लू अथवा भेड़िए के समान हो।

(४) मलिन स्वभाव वाला चोर आदि।

(५) श्वेत बालों वाला अथवा पलित रोगी।

(६) सङ्क्रामक अथवा असाध्य रोग से पीड़ित।

(७) रूप विनाशक अथवा केवल बाह्य रूप को वस्त्रों आदि से सजाने वाला।

(८) रीछ के समान ग्रीवा युक्त।

(९) क्षीण नेत्र दृष्टि।

(१०) दुष्कर्मी, दुश्चरित्र।

(११) लम्बे केशों को धारण करने वाला।

(१२) असुर या सर्वभक्षी।

(१३) जङ्गली अथवा जंगली स्वभाव वाला।

(१४) कुरूप, कुलक्षण

अथर्ववेद में प्राप्त इस तालिका में अन्य अवगुणों के अतिरिक्त शरीरिक कुरूपता को भी एक महत्वपूर्ण निषेधलक्षण कहा गया है।

कात्यायन ने 'उन्मत्त, पतित, कुष्ठी, स्वगोत्रोत्पन्न, नपुंसक, नेत्र विहीन, कर्णविहीन तथा

---

१. अ०वे० ८.६.१-५. यौ ते मातोन्ममार्ज जाताया: पतिवेदनौ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥
पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥
मा संवृतो मोप सृप अरू माव सृपोन्तरा।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥
दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥
यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मृगी रोग से पीड़ित' वर कन्या के लिए वर्जनीय बताए।[1] वसिष्ठ ने तो इससे भी आगे बढ़ कर व्यवस्था दी कि 'यदि कुल शील से रहित, नपुंसक, पतित, अपस्मार रोग पीड़ित, विधर्मी, रोगी, प्रच्छन्न वेषधारी अथवा सगोत्र पुरुष से कन्या का विवाह भी कर दिया जाय, तो भी कन्या वापस ले लेनी चाहिए।[2] पराशर ने कहा कि जो व्यक्ति धन प्राप्त करने की कामना से वृद्ध, नीच, कुरूप अथवा अकुलीन पुरुष को कन्या देता है उसकी आत्मा की सद्गति नहीं होती है अपितु वह प्रेत हो जाता है।[3] पराशर की इस परिभाषा में वर की प्रमुख सभी अयोग्यताओं का वर्णन हो जाता है।

वर के नपुंसकत्व को उसकी प्रमुख अयोग्यता माना जाता रहा है। याज्ञवल्क्य और नारद ने तो वर के पुंस्त्व की भली भांति परीक्षा करके कन्या देने का विधान किया था क्योंकि 'नाबीजी क्षेत्रमर्हति,' परन्तु मनु और साथ ही याज्ञवल्क्य ने भी नियोग से उत्पन्न नपुसंक के पुत्रों को भी औरस पुत्रों के समान ही धन का अधिकारी माना है।[4] अत: ये आचार्य नपुंसक के साथ कन्या का विवाह हो जाने पर उसे वापिस लेने के पक्ष में प्रतीत नहीं होते। साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से नपुंसकत्व को वर का अपरिहार्य अवगुण नहीं मान रहे हैं। यदि नपुंसकत्व भी वर की अयोग्यता की एक कसौटी होता तो नपुंसक व्यक्ति की पत्नी के लिए नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न कर सकने का विधान करने की आवश्यकता ही न उठती।

वधू के गुण :

संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विवाह संस्कार के लिए वर का चयन करते समय भी यद्यपि कतिपय विशेषताओं को देखा जाता था तथापि वधू का चयन करने के लिए किन किन गुणों की परीक्षा होनी चाहिए, कन्या में किन लक्षणों का विचार करके स्वीकार करना चाहिए – इस सम्बन्ध में प्राय: सभी सूत्रों, स्मृतियों, काव्यों, नाटकों आदि में लेखकों की अपनी अथवा लोक की रुचि के अनुकूल वर्णन प्राप्त हो जाता है।

---

१. पा०गृ० १.८. पर गदाधर द्वारा उद्धृत कात्यायन
उन्मत्त: पतित. कुष्ठी तथा षण्ठ: स्वगोत्रज:।
चक्षु: श्रोत्रविहीनश्च तथापस्मारदूषित:।।
वरदोषा: स्मृता: ह्येते।

२. वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ७५६ पर उद्धृत वसिष्ठ
कुलशीलविहीनस्य षण्ढादिपतितस्य च।
अपस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वेषधारिणाम्।
दत्तामपि हरेत् कन्यां सगोत्रोढान्तथैव च।।

३. वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ७५६ पर उद्धृत पराशर
कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।
कुरूपायाकुलीनाय स प्रेतो जायते नर:।।

४. म०स्मृ० ९.२०३. यद्यर्थिता तु दारै: स्यात्क्लीबादीनां कथञ्चन।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति।।

या०स्मृ० २.१४१. औरसा: क्षेत्रजास्त्वेषा निर्दोषां भागहारिण:।
सुताश्चैषां प्रभर्तव्या यावद्वै भर्तृसात्कृता:।।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैदिक साहित्य में कन्या के चयन के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता, किन्तु पतिकामा एवं विवाह योग्य कन्याओं का जो वर्णन मिलता है, उसके आधार पर कन्या के गुणों का निर्धारण किया जा सकता है। अथर्ववेद में उत्तम ज्ञान युक्त एवं श्रेष्ठ बुद्धि वाली एक नवयौवना कन्या के लिए ऐश्वर्यवान् पति ढूँढ़ने का वर्णन प्राप्त होता है।[1] अथर्ववेद के विवाह संस्कार सम्बन्धी सूक्त में वधू को आशीर्वाद रूप में जो कुछ कहा जाता है, वह कन्या के विद्या-सम्पन्न होने का प्रमाण है – 'ज्ञान(ब्रह्म) ही आदि, मध्य, अन्त, सर्वत्र विद्यमान है। उस ज्ञान को ही प्राप्त करके (कन्या) निर्बाध कल्याण को प्राप्त होकर पतिगृह में सुशोभित हो।'[2] ऋग्वेद की भी इस विषय में यही स्पष्ट सम्मति है कि सद् व्यवहार एवं शिक्षा से युक्त, विद्वानों द्वारा दिए गए ज्ञान से पूर्ण शिक्षित युवतियाँ ही गर्भ धारण करें।[3]

वेदों में प्राप्त कन्या के इन गुणों में रूप तथा कुल का कोई महत्व नहीं दिखाई देता। प्रतिभाशालिनी तथा नवयुवती कन्या को पतिगृह के सर्वथा उपयुक्त माना गया है। परवर्ती सूत्र साहित्य में कन्या के जिस रूप पर अत्यधिक बल दिया गया उसका एक संकेत शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है। यहाँ यज्ञीय वेदी की तुलना स्त्री से की गई है। इस उद्धरण से कन्या के सौन्दर्य का मानदण्ड निर्धारित किया जा सकता है– 'वे ऐसी स्त्रियों की प्रशंसा करते हैं जो पृथुश्रोणि, विशाल स्तन भाग तथा क्षीण कटि वाली हों।'[4] शतपथ ब्राह्मण के इस उद्धरण से बरबस ही कालिदास के मेघदूत की यक्षपत्नी का स्मरण हो आता है जिसका सौन्दर्य स्त्रीरूप की परिभाषा बन गया।[5]

प्राचीन वैदिक साहित्य के उपरान्त गृह्यसूत्रों तक आते-आते कन्या के चुनाव में विशिष्ट गुण नियम रूप में स्थापित हो गए। यद्यपि गृह्यसूत्रकारों ने एक से ही गुणों का वर्णन नहीं किया तथापि कुछ गुण सभी गृह्यसूत्रों और स्मृतियों में समान रूप से पाए जाते हैं।

कन्या को वर से न्यून आयु का होना चाहिए। वैद्यक की दृष्टि से भी पुरुष की अपेक्षा कन्या को अल्पायु की होना चाहिए क्योंकि स्त्री की शारीरिक क्षमताओं का विकास पुरुष की अपेक्षा शीघ्र एवं कम आयु में ही हो जाता है। गौतम, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, आदि सभी ने यह तो व्यवस्था दी कि कन्या वर से यवीयसी' हो;[6] किन्तु कन्या की आयु वर की अपेक्षा कितनी न्यून हो

---

१. अ०वे० २.३६.१.

२. अ०वे० १४.१.६४. ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्मपूर्वं ब्रह्मन्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज।

३. ऋ०वे० ३.५५.१६.

४. शत०ब्रा० १.२.५.१६. एवमिव हि योषां प्रशंसन्ति
पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तरा सा मध्ये संग्राह्येति।

५. मेघदूत, उत्तर मेघ, १६. तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणानिम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

६. गौ०ध० १.४.१. गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वां यवीयसीम्।
व०ध० ८.१. गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणाऽनुज्ञातः स्नात्वा
असमानार्षामस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत॥
या०स्मृति १.५२. अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस सम्बन्ध में ये सब मौन हैं। केवल कामसूत्र ने यह निर्देश किया कि वर की अपेक्षा कन्या कम से कम तीन वर्ष छोटी हो; इससे अधिक छोटी भी हो सकती है।[1] संस्कृत साहित्य में कन्या की आयु विवाह के समय क्या होती थी और काल क्रम से वह किस प्रकार परिवर्तित होती गई, इसका विस्तृत विवेचन 'विवाह में आयु' नामक अध्याय में किया जा चुका है।

जिस प्रकार वर में पुंस्त्व एक आवश्यक गुण है, उसी प्रकार वधू में स्त्रीत्व अथवा माता बनने की क्षमता का होना बहुत आवश्यक है। याज्ञवल्क्य पर मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश्वर ने स्त्री पद से अभिहित कन्या उसी को बताया जिसके अवन्ध्यात्व आदि का निश्चय परीक्षापूर्वक कर लिया गया हो।[2] कन्या के स्त्रीत्व की परीक्षा कर के उसका विवाह करना कन्या के भी हित में है क्योंकि वन्ध्या स्त्री के पति के लिए स्मृतिकारों ने द्वितीय विवाह का विधान किया है।[3] स्त्री के वन्ध्या होने पर विवाह का पुत्रप्राप्ति रूपी प्रयोजन ही पूर्ण न होता था।

धर्मसूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने कन्या में एक और अभीष्ट गुण बताया है – कन्या अनन्यपूर्विका अथवा अस्पृष्टमैथुना होनी चाहिए अर्थात् विवाह में ऐसी कन्या ग्रहण करे जिसका सम्बन्ध किसी अन्य पुरुष से न हुआ हो। गौतम, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि सभी ने विवाह योग्य कन्या को अनन्यपूर्वा कहा।[4] कन्या का यह गुण यदि हम वैदिक साहित्य के समय से खोजें तो सन्देहास्पद प्रतीत होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का बहुर्चचित मन्त्र सम्भवतः विधवा विवाह की सूचना देता है,[5] जिससे विवाह योग्य कन्या का अनन्यपूर्वा होना स्वतः खंडित हो जाता है। एक और स्थल पर घोषा अश्विनीकुमारों की स्तुति करते हुए उन्हें सम्बोधित करती है – 'विधवा जिस प्रकार देवर (द्वितीय वर) के साथ रहती है, पुरुष स्त्री के साथ रहता है; ऐसे ही तुम दोनों किसके साथ रहे?'[6] यास्क ने निरुक्त में 'देवर' शब्द की व्युत्पत्ति ही द्वितीय वर के अर्थ में की है।[7] अथर्ववेद के एक मन्त्र से भी विधवा विवाह का संकेत मिलता है – 'जब स्त्री एक पति के पश्चात् दूसरे पति को प्राप्त होती है और जब वे दोनों पञ्चौदन अग्नि में डालते हैं तो उनका वियोग नहीं होता। यदि दूसरा पति अग्नि में पञ्चौदन डालता है तो वह अपनी पुर्नर्विवाहिता पत्नी के साथ

---

१. का०सू० ३.१.२. तस्मात्कन्यां·······त्रिवर्षात्प्रभृति न्यूनवयसं
···········तथाविध एव श्रुतवान् शीलयेत्।

२. या०स्मृ० १.५२. पर विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा –
स्त्रियं नपुंसकत्वनिवृत्तये स्त्रीत्वेन परीक्षिताम्।

३. म०स्मृ० ९.८१. वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे।
या०स्मृ० १.७३. सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थध्न्यप्रियंवदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा॥

४. गौ०ध० १४.१.; या०स्मृ० १.५२.; व०ध० ८.१.;

५. ऋ०वे० १०.१८.८. उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥

६. ऋ०वे० १०.४०.२. को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ

७. निरुक्त १.३.१५. विधवेव देवरं देवरः, कस्माद्वितीयो वर उच्यते।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समान लोक में रहता है।'[१] वैदिक साहित्य के इन उद्धरणों से कन्या में अनन्यपूर्विकात्व के गुण की अनिवार्यता सिद्ध नहीं होती।

इसी प्रकार महाभारत में कुन्ती, सत्यवती आदि के आख्यान में उन्हें विवाह से पूर्व ही मातृत्व प्राप्त होता है जिससे कन्या में 'अस्पृष्टमैथुना' का गुण भी अनिवार्य नहीं जाना पड़ता। किन्तु महाभारत के समय में ही युगधर्म के अनुकूल कन्या के कौमार्य पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा था क्योंकि व्यास ने कुन्ती आदि को पुनः कन्या भाव प्राप्त कर लेने वाली लिखा है।[२]

धर्मशास्त्रों के समय तक विवाह योग्य कन्या के कौमार्य पर बहुत अधिक बल दिया जाने लगा। मनु ने 'पुनर्भू' स्त्री के लिए भी अक्षतयोनि होना आवश्यक बताया।[३] जो व्यक्ति कन्या के कौमार्य को नष्ट करे उसके सर्वस्व-हरण और देश-निर्वासन का विधान था।[४] रामायण में ब्रह्मर्षि कुशध्वज की वाङ्मयी कन्या वेदवती ने रावण के स्पर्श मात्र से अपना कौमार्य खण्डित हुआ जान कर चिता प्रज्वलित कर प्राणाहुति दे दी थी।[५] इससे स्पष्ट है कि उस समय तक विवाह से पूर्व कन्या का अनन्यपूर्विका अथवा अक्षतयोनि होना एक आवश्यक गुण माना जाने लगा था। राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के अभुक्त सौन्दर्य के लिए अनेक विशेषण प्रयुक्त किए थे।[६]

कन्या का एक सर्वकाम्य गुण रूप अथवा सौन्दर्य है।[७] दृष्टि का फल ही रूप है। नेत्रों को जो सुख दे, वह प्राणिमात्र को अच्छा लगता है – 'सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।' अतः विवाह में चयन करते समय कन्या में सौन्दर्य या रूप को गुण में सम्मिलित किया जाना आश्चर्यजनक नहीं है। संस्कृत साहित्य के काव्य पक्ष में जितने भी विवाह के प्रसंग प्राप्त होते हैं उन सब में कन्या रूपवती, कमनीय, कान्तिमती, कोमल तथा कान्ता दिखाई देती है। महाभारत

---

१. अ०वे० ९.५.२७-२८. या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दते परम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः॥
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः।
यो जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥

२. महाभारत १५.३०.१६.; १.६३.७८.

३. म०स्मृ० ९.१७६.

४. आप०ध० २.१०.२६.२१. कुमार्यां तु स्वान्यादाय नाश्यः।

५. वा०रा० ७.१७.३०-३४. धर्षितायास्त्वयानार्य न मे जीवितमिष्यते।
....एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलितं जातवेदसम्॥

६. अभि०शा० २.१०. अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥

७. या०स्मृ० १.५२. पर विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा –
कान्तां कमनीयां वोढुर्मनोनयनानन्दकारिणीम्।
आ०गृ० १.४.१०; मा०गृ० १.७.६-७; का०सू० ३.१.२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में द्रौपदी को अपरूप रुपवती बताया गया है।[१] रघुवंश की इन्दुमती ब्रह्मा की रचना का एक सुन्दर उदाहरण थी।[२] रत्नावली की नायिका सागरिका इतनी सुन्दर थी कि सागरिका के अपूर्व मुखचन्द्र की रचना करने के बाद ब्रह्मा अपने कमलासन के सङ्कुचित हो जाने से निश्चय ही दुखी हो गए होंगे।[३] रैवतक पर्वत पर सुन्दरी सुभद्रा के रूप पर ही मुग्ध होकर अर्जुन ने हरण कर के इस से विवाह किया था।[४] सुन्दरी स्त्री की कामना शतपथ ब्राह्मण में भी दिखाई देती है।[५] रूपवती स्त्री दुष्कुल से भी ग्रहण करने योग्य हैं।[६] स्त्रियों का सबसे बड़ा बल रूप ही है।[७] अतः यदि कन्या मनोज्ञ एवं दर्शनीय हो तो वह निश्चय ही विवाह में ग्रहण करने योग्य है।[८]

नेत्र तथा मन को अच्छा लगना ही सौन्दर्य का फल है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ने इसीलिए स्पष्ट कहा कि 'मन व नेत्रों को आकर्षित करने वाली कन्या ही सुख देती है।[९] भारद्वाज गृह्यसूत्र ने भी इस मत को ही प्रस्तुत किया पर साथ ही बुद्धि को भी प्रधानता दी – 'विवाह के प्रसङ्ग में विचार करने योग्य चार बातें है – धन, रूप, बुद्धि एवं कुल अथवा बान्धव। कुछ का कथन है कि जिसमें मन अनुरक्त हो और नेत्र भी आकर्षित हो, ऐसी कन्या को पुण्य लक्ष्ण मान कर ग्रहण करें; उसके ज्ञान और बुद्धि से क्या? किन्तु कुछ अन्यों की मान्यता है कि बुद्धिहीना के साथ उचित रूप में कैसे रहा जा सकता है!'[१०] भारद्वाज के मत से भी यही परिलक्षित होता है कि विवाह करते समय कन्या में सौन्दर्य भी एक विचारणीय गुण है।

यवीयसी, रूपवती, स्त्रीत्व युक्त तथा अनन्यपूर्वा होने के अतिरिक्त कन्या के कुल को भी कुछ सूत्रकारों ने बहुत महत्ता दी।[११] महाभारत में स्थल-स्थल पर निर्देश है कि महाकुल की कन्या

---

१. महाभारत १.१५५.४१-४३.

२. रघुवंश ६.११.

३. रत्नावली २.१०. विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम्।
धाता निजासनम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः।

४. महाभारत १.२११.१४-१६.

५. शत०ब्रा० १.२.५.१६.

६. महाभारत १२.१५९.३० स्त्रीरत्नं दुष्कुलाच्चापि
म०स्मृ० २.२३८.

७. महाभारत १२.३०८.७३ रूपयौवनसौभाग्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम्।

८. महाभारत १३.१०७.१२७. मनोज्ञां दर्शनीयां च तां भवान्वोढुमर्हति।

९. आप०गृ० १.३.२०.
यस्यां मनश्चक्षुषोर्निर्बन्धस्तस्यामृद्धिः।
का०सू० ३.१.१३.

१०. भारद्वाज गृह्यशूत्र १.५.-१६. चत्वारि विवाहकरणानि, वित्तं, रूपं, प्रज्ञा, बान्धवमिति।...............यस्यां मनोऽनुरमते चक्षुश्च प्रतिपद्यते तां विद्यात् पुण्यलक्ष्मीकां किं ज्ञानेन करिष्यतीति। ....अप्रज्ञया हि कथं संवासः।

११. का०सू० ३.१.२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही ग्रहण करनी चाहिए। या तो कन्या महाकुल की हो अथवा सदृश कुल की हो, हीनकुल की या पतिता नहीं होनी चाहिए।[१] मनुस्मृति ने कुल में धन को महत्ता न देते हुए उच्चकुल की कन्या से विवाह करने की व्यवस्था की।[२] किन्तु प्राप्त प्रसंगों के आधार पर कुल को निर्णायक तत्त्व नहीं माना जा सकता। प्रणय पर आधारित गान्धर्व विवाह में कुल का विचार नहीं होता था। शान्तनु ने सत्यवती को धीवर कन्या जान कर भी उससे विवाह करने की इच्छा की थी।[३]

विवाह योग्य कन्या में उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त वधू का नाम कैसा हो तथा उसके वाह्य शारीरिक लक्षण कैसे हों? इस पर भी सूत्रकारों ने विस्तृत विवेचन किया है। मनु ने सामान्य लक्षणों को बताते हुए लिखा है – 'जो कन्या किसी भी अङ्ग से हीन न हो, सुन्दर-सौम्य नाम वाली हो, हंस तथा हाथी के समान गति वाली हो, जिसके रोम केश एवं दाँत सूक्ष्म हों और शरीर के अंग मृदु हों, ऐसी स्त्री से विवाह करना चाहिए।'[४] इन के अतिरिक्त भी अन्य लक्षण बताए गए हैं – जिनके छह उन्नत होने योग्य भाग उन्नत हों, पांच सूक्ष्म होने योग्य अंग सूक्ष्म हो, गम्भीर होने योग्य तीन अंग गम्भीर हों और पांच अंगों में रक्तवर्ण हो[५] – ऐसी कन्या से विवाह कर लेना चाहिए।

वाल्मीकि रामायण के युद्ध काण्ड में स्त्री के वाह्य लक्षणों का बड़ा सुन्दर और विस्तृत वर्णन है। इन्द्रजित् ने जब नागपाश में राम और लक्ष्मण को बाँध कर अचेत एवं निस्तेज कर दिया, तब रावण की आज्ञा से राक्षसियां सीता को पुष्पक विमान में बैठाकर उस स्थल पर ले गईं। उस अवस्था में पड़े हुए पति और देवर को देखकर उनकी मृत्यु की आशङ्का से सीता ने विलाप करते हुए अपने समस्त शुभ लक्षणों को व्यर्थ बताया।

'केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंहते मम।
वृत्ते चारोमके जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम॥
शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू समौ चितौ।
अनुवृत्तनखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम॥
स्तनौ चाविरलौ पीनौ मामकौ भग्नचूचुकौ।
मग्ना चोत्सेधनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम्॥
मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम्॥

---

१. महाभारत १३.१०७.११६. महाकुले प्रसूतां च।
१३.१०७.१२८. महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे वा युधिष्ठिर।
अवरा पतिता चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता॥

२. म०स्मृ० ३.६-७

३. महाभारत १.९४.४५-४६.

४. म०स्मृ० ३.१०. अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम्॥

५. महाभारत ५.११४.२. उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मासूक्ष्मेसु पञ्चसु।
गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु॥
१३.१०७.१२७ लक्षणैरन्विता या च प्रशस्ता या च लक्षणैः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत् ।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्या लाक्षणिका विदुः ।।"[१]

स्त्री में विवाह से पूर्व इन लक्षणों को देखने का अभिप्राय यह है कि सामुद्रिक के अनुसार इन लक्षणों से युक्त कन्या विधवा नहीं होती, पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न होती है और कुटुम्ब को सुख देती है। दण्डी ने दशकुमारचरित में भी कन्या के प्रायः इन्हीं लक्षणों को शुभ बताया है।[२] शातातप ने वधू के गुणों का वर्णन करते हुए कहा – 'हंस के समान मधुर वाणी वाली, मेघ के तुल्य वर्ण वाली तथा मधुर और विशालनेत्री स्त्री के साथ विवाह करके गृहस्थ सुख पाता है।'[३]

कन्या के विभिन्न गुणों की दृष्टि से कामसूत्र में दी गई व्यवस्था सर्वोतम जान पड़ती है क्यों कि वह अब तक विवेचित समस्त गुणों को अपने में समाहित किए हुए है – 'कुलीन, माता पिता से युक्त, तीन वर्ष से लेकर कम आयु वाली, श्लाघनीय आचार, धन, सम्बन्धिजन से युक्त कुल में उत्पन्न होने वाली, रूपशील तथा लक्षणों से सम्पन्न, न अधिक, न न्यून, न नष्ट हुए दांत, नख, कान, केश, नेत्र, स्तनों वाली तथा रोगहीन स्वभाव वाली को ऐसा ही वर वरण करे।'[४]

आश्वलायन गृह्यसूत्र में कन्या के लक्षणों को जानने के लिए एक विचित्र व्यवस्था मिलती है जो अन्धविश्वास के अतिरिक्त और कुछ प्रतीत नहीं होती। गोभिल गृह्यसूत्र में भी यह व्यवस्था प्राप्त होती है। आठ विभिन्न स्थानों से आठ मिट्टी के पिण्ड लाकर, उनको ऋत एवं सत्य से अभिमन्त्रित करके कन्या से कहे कि वह उनमें से कोई भी पिण्ड उठा ले। कन्या जिस स्थान के पिण्ड को उठाती थी उसी के अनुसार उसका भविष्य है। यथा, यदि कन्या गोष्ठ से लाये पिण्ड को उठाए तो वह प्रजायुक्त होगी। यदि चौराहे से लाए पिण्ड को उठाए तो अपने कुल को त्याग कर जाने वाली होगी – आदि।'[५] किन्तु आश्वलायन एवं गोभिल गृह्यसूत्रों में प्राप्त कन्या के लक्षणों की यह परीक्षा स्मृतियों अथवा धर्मसूत्रों में प्राप्त न होने से यह प्रतीत होता है कि इसका प्रचलन तब भी अधिक नहीं था और शीघ्र ही यह लुप्त भी हो गई।

वधू के इन गुणों के इस विवेचन से यह ज्ञात होता है कि यद्यपि वधू में सभी आदर्श गुणों

---

१. वा०रा० ६.४८.९-१३

२. दण्डी - दशकुमार चरित

३. वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ७३१ पर उद्धृत शातातप

४. का०सू० ३.१.२. तस्मात्कन्यां अभिजनोपेतां मातापितृमतीं
त्रिवर्षात्प्रभृति न्यूनवयसं श्लाघ्याचारे धनवति पक्षवति कुले
सम्बन्धिप्रिये सम्बन्धिभिराकुले प्रसूतां प्रभूत मातृपितृपक्षां
रूपशीललक्षणसम्पन्नामन्यूनाधिकनष्टदन्तनखकर्णकेशाक्षि–
स्तनीमरोगिप्रकृतिशरीरां तथाविध एवं श्रुतवान् शीलयेत् ।

५. आ०गृ० १.४.११-२०. दुर्ज्ञेयानि लक्षणानि । अष्टौ पिण्डान्
कृत्वा·····························श्मशानात् पतिघ्नी ।।
गो०गृ० २.३.
पा०गृ० १.८. पर गदाधर भाष्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की अपेक्षा की जाती थी, तथापि व्यवहार में यह सम्भव नहीं था। फिर भी सौन्दर्य, वर से न्यून आयु तथा कौमार्य – ये तीन गुण सामान्य रूप में सूत्र काल से लेकर परवर्ती संस्कृत साहित्य तक कन्या में होने आवश्यक से माने गए थे।

वधू के अवगुण :

जिस प्रकार सूत्रों, स्मृतियों, महाभारत एवं अन्य काव्यों में विवाह योग्य कन्या के गुणों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है उसी प्रकार कन्या के अवगुणों का भी विस्तृत विवेचन मिलता है। शारीरिक, मानसिक, अथवा अन्य किसी भी प्रकार की विकृति रखने वाली कन्या से विवाह का निषेध किया गया।

अथर्ववेद के एक मंत्र में कन्या के अवगुणों का कुछ वर्णन प्राप्त होता है, यद्यपि वह वर्णन परवर्ती काल के सूत्र साहित्य में वर्णित अवगुणों के वर्णन से नितान्त भिन्न है। विवाह की इच्छा करने वाला युवक निश्चय करता है—'हरिण के समान पैरों वाली, बैल के समान दांतों वाली, गाय की सी चाल वाली, क्रोध में फुङ्कार भरने वाली, विकृत स्वर में शब्द करने वाली, खाना चाटने की आदत वाली और अधिक सुन्दर बनने की कुप्रवृत्ति वाली कन्याओं को हम अपने से पृथक् करते हैं।'[1] इस मंत्र में कथित बातों को कन्या के दुर्गुणों के रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है – हरिण चञ्चल प्रकृति का होता है, स्वयं पर आपत्ति की आशङ्का मात्र होने से वह चौकड़ी भर कर दूर भाग जाता है। अतः हरिण के समान पैरों वाली कन्या विपत्ति में पति का साथ नहीं देगी। बैल बहुत अधिक खाता है एवं गाय बहुत मन्द गति से चलती है। कन्या यदि इतनी अधिक खाने वाली एवं आलस्य युक्त हो तो गृहकार्यों के लिए अनुपयुक्त है। अपने को अधिक सुन्दर बनाने की कुप्रवृति का परिणाम अधिक व्यय एवं सौन्दर्य प्रदर्शन होता है। अतः ऐसी कन्या का विवाह में परिहार करना चाहिए।

वेदों में कन्या के इन दुर्गुणों के अतिरिक्त केवल एक और ऐसा दुर्गुण पाया जाता है जिसके कारण कन्या विवाह योग्य नहीं मानी जाती थी। घोषा नामक राजकुमारी रोग विशेष से पीड़ित होकर अपंग हो गई थी, अतः वह अविवाहित ही बहुत बड़ी आयु तक पहुँच गई। तब उसने अश्विनीकुमारों की प्रार्थना की। उनके अनुग्रह से घोषा का रोग दूर हुआ और वह पति पुत्रवती बनी।[2] इस उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि वेदों के समय में भी कन्या का रोगयुक्त होना अथवा अंग विकृति होना विवाह के लिए अवगुण था और कन्या को अयोग्य बना देता था।

परवर्ती सूत्र काल एवं काव्य काल में भी कन्या की शारीरिक विकृति विवाह के लिए अयोग्यता बनी रही। कामसूत्र ने न केवल रोगहीन कन्या के साथ विवाह का विधान किया अपितु उसने यह कहा कि जिसके शरीर की प्रकृति ही अरोगी हो ऐसी कन्या से पुरुष विवाह करे।[3]

---

१. अ०वे० १.१८.४ रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत ।
विलीढ्यं ललाम्यं ता अस्मन्नाशयामसि ॥

२. ऋ०वे० १.११७.७; १०.३९.३-५.;
वृहद्देवता ७.४२-४८.

३. का०सू० ३.१.२. अरोगिप्रकृतिशरीरां ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विष्णु स्मृति ने 'व्याधिता' कन्या के साथ विवाह का निषेध किया।[१] याज्ञवल्क्य स्मृति की व्याख्या करते हुए विज्ञानेश्वर ने लिखा कि विवाह में ऐसी रोगी कन्या अयोग्य है जिसकी व्याधि की चिकित्सा ही न हो सकती हो।[२] मनु ने भी रोगिणी कन्या से विवाह करने का निषेध किया 'कपिल वर्ण वाली, अधिक या कम अंगों वाली, रोगिणी, लोमरहित या अधिक लोम वाली, बहुत अधिक बोलने वाली तथा पिंगलवर्ण नेत्रों वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए।'[३]

स्मृतिकारों में केवल मनु ने ही कन्या के इतने शारीरिक अवगुणों को गिनाया है, जब कि और सूत्रकारों तथा स्मृतिकारों ने केवल 'रोगिणी' अथवा 'व्याधिता' कह कर ही कन्या को अयोग्य ठहरा दिया।

महाभारत में भी बड़े विस्तृत रूप में कन्या के शारीरिक अवगुणों का वर्णन प्राप्त होता है। अंगहीना अथवा विकृतांगी कन्या का विवाह में वर्जन करना चाहिए, उसी प्रकार वृद्धा अथवा प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए।'[४] महाभारत के द्वारा प्रस्तुत इस निषेध का तात्पर्य यह है कि वृद्धा स्त्री सन्तानोत्पत्ति में सक्षम नहीं होती अथवा यदि वृद्धा स्त्री से सन्तानोत्पत्ति हो भी, तो वह दुर्बल होगी; अतः वृद्धा से विवाह नहीं करना चाहिए। प्रव्रज्या ग्रहण कर लेने वाली स्त्री से विवाह करना अधर्म्य है क्योंकि समुच्चयवाद के अनुसार आश्रमों का क्रमपूर्वक ही अनुसरण करना चाहिए।

महाभारत ने पाण्डुरोग ग्रसित, कुष्ठरोगिणी, श्वेतकुष्ठ से युक्त कुल में उत्पन्न होने वाली अथवा क्षयरोग ग्रसित कुल में उत्पन्न होने वाली कन्या को विवाह के लिए अयोग्य ठहराया है।[५] कुष्ठ सङ्क्रामक रोग है, अतः कुष्ठरोगिणी से विवाह करना इस रोग को निमन्त्रण देना है। जिस कुल में किसी व्यक्ति को क्षयरोग अथवा श्वेतकुष्ठ हो, उस कुल में उत्पन्न कन्या में ये दोनों रोग न पाए जाने पर भी यह सम्भव है कि अप्रत्यक्ष रूप में वह कन्या इन रोगों को धारण करती हो। ऐसी वधू प्रजा की दृष्टि से हानिकारक है क्यों कि रोग धारण (वहन) करने वाली स्त्री की संतति में ये रोग सक्रमित हो जाते हैं।

महाभारत में एक और श्लोक प्राप्त होता है जिसमें 'अयोनि अथवा वियोनि कन्या' को विवाह के अयोग्य बताया गया है।[६] इस निषेध के दो विभिन्न अर्थ ग्रहण किए जा सकते हैं।

---

१. वि०ध० २४.१२.

२. या०स्मृ० १.५३. पर विज्ञानेश्वर
अरोगिणीं अचिकित्सनीयव्याध्यनुपसृष्टाम्।

३. म०स्मृ० ३.८. नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम्॥

४. महाभारत १३.१०७.१२३. वर्जयेद् व्यंगिनीं नारीं तथा कन्यां नरोत्तम।
समार्षां व्यंगितां चैव मातुः स्वकुलजां तथा।
१३.१०७.१२४. वृद्धां प्रव्रजितां चैव।

५. महाभारत १३.१०७.१२५. पिंगलां कुष्ठिनीं नारीं न त्वमुद्वोढुमर्हसि।
१३.१०७.१२६. श्वित्रिणां च कुले जातां क्षयिणां मनुजेश्वर।
म०स्मृ० ३.७.

६. महाभारत १३.१०७.१२५. अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत विचक्षणः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऐसी कन्या जिसके योनि हो ही नहीं (अयोनि), या जिसकी योनि का स्वरूप विकृत हो (वियोनी)- उस कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि जिस कन्या का जन्म अज्ञात हो (अयोनि), या जिसका जन्म नीच योनि से हुआ हो (वियोनि) – ऐसी कन्या विवाह के लिए अयोग्य है। इन दोनों अर्थों में दूसरा अर्थ अधिक प्रमाणयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि प्रथम अर्थ के अनुकूल कन्या की योनि को परीक्षा करना सम्भव नहीं। अतः महाभारत के अनुसार ऐसी कन्या से विवाह कदापि नहीं करना चाहिए जिसके जन्म के सम्बन्ध में पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात न हो अथवा जिसका जन्म नीच स्वभाव की व्यभिचारिणी माता से हुआ हो। विष्णु पुराण ने भी ऐसा ही मन्तव्य प्रगट किया है।[1]

कन्या का एक मुख्य दोष उसका रूक्ष अथवा अशुभ नाम भी माना गया है। कामसूत्र ने 'अप्रशस्त नाम' वाली कन्या से विवाह करने का निषेध किया है।[2] मनु ने तथा कामसूत्र ने स्पष्ट व्यवस्था दी है – 'नक्षत्र, नदी, वृक्ष, पर्वत, तथा निन्दित नामों वाली कन्याओं का वरण में वर्जन करना चाहिए।'[3] इन निषेधों के मूल में यह कारण प्रतीत होता है कि उक्त प्रकार के नाम मूलतः असंस्कृत, असभ्य तथा वन्य जातियों में प्रचलित थे, जिनके रहन सहन के प्रकार तथा सम्पर्क दोनों से ही सभ्य लोग दूर रहना चाहते थे।[4] किन्तु परस्पर सम्पर्क और सङ्कर होते रहने के कारण ऐसे नाम भी क्रमशः परिष्कृत माने जाने लगे। कामसूत्र और आपस्तम्ब ने ऐसी कन्या को भी विवाह में ग्रहण न करने के लिए आदेश दिया जिसने नाम के अन्त में लकार अथवा रेफ हो।[5] सम्भवतः उच्चारण में प्रतीत होने वाली कठिनाई के कारण यह निषेध किया गया हो।[6] यम ने ऐसी कन्या से भी विवाह का निषेध किया है जिसका नाम वेद अथवा गन्धर्व पर हो।[7] इस निषेध का सामान्य कारण यह हो सकता है कि वेद अत्यन्त पवित्र और ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण लौकिक प्रयोजनों से परे समझे जाते थे; उन का नाम-रूप में हर समय हर एक के द्वारा उच्चारण उचित नहीं। इसी प्रकार गन्धर्वों को सदैव से स्त्रीकाम अथवा कामुक प्रवृति का कहा गया है,[8] अतः कन्या के नाम के रूप में गन्धर्व का स्त्री के साथ रहना अवाञ्छनीय है।[9]

---

१. वि०पु० ३.१०.१८-२२.

२. का०सू० ३.१.११ अप्रशस्तनामधेयां च।

३. म०स्मृ० ३.९. नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥
का०सू० ३.१.१२. नक्षत्राख्यां नदीनाम्नीं वृक्षनाम्नीं च गर्हिताम्।

४. पांडेय, राजबली – हिन्दू संस्कार – पृष्ठ २४६.

५. का०सू० ३.१.१२. लकाररेफोपान्तां च वरणे परिवर्जयेत्।
वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ७३२ पर उद्धृत आपस्तम्ब सर्वाश्च रेफलकारान्तवर्णाः विवर्जयेत्

६. पाण्डेय, राजबली – हिन्दू संस्कार – पृष्ठ २४७.

७. वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ७३२ पर उद्धृत यम
वेदनाम्नीं नदीनाम्नीं शैलगन्धर्वनामिकाम्।
ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं दारार्थे परिवर्जयेत्॥

८. तै०सं० ६.१.६.५. स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः।

९. पाण्डेय, राजबली – हिन्दू संस्कार – पृष्ठ २४६.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शारीरिक विकृति एवं अशुभ अथवा उच्चारण के अयोग्य नाम के अतिरिक्त विवाह योग्य कन्या का एक और सर्वसम्मत अवगुण उसका भ्रातृहीना होना है। यदि किसी कन्या के भाई न हो तो उससे विवाह का निषेध किया गया है। भ्रातृहीना कन्या से विवाह न करने का यह निषेध ऋग्वेद काल से ही प्राप्त होता है। इस निषेध के कई कारण होने पर भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण सन्ततिसम्बन्धी है। प्राचीन काल से ही यह व्यवस्था प्राप्त होती है कि पुत्रहीन व्यक्ति अपनी पुत्री को पुत्र मानता था और विवाह के अवसर पर वर से यह समय बन्धन हो जाता था कि मेरी पुत्री से उत्पन्न पुत्र मेरे पुत्र के समान होगा और पुत्रवत् पिण्डदान आदि करेगा। ऐसी कन्या पुत्रिका कहलाती थी। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में उषा सम्बन्धी एक मन्त्र है – 'जिस प्रकार भ्रातृहीना स्त्री अपने पुरुष सम्बन्धी (पितृकुल) के यहाँ लौट आती है उसी प्रकार उषा अपने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती हुई पश्चिम दिशा को आ जाती है।'[१] अथर्ववेद में भी एक मन्त्र प्राप्त होता है – 'भ्रातृहीना स्त्रियों के समान उन्हें गौरवहीन होकर बैठे रहना चाहिए।'[२] निरुक्त ने इन दोनों वैदिक उक्तियों की व्याख्या पुत्रिका धर्म के रूप में ही की है।[३] पुत्रिका धर्मिणी कन्या से विवाह करके विवाह का प्रजारूप प्रयोजन सम्पूर्ण नहीं होता क्योंकि भ्रातृहीना कन्या का पुत्र अपने नाना को पिण्डदान करने के कारण न तो अपने पिता को पिण्डदान करता है और न ही अपने वंश को चलाने वाला होता है। भ्रातृहीना कन्या को अपनी वधू बना लेना वस्तुतः उसे प्राप्त न करना ही है। महाभारत के कुछ स्थलों पर भी भ्रातृहीना कन्या से विवाह का इसीलिए निषेध किया गया है।[४] ब्राह्मण वर्ण में जो पुत्रिकापुत्र है उनको श्राद्ध में बुलाने का निषेध किया गया है क्योंकि वे पितृगोत्र से भ्रष्ट होकर मातृगोत्रोपजीवी होते हैं, अतएव निन्द्य हैं।[५] याज्ञवल्क्य ने भी भ्रातृमती कन्या से ही विवाह का आदेश दिया है।[६] इसकी व्याख्या करते हुए मिताक्षरा लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि अभ्रातृमती कन्या पुत्रिका हो सकती है अतः उसका निवारण करना चाहिए।[७] महाभारत ने यद्यपि भ्रातृहीना कन्या से विवाह का निषेध किया है तथापि उसी के अनेक प्रसिद्ध भ्रातृहीना नारियों के विवाह बड़ी धूमधाम से चित्रित किए गए हैं। कुन्ती, सीता, शकुन्तला— ये सभी भ्रातृहीना कन्याएँ थी। अतः यह अधिक समीचीन जान पड़ता है कि यदि

---

१. ऋ०वे० १.१२४.७. अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।

२. अ०वे० १.१७.१. अभ्रातरः इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः।

३. निरुक्त ३.४.५.

४. महाभारत १३.४४.१४. यस्यास्तु न भवेद् भ्राता पिता वा भरतर्षभ।
नोपयच्छेत तां जातु पुत्रिकाधर्मिणी हि सा॥

५. महाभारत १३.२४.२१. पुत्रिकापूर्वपुत्राश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम्।
–पुत्रिकापूर्वपुत्राः अस्यामुत्पन्नः पुत्रः मदीय इति नियमेन
या दीयते तस्यां च यो जातः स पुत्रिकापूर्वपुत्रः।
स पितृगोत्राद्भ्रष्टो मातृगोत्रोपजीवित्वान्निन्द्यः
–इति नीलकण्ठः।

६. या०स्मृ० १.५३.

७. या०स्मृ० १.५३. पर मिताक्षरा – भ्रातृमतीं पुत्रिकाकरणशंकानिवृतये।
अनेनापरिभाषितापि पुत्रिका भवतीति गम्यते॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भ्रातृहीना कन्या का पिता अपने दौहित्र से पिण्डदान कराने का इच्छुक हो, तो उस भ्रातृहीना कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए, अन्यथा विवाह कर लेने में कोई हानि नहीं है। अर्जुन ने चित्रांगदा को पुत्रिका जानते हुए भी विवाह इसलिए कर लिया कि चित्रांगदा उसकी एक मात्र पत्नी नहीं थी।[1] अर्जुन पुत्रोत्पत्ति एवं धर्मपालन-रूप प्रयोजन अपनी दूसरी पत्नियों से पूर्ण कर सकता था। मनु ने विधान किया – 'पुत्रहीन पिता कन्यादान करते समय जामाता से यह कहे – इस कन्या से उत्पन्न पुत्र मेरी श्राद्धादि पारलौकिक क्रिया को करने वाला होगा – इस प्रकार कह कर उस पुत्री को पुत्रिका कर ले। अपने वंश की वृद्धि के लिए पुरातन काल में दक्ष प्रजापति ने भी इसी विधि से पुत्रिका की थी।'[2] इसी स्वकृत विधान के कारण ही मनु ने कन्या के सम्बन्ध में यह विधान किया कि 'जिस कन्या का कोई भाई न हो अथवा जो माता-पिता को न जानती हो, ऐसी कन्या के साथ विद्वान् पुरुष को पुत्रिका धर्म की आशंका से विवाह नहीं करना चाहिए।'[3]

पुत्रिका-धर्म की आशंका के अतिरिक्त भ्रातृहीना कन्या से विवाह न करने के नियम के पीछे एक और कारण यह था कि भाई के संरक्षण के अभाव में कन्या के चरित्र का भ्रंश हो सकता है। ऋग्वेद में अपंग घोषा अश्विनीकुमारों की स्तुति करती हुई कहती है— 'मुझ ज्ञान रहित का कोई भाई भी नहीं है, अतः यदि मुझे कोई क्लेश प्राप्त हो तो उसे तुम पहले ही दूर कर दो।'[4] महाभारत के बकवध पर्व के अन्तर्गत ब्राह्मण कन्या ने स्वयं को राक्षस के भोजन रूप में भेजने का प्रस्ताव करते समय यही तर्क दिया था कि – भाई के न रहने पर मुझे जिन विभिन्न दुखदायी परिस्थितियों में रहना होगा, उनसे मेरी रक्षा करने के लिए अभी ही राक्षस के सम्मुख भेज देना श्रेयस्कर है।'[5] ऋग्वेद में ऐसी स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन है जो भ्रातृहीना हैं।[6]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि भ्रातृहीना कन्या से विवाह का निषेध इसीलिए किया गया था कि एक तो उससे विवाह का सन्तानोत्पत्ति रूप प्रयोजन ही पूर्ण नहीं होता; दूसरे कन्या की विषम परिस्थिति में न तो विवाह पूर्व और न ही विवाहोपरान्त कोई संरक्षण देने वाला होता है। भ्रातृहीना कन्या को गौरवहीन कहने का भी कारण यही रहा होगा।[7]

---

१. महाभारत १.२१४.२४-२५.

२. म०स्मृ० ९.१२७. अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्॥
अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिका।
विवृद्धचर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः॥

३. म०स्मृ० ३.११. यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया॥

४. ऋ०वे० १०.३९.६. इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम्।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम्॥

५. महाभारत १.१४७.९

६. ऋ०वे० ४.५.५. अभ्रातरो न योषणो व्यंतः।

७. अ०वे० १.१७.१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह सम्बन्ध में कन्या तथा वर के गुणों और अवगुणों को सूक्ष्मतया देखने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत साहित्यकारों ने गुणों तथा अवगुणों को शारीरिक, धार्मिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों की दृष्टि से वर्णित किया है।

वर अथवा वधू का सौन्दर्य अथवा कुरूपता, पुष्टांग, स्वस्थ अथवा रोगी होना शारीरिक क्षेत्र में आता है। वर में पुंस्त्व होना तथा स्त्री में स्त्रीत्व तथा पुत्र जन्म देने की क्षमता होना आदि धार्मिक क्षेत्र के गुण हैं क्योंकि पुत्रोत्पत्ति से वंश प्रतिष्ठित होता है और श्राद्ध, तर्पण आदि कार्य भी पुत्र से ही सिद्ध होते हैं। सामाजिक गौरव की दृष्टि से वर एवं कन्या के कुल, आचार-विचार, सम्बन्धिजन एवं सम्पत्ति का विचार किया जाता था। कन्या के कौमार्य एवं वर के ब्रह्मचारी होने पर बल देने का कारण मनोवैज्ञानिक है। हर व्यक्ति अपनी वस्तु को अभुक्त रूप में ही प्राप्त करके प्रसन्न होता है।

वर कन्या चयन के सम्बन्ध में कितने ही गुणावगुण विभिन्न समय में प्रस्तुत किए गए हों – महाभारत ने जो व्याख्या प्रस्तुत की, वह सार्वकालिक है – 'जिनका धन और जिनकी विद्या एक सी हैं उन्हीं में विवाह सम्बन्ध हो सकता है। जो अपने से समान में विवाह करता है उसकी नीति श्रेष्ठ है।'[1]

---

१. महाभारत १.१२२.८. ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम्।
तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥
५.३३.९८. समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः............
............तस्य नयाः सुनीताः ॥
का०सू० ३.१.२०.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सप्तम अध्याय

विवाह विधि

ऋग्वेद में विवाह विधि
अथर्ववेद में विवाह विधि
गृह्यसूत्रों मे विवाह विधि
विस्तार एवं विभिन्नता के कारण
गृह्यसूत्रों में विवाह विधि का स्वरूप एवं विभिन्न कृत्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह विधि

विवाह संस्कार के समग्र स्वरूप में वैवाहिक कृत्यों अथवा विवाह विधि का अपना एक विशिष्ट स्थान है। संस्कृत साहित्य के वैदिक पक्ष में एवं गृह्यसूत्रों में विवाह विधि के सम्बन्ध में क्रमबद्ध एवं विस्तृत विधान प्राप्त होते हैं। संस्कृत के काव्यों, नाटकों में यद्यपि गृह्यसूत्रों का सा क्रम एवं सारे ही कृत्य प्राप्त नहीं होते तथापि वरयात्रा, पाणिग्रहण, लाजा होम आदि कृत्यों का बहुत सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। कन्या एवं वर के चयन के पश्चात् ये वैवाहिक कृत्य प्रारम्भ होते हैं, और वर के घर में वधू का स्वागत सत्कार होकर चतुर्थी कर्म पर्यन्त समाप्त होते हैं।

संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक ग्रन्थों ऋग्वेद आदि में विवाह की बहुत सरल एवं संक्षिप्त विधि प्राप्त होती है किन्तु परवर्ती काल में गृह्यसूत्रों में ये कृत्य विस्तृत होने के साथ साथ जटिल हो गए। विवाह विधि के जटिल होते जाने के पीछे एक महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय तथ्य था। वस्तुत: विवाह स्त्री पुरुष के जीवन का तो महत्त्वपूर्ण संस्कार था ही – साथ ही यह समाज के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण अवसर था। अतः विवाह की सरल विधि में अनेक विधिविधान, प्रथाएँ और रीतियाँ जुड़ती गईं। कालक्रम में जैसे जैसे समाज जटिल होता गया, वैसे ही वैसे विवाह की विधि में भी कर्मकाण्ड बढ़ता गया। बलपूर्वक कन्या को उठा ले जाने अथवा शीलभंग की स्थितियों को छोड़ दें, तो सामान्यतया विवाह हर्ष और आमोद का अवसर था। हर्ष और उल्लास को मानव अथवा पशु पक्षी भी गाकर नाच-कर अभिव्यक्त करते हैं, अतः वैवाहिक कृत्यों में संगीत-नृत्य-भोज आदि विभिन्न आमोद प्रमोद भी सम्मिलित हो गए।

गृह्यसूत्रों एवं धर्मसूत्रों में वर्णित विवाह विधि में प्रयुक्त मंत्र ऋग्वेद एवं अथर्ववेद से ही ग्रहण किए गए हैं, अतः यही अधिक समीचीन है कि पहले ऋग्वेद में प्राप्त विवाह विधि के विभिन्न कृत्यों का अध्ययन कर लिया जाए।

ऋग्वेद में विवाह विधि :

ऋग्वेद के दशम मण्डल के पचासीवें सूक्त में सवितृपुत्री सूर्या और सोम के विवाह का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस सूक्त के कुछ मंत्र वर्णनात्मक हैं तथा कुछ मंत्र ऐसे हैं जो विवाह विधि के भिन्न-भिन्न कृत्यों के समय आशीर्वाद रूप में प्रयोग किए जाते थे। कुछ मंत्र वशीकरण-विषयक भी हैं। इस सूक्त में यद्यपि विवाह विधि का क्रमबद्ध स्वरूप नहीं प्राप्त होता, किंतु यदि सूक्त के मंत्रों का क्रम थोड़ा सा परिवर्तित कर दिया जाए तो सम्पूर्ण विवाह विधि का एक क्रमबद्ध चित्र उपस्थित हो जाता है।

इस सूक्त में सर्वप्रथम दोनों अश्विन् सोम के लिए सवितृ-पुत्री को मांगने जाते हैं और

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सविता अपनी पुत्री देना स्वीकार कर लेते हैं।[1] यह मंत्र परवर्ती सूत्रकाल के 'वरप्रेक्षण' और 'वाग्दान' के अनुरूप ही है। यद्यपि इस मंत्र में अश्विनीकुमारों के लिए 'वर' शब्द का प्रयोग किया गया है, तथापि यहाँ 'वर' का अर्थ पति न होकर ऐसे व्यक्ति से है जो अन्य किसी की ओर से विवाह की याचना करने गया हो।

जब दोनों अश्विन् वर सोम के लिए सूर्या की याचना करने जाते हैं तो वर उनकी यात्रा की सफलता के लिए देवताओं की स्तुति करता है।[2] कन्या के घर पर सारे ही देवता इस विवाह से सहमति प्रदान करते हैं।[3] इस मंत्र से यह भी ज्ञात होता है कि विवाह के विषय में वार्ता होने पर बंधुजनों एवं मित्रों की सहमति भी ली जाती थी।

ऋग्वेद में प्राप्त विवरण से यह स्पष्ट नहीं होता कि विवाह की मुख्य विधि – पाणिग्रहण– कहाँ सम्पन्न होती थी ? पतिगृह की ओर सूर्या की यात्रा का प्रसंग तो है, परन्तु यह यात्रा विवाह से पूर्व ही है अथवा विवाह के पश्चात् – यह निर्णय करना कठिन है। डॉ० काणे ने भी अपनी पुस्तक में केवल इतना ही लिखा है, '..............सविता लड़की देने को तैयार हो गए, वर का सम्मान किया गया, उसे भेंटें दी गईं, गायें संहत की गईं (या दी गईं), सोम ने सूर्या का पाणि-ग्रहण किया और यह मन्त्र कहा...............।'[4] डॉ० काणे के इस विवरण से इतना तो ध्वनित होता है कि उनके अनुसार पाणिग्रहण विधि कन्या के घर में ही सम्पन्न होती थी, परन्तु इस निष्कर्ष के लिए ऋग्वेद का कोई मन्त्र प्रमाणरूप में प्राप्त नहीं होता।

ऋग्वेद में पाणिग्रहण का विवाह विधि के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में वर्णन है। कन्या का हाथ अपने हाथ में लेता हुआ वर इस मन्त्र का उच्चारण करता है— 'मैं सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ ग्रहण करता हूँ। तुम मुझ पति के साथ-साथ वृद्धावस्था प्राप्त करो। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि देवों ने मेरे लिए तुम्हें दिया है जिससे गार्हस्थ्य चल सके।'[5]

ऋग्वेद में यद्यपि कहीं भी यह सुव्यक्त नहीं है कि विवाह विधि अग्नि के सामने सम्पन्न होती थी अथवा वर वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते थे, किन्तु दो मन्त्र ऐसे हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि विवाह विधि सम्पन्न होते समय अग्नि सम्मुख अवश्य रखी जाती थी।[6]

---

१. ऋ०वे० १०.८५.९. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्॥

२. ऋ०वे० १०.८५.२३. अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यंति नो वरेयम्
समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः।

३. ऋ०वे० १०.८५.१४. यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पूषा॥

४. काणे, पा०वा० — धर्मशास्त्र का इतिहास – प्रथम भाग, पृष्ठ ३०१.

५. ऋ०वे० १०.८५.३६. गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

६. ऋ०वे० १०.८५.३८. तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥
ऋ०वे० १०.८५.३९.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद की विवाह विधि में सम्प्रदान अथवा कन्यादान का कहीं संकेतमात्र भी नहीं है। वस्तुत: ऋग्वेद में कन्या का संरक्षक पिता नहीं, वरन् क्रमश: सोम, गन्धर्व एवं अग्नि – ये तीन देव माने गए हैं। इनमें सोम पिता के, गन्धर्व माता के एवं अग्नि भाई के प्रतीक भी रहे हो सकते हैं, परन्तु ऐसा मानने का कल्पना के अतिरिक्त और कोई आधार नहीं है। ऋग्वेद में कन्या पर इन्हीं तीन देवों का अधिकार माना गया और वर इन देवों से ही कन्या को उपहार रूप में प्राप्त किया करता था। पिता को कन्या देने का अधिकार ही नहीं था। इसी कारण ऋग्वेद में पिता द्वारा कन्यादान का कहीं भी वर्णन नहीं है।

ऋग्वेद में ऐसे भी मन्त्र प्राप्त होते हैं जिनमें कन्या को वरुण के उन पाशों से मुक्त किया जाता है जिनसे पिता ने अपनी कन्या को बाँधा था।[१] पिता द्वारा बाँधे गए वरुण पाश से कन्या को मुक्त करके पुरोहित कन्या को पति के साथ प्रतिष्ठित करता था।

इस प्रकार पाणिग्रहण आदि हो जाने पर वधू को एक अलंकृत, स्वर्णप्रभ रथ पर बैठा कर पति के घर की ओर ले जाया जाता था।[२] जब वर वधू यात्रा प्रारम्भ करते थे तो उनकी यात्रा की सफलता और विघ्न शान्ति के लिए प्रार्थना की जाती थी।[३]

पतिगृह में वधू का हार्दिक स्वागत किया जाता था। वधू का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि उसे सास, ससुर और ननद आदि सबकी साम्राज्ञी होने का आशीर्वाद दिया जाता था।[४] वर एवं वधू स्वयं भी जीवन पर्यन्त साथ साथ रहने की प्रार्थना करते थे और प्रजापति, इन्द्र आदि देवों से सन्तति, धन और ऐश्वर्य आदि प्रदान करने की याचना करते थे।[५]

इन समस्त प्रार्थनाओं के समाप्त हो जाने पर विवाह विधि का अन्तिम कृत्य – वर वधू का सहवास होता था।[६]

---

१ ऋ०वे० १०.८५.२४. प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात्सविता सुशेव:।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि॥
यहाँ सविता सूर्या के पिता हैं अत: यह पद पिता का प्रतीक है।
ऋ०वे० १०.८५.२५. प्रेतो मुंचामि नामुत: सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति॥
२. ऋ०वे० १०.८५.२०. सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व॥
३. ऋ०वे० १०.८५.३२. मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातय:॥
ऋ०वे० १०.८५.३३. सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं वि परेतन॥
४. ऋ०वे० १०.८५.४६. सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु॥
५. ऋ०वे० १०.८५.४७. १०.८५.४५.
ऋ०वे० १०.८५.४३. आ न: प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा
अदुर्मंगली: पतिलोक मा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥
६. ऋ०वे० १०.८५.२८, २९,३०,३४,३५,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथर्ववेद में विवाह विधि :

ऋग्वेद के मंत्रों के तनिक से क्रम परिवर्तन से विवाह की जो उपर्युक्त विधि स्पष्ट रूप में प्राप्त होती है, वह अपने स्वरूप में नितान्त सरल थी एवं रीतियों अथवा लौकिक कृत्यों के कारण उस विवाह विधि में व्यर्थ का आडम्बर नहीं दिखाई देता। किन्तु अथर्ववेद के समय तक विवाह विधि अधिक विस्तृत हो गई। अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड के दोनों ही अनुवाक् प्रमुखतया विवाह सम्बन्धी मंत्रों से ही भरे हैं। अथर्ववेद में भी विवाह विधि के ये मंत्र क्रमपूर्वक प्राप्त नहीं होते, वरन् विवाह विधि का क्रमबद्ध स्वरूप स्पष्ट करने के लिए अथर्ववेद के मंत्रों में भी क्रमपरिवर्तन करना पड़ता है।

अथर्ववेद के विवाह सम्बन्धी इन दो अनुवाकों में ऋग्वेद के समान ही सूर्या एवं सोम का ही विवाह वर्णन है। चौदहवें काण्ड के प्रथम अनुवाक् में ऋग्वेद का ही वह मंत्र प्राप्त होता है जिसमें अश्विनीकुमार सोम के लिए सूर्या को माँगने सविता के पास जाते हैं।[१]

अथर्ववेद में विवाह से पूर्व कन्या के स्नान का वर्णन मिलता है जिसमें ब्राह्मणों से ऐसा जल लाने की प्रार्थना की गई है जो भावी पति के कल्याण के उपयुक्त हो।[२] यह स्नान का वर्णन अथवा उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त नहीं होता।

स्नान के उपरान्त वधू के वस्त्र धारण करते समय भी एक मंत्र पढ़ा जाता था जिसमें वस्त्र को बनाने वाली देवियों की प्रार्थना की जाती है।[३] वस्त्र-धारण के इस कृत्य के साथ वधू की दीर्घायु की कामना भी की जाती थी।

अथर्ववेद में पाणिग्रहण का मन्त्र भी ऋग्वेद से ग्रहण किया गया है अतः विवाह विधि का यह अंग ऋग्वेद जैसा ही है।[४]

परवर्ती संस्कृत साहित्य में जिस 'अश्मारोहण' के कृत्य ने विवाह विधि के महत्वपूर्ण अङ्ग के रूप में स्थान ग्रहण किया, वह कृत्य ऋग्वेद में न होते हुए भी अथर्ववेद में प्राप्त होता है। वर अपनी वधू से कहता है – "मैं दिव्य पृथिवी के ऊपर यह पवित्र और दृढ़ पत्थर संतति के लिए स्थापित करता हूँ। शोभन रूप एवं आह्लाद युक्त तुम इस पर खड़ी होओ। सविता तुम्हारी आयु दीर्घ करें।"[५] वस्तुतः पत्थर दृढ़ता एवं बल का प्रतीक है, अतः इस अश्मारोहण क्रिया के द्वारा दाम्पत्य की दृढ़ता की कामना की जाती होगी। इसके अतिरिक्त पृथिवी काटने, पीटने, और उखाड़ने पर भी अविचल ही रहती है। बाधाओं और विपत्तियों के मध्य भी वधू पति के प्रति एकनिष्ठ होकर अविचल रह सके – यह भाव भी अश्मारोहण क्रिया से परिलक्षित होता है।

---

१. ऋ०वे० १०.८५.६. अ०वे० १४.१.९.

२. अ०वे० १४.१.३९. आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः।
अर्यमणो अग्निं पर्येतु पूषन्प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च॥

३. अ०वे० १४.१.४५.

४. अ०वे० १४.१.४८-५२ : ऋ०वे० १०.८५.३६.

५. अ०वे० १४.१.४७. स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद में कई मंत्र ऐसे तो प्राप्त होते हैं जिसमें वर कन्या की दीर्घायु की कामना करता है, किन्तु ऐसा कोई मंत्र प्राप्त नहीं होता जिसमें वधू अपने पति की दीर्घायु की कामना करती हो। इस के दो कारण हो सकते हैं – (१) स्त्रियों का निधन अल्पायु में हो जाता हो, किन्तु पुरुषों की आयु दीर्घ होती हो अतः विधुरता के अभिशाप से बचने के लिए वर ही पत्नी के दीर्घायुष्य की कामना करता था। (२) वर की प्रार्थना में ही वधू की प्रार्थना भी गतार्थ हुई मान ली जाती हो। दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्यों में अनेक बार कुमार आदि से कुमारी का भी ग्रहण किया है। यह भी सम्भव है कि दीर्घायुष्य का मंत्र वर-वधू दोनों एक साथ बोलते हों, और दोनों ही परस्पर एक दूसरे के लिए दीर्घायुष्य की कामना करते हों।

अथर्ववेद में एक ऐसा मंत्र प्राप्त होता है जिसमें वधू अपने पति के दीर्घायुष्य की कामना करती है – 'यह नारी लाजा बिखेरती हुई कहती है – मेरा पति दीर्घायु हो, मेरा पति सौ वर्ष जिए।'[1] लाजा बिखेरने की यह क्रिया परवर्ती गृह्यसूत्रों में 'लाजहोम' नाम से प्राप्त होती है।

लाजाहोम के पश्चात् वधू अपने पतिगृह की ओर ले जाई जाती थी और यात्रा की सफलता के लिए प्रार्थना की जाती थी – "भग तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम्हें आगे ले चलें। अश्विन तुम्हें रथ पर ले जाएँ। गृहपत्नी बनने के लिए गृह की ओर चलो और संयम रखते हुए एकत्रित जनों से वार्तालाप करो।"[2]

ऋग्वेद में न पाया जाने वाला एक और कृत्य अथर्ववेद में प्राप्त होता है जिसमें दूर्वा के ऊपर बिछे हुए पशुचर्म्म के ऊपर वधू बैठती है और उसे उत्तम प्रजनन-शक्ति-सम्पन्न (सुप्रजा) माना जाता है।[3] यह कृत्य परवर्ती गृह्यसूत्रों में भी तनिक से परिवर्तन के साथ प्राप्त होता है और वहाँ इस कृत्य का उद्देश्य पुत्रप्राप्ति है।

सबसे अन्त में वधू विवाह-सेज पर सहवास के लिए शयन करती थी।[4]

इन कृत्यों के द्वारा अथर्ववेद में विवाहविधि का एक पूर्ण चित्र प्राप्त होता है। ऋग्वेद से अथर्ववेद तक पहुँचते पहुँचते विवाह की विधि क्रमशः विकसित होती गई है। ऋग्वेद में जहाँ पाणिग्रहण ही विवाह विधि का सर्वाधिक मुख्य कृत्य है, वहीं विवाह से पूर्व कन्या का विधिपूर्वक स्नान एवं श्रृंगार, पाणिग्रहण के उपरान्त अश्मारोहण, लाजा बिखेरना तथा पति की दीर्घायुष्य कामना, तथा दूर्वा पर बिछे चर्म्म पर बैठना आदि कृत्य अथर्ववेद की विवाह विधि में जुड़ गए

---

१. अ०वे० १४.२.६३.. इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥

२. अ०वे० १४.१.२०. भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥

३. अ०वे० १४.२.२२. यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन।
तदरोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम्॥

४. अ०वे० १४.२.३१. आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि॥
अ०वे० १४.२.३२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं। ये सारे कृत्य अन्य और वैवाहिक क्रियाओं के साथ परवर्ती सूत्रों में बड़े विस्तृत रूप से वर्णित हैं।

अथर्ववेद में विवाह सम्बन्धी मंत्रों के साथ साथ एक ऐसा मंत्र भी प्राप्त होता है जिसमें दुष्टात्माओं को वर वधू के समीप से भगाया जाता है – 'यहाँ से उठो, किस वस्तु की कामना से तू यहाँ उपस्थित हुई ? ओ इडा, मेरे घर से बाहर जाओ, मैंने तुम्हें जीत लिया। शून्य की कामना से तुम यहाँ आई, किंतु ओ निऋति, उठो, यहाँ रुको नही, बाहर जाओ।'[१] वस्तुत: अथर्ववेद में दुष्टात्माओं को भगाने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला यह मंत्र उस आदिम विश्वास को व्यक्त करता है, कि जीवन के किसी भी शुभ संक्रमण-काल में विभिन्न प्रकार की दुष्टात्माएँ व्यक्ति विशेषों पर आक्रमण करके उसका अशुभ करना चाहती हैं।[२] मन्त्रपाठ आदि से इनका अशुभ प्रभाव नष्ट किया जा सकता था – इसी विश्वास से विश्व की लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं में विभिन्न प्रकार की प्रथाएं प्राप्त होती है।[३] विवाह के समय तोप आदि से गोले छोड़ना अथवा बहुत जोर से शोर करना आदि भी इसी विश्वास के अन्तर्गत आता है।[४]

गृह्यसूत्रों में विवाह विधि – विस्तार एवं विभिन्नता के कारण :

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के पश्चात् गृह्यसूत्रों में विवाह की विधि विस्तृत रूप से वर्णित है। सूत्रकाल में ही वस्तुतः विवाह विधि क्रमबद्ध हुई। प्रत्येक गृह्यसूत्र ने विवाह विधि का वर्णन एक निश्चित प्रकार से किया है और हर गृह्यसूत्र में कुछ भिन्न-भिन्न विवरणों का समावेश किया गया है। इस भिन्नता का कारण स्पष्ट है। प्रत्येक वैदिक सम्प्रदाय के अपने अलग-अलग गृह्यसूत्र थे, अत: अपनी शाखा के अनुसार गृह्यसूत्रों के वर्णनों में प्रादेशिक भेद भी सम्मिलित हो गए। किन्तु फिर भी गृह्यसूत्रों के इन वर्णनों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है क्योंकि सब का आधार वेद ही है। मुख्य वैवाहिक कृत्यों में ऋग्वेद के दशम मण्डल के पचासीवें सूक्त और अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड के दोनों अनुवादों की ऋचाएँ ही उद्धृत है और उन्हीं वैवाहिक प्रथाओं का अनुसरण किया गया है। अन्तर केवल इतना ही है कि वेदों की सरल विवाह विधि गृह्यसूत्रों में जटिल और आडम्बर युक्त बन गई।

गृह्यसूत्रों में प्राप्त इस जटिलता की व्याख्या समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी की जा सकती है। वस्तुतः हिन्दुओं की सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था को ब्राह्मण युक्तियुक्त रूप में स्थिर कर देना चाहते थे। समय के प्रवाह के साथ-साथ वेदों का सरल विधि विधान एक ओर तो देशज व्यक्तियों के विधानों के सम्पर्क में आया और दूसरी ओर उस पर समय समय पर आने वाले विदेशियों के विधानों का प्रभाव पड़ा। परिणामत: पुरोहित वर्ग ने इस देशज सम्पर्क और विदेशी प्रभाव को

---

१. अ०वे० १४.२.१९. उत्तिष्ठेत: किमिच्छन्तीदमागा
अहं त्वेडे अभिभूः स्वगृहाद्‌।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते
प्र पत मेह रंस्था: ॥

२. कीथ — इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम ८, पृष्ठ ४३१

३. वेस्टरमार्क — हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज, भाग २, पृष्ठ ४६७

४. वेस्टरमार्क — हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज, भाग २. पृष्ठ ४६९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपने विधि-विधानों में सम्मिलित भी कर लिया और अपने विधानों के मूल स्वरूप को सुरक्षित भी रख लिया। इसी कारण गृह्यसूत्रों में वर्णित समस्त वैवाहिक विधानों को वेदों में ढूँढना व्यर्थ ही प्रतीत होता है।

पारस्कर गृह्यसूत्र और आश्वलायन गृह्यसूत्र ने विवाह-विधि सम्बन्धी कतिपय अकथित विधानों को मान्यता दी है। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार विवाह में 'ग्रामवचन' भी किया जाना चाहिए।[1] गदाधर ने इसको स्पष्ट करते हुए व्याख्या दी है कि "विवाह में वृद्धों और स्त्रियों की बात माननी चाहिए। सूत्र में न कहे जाने पर भी वर और वधू का गले में माला धारण करना, दोनों के वस्त्रों के छोर में गाँठ बाँध देना – आदि देशाचार स्त्रियों के कहे अनुसार करने चाहिएँ। ग्राम शब्द से अपने कुल के वृद्धों और स्त्रियों को कहा जाता है। वे पूर्व पुरुषों द्वार किए गए सदाचार को स्मरण रखते हैं।"[2] आश्वलायन ने भी यही माना कि स्थानीय प्रथाएँ स्थानभेद के कारण भिन्न भिन्न हैं और संस्कारों के अनुष्ठान में उनका पालन करना चाहिए।[3]

गृह्यसूत्रों में विवाह विधि का स्वरूप :

गृह्यसूत्रों में पाई जाने वाली विवाह विधि के विस्तृत और विकसित रूप को जान लेने के पश्चात् यदि उस विधि का विवेचन किया जाए तो विवाह विधि को मुख्यतः तीन भागों में रखा जा सकता है। इनमें से कुछ कृत्य प्रारम्भिक हैं जैसे वर प्रेक्षण, वाग्दान, मडण्पकरण आदि। आरम्भिक कृत्यों के पश्चात् सारतत्त्व रूप कृत्य आते हैं जैसे पाणिग्रहण, अश्मारोहण, सप्तपदी आदि। और अन्तिम भाग में ऐसे कृत्य आते हैं जो पतिगृह जाने पर मांगलिक रूप में किए जाते हैं। वस्तुतः सारतत्त्व रूप वैवाहिक कृत्य तो संस्कृत साहित्य के सभी अंगों में प्राप्त होते हैं किन्तु आरम्भिक और अन्त के कृत्यों के विस्तार में मतैक्य प्राप्त नहीं होता। मुख्य कृत्यों के क्रम में भी गृह्यसूत्रों में भिन्नता पाई जाती है। किसी गृह्यसूत्र में पाणिग्रहण सप्तपदी से पूर्व है तो किसी अन्य गृह्यसूत्र में पाणिग्रहण सप्तपदी के पश्चात् है।

गृह्यसूत्रों ने विवाह की जैसी विधि स्थापित की, परवर्ती धर्मसूत्रों, स्मृतियों और संस्कृत काव्यों और नाटकों में भी वैसी ही विवाह विधि चित्रित की गई है। अतः गृह्यसूत्रों के साथ-साथ संस्कृत काव्यों आदि में प्राप्त विवाह के प्रसंग देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

गृह्यसूत्रों ने सर्वप्रथम वर वधू के चयन का विधान किया, जिसका विस्तृत विवेचन 'वर वधू के गुण-अवगुण' नामक अध्याय में किया जा चुका है।

---

१. पा०गृ० १.८.११. ग्रामवचनं च कुर्युः।

२. पा०गृ० १.८.११. पर गदाधर भाष्य
विवाहे श्मशाने च वृद्धाणां स्त्रीणां वचनं वाक्यं कुर्युः।
सूत्रे अनुपनिबद्धमपि वधूवरयोर्मंगलसूत्रं गले मालाधारणमुभयोर्वस्त्रान्ते ग्रन्थिकरणं करग्रहणं न्यग्रोधपुटिकाधारणं वरागमने नासिकाधारणं वरहृदये दध्यादिलेपनादि ताश्च यत्स्मरन्ति तदपि कर्तव्यमित्यार्थः। च शब्दाद्देशाचारोऽपि। ग्रामशब्देन स्वकुलवृद्धाः स्त्रियोऽभिधीयन्ते। ता हि पूर्वपुरुषैरनुष्ठीयमानं सदाचारं स्मरन्ति।

३. आ०गृ० १.५.१. अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान् विवाहे प्रतीयात्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मांगलिक दिवस चयन :

गुणावगुण का निश्चय कर लेने के पश्चात् विवाह के उपयुक्त कोई शुभ दिवस खोजा जाता था। ऋग्वेद में भी इसका उल्लेख पाया जाता है।[१] यद्यपि गृह्यसूत्रों ने शुभ दिवस के सम्बन्ध में बहुत जटिल प्रक्रिया प्रस्तुत नहीं की है फिर भी विभिन्न गृह्यसूत्रों ने अपने मतानुसार भिन्न-भिन्न दिवस अथवा मास विवाह के उपयुक्त बताए हैं। कुछ गृह्यसूत्रों ने शुक्ल पक्ष और सूर्य की उत्तरायण स्थिति के समय किसी भी शुभ नक्षत्र में विवाह का विधान किया है।[२] बौधायन ने विवाह के लिए तीन मास वर्जित माने हैं – शुचि, तपस् और तपस्य।[३] इनमें से तपस् और तपस्य क्रमशः माघ एवं फाल्गुन मास का निर्देश करते हैं एवं 'शुचि' आषाढ मास का बोधक है।[४] आपस्तम्ब ने भी इसी प्रकार शिशिर के दो मासों में और ग्रीष्म के अन्तिम मास में विवाह का निषेध किया है।[५] आश्वलायन ने विभिन्न अन्य आचार्यों का मत प्रस्तुत करते हुए किसी भी समय में विवाह को उचित ठहराया।[६]

विवाह में मांगलिक दिवस को चुनना संसार की अन्य आदिम जातियों में भी पाया जाता रहा है।[७] यह प्रथा किस प्रकार उत्पन्न हुई, यह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता, तथापि चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों के साथ मानवजीवन का जो सम्बन्ध माना जाता है उसी विश्वास से यह शुभ दिवस चुनना प्रारम्भ हुआ होगा।

वर प्रेक्षण :

कन्या के पिता के पास विवाह सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ व्यक्तियों को भेजा जाता था। ऋग्वेद में भी सविता की पुत्री को माँगने सोम की ओर से अश्विनी कुमार गए थे।[८]

वरप्रेक्षण के इस कृत्य के पीछे एक समाजशास्त्रीय तथ्य भी झाँकता है। प्राचीन युग में जब कन्याएँ कम थीं और लड़के अधिक, तथा कन्याएँ परिवार में आर्थिक रूप से भी उपयोगी थीं, तब कन्या की याचना की जाती थी जैसे आज लड़के की याचना की जाती है। याचना होने तक पिता अवसर की प्रतीक्षा में रहता होगा। यह प्रथा आज भी कहीं कहीं प्राप्त होती है। सम्भवतः मुसलमानों में भी यह प्रथा भारत से ही गई।

शांखायन गृह्यसूत्र ने विधान किया कि वर जिन व्यक्तियों को विवाहार्थयाचक के रूप में कन्या

---

१. ऋ०वे० १०.८५.१३.

२. आ०गृ० १.४.१. उदगयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः। पा०गृ० १.४.५-८.; शां०गृ० १.५.५.

३. बौ०गृ० १.१.१८-२०. शुचिस्तपस्तपस्यवर्जमित्येके।

४. सेनगुप्ता, नीलाक्षी – इवोल्यूशन ऑफ हिन्दू मैरिज, पृष्ठ ३७.

५. आप०गृ० १.२.१२.

६. आ०गृ० १.४.२. सार्वकालमेके विवाहम्।

७. वेस्टरमार्क – हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज, भाग २, पृष्ठ ५६८.

८. ऋ०वे० १०.८५.८-९.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के पिता के पास भेजे, वे अपने साथ फल, फूल, यव तथा एक जलपात्र ले जाएँ।[1] ये वस्तुएँ सम्भवतः उर्वरता की प्रतीक थीं।[2]

महाभारत में कई स्थलों पर 'वरप्रेक्षण' की यह क्रिया पाई जाती है, जिसमें कुछ व्यक्ति कन्या के पिता के पास वर के लिए कन्या की याचना करने गए।[3] शान्तनु के लिए सत्यवती की याचना करने स्वयं देवव्रत भीष्म गए थे।[4] इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में रघुओं के कुलपुरोहित वसिष्ठ ने अपने यजमान कुल के चार राजकुमारों के लिए जनक से उनकी दोनों पुत्रियों और राजा कुशध्वज की दोनों पुत्रियों को माँगा था।[5]

नाटककार भास के प्रसिद्ध नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' में पद्मावती का विवाह अपने पुत्र से निश्चित कराने के लिए राजा प्रद्योत ने अपने विश्वस्त व्यक्तियों को भेजा था।[6]

कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में वर्णन किया है कि शिव की ओर से हिमालय के पास उनकी पुत्री पार्वती को मांगने के लिए सप्तर्षिगण भेजे गए—तामस्मदर्थे युष्माभिर्याचितव्यो हिमालयः'[7]

'वरप्रेक्षण' के इस कृत्य के लिए कालिदास ने एक बड़ा सुन्दर कारण भी दिया कि सज्जनों द्वारा मध्यस्थ बन कर स्थापित किए गए सम्बन्ध नष्ट नहीं होते—

'विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः।'[8]

हर्षवर्धन की प्रसिद्ध नाटिका 'रत्नावली' में भी वरप्रेक्षण का उल्लेख है जहाँ यौगन्धरायण अपने स्वामी उदयन के लिए सिंहल राजपुत्री की याचना करने एक अन्य मन्त्री को भेजता है।[9] 'हर्षचरित' में ग्रहवर्मा ने वर्धनराजकुमारी राज्यश्री के साथ विवाह हेतु अपने दूत भेजे थे।

वाग्दान :

गृह्यसूत्रों में केवल शांखायन ने वाग्दान अथवा वाग्निश्चय का वर्णन किया है।[10] पारस्कर-

---

१. शां०गृ० १.६.१-६.; बौ०गृ० १.१.१४-१५.;
   आ०गृ० २.१६.
२. सेनगुप्ता, नीलाक्षी – इवोल्यूशन ऑफ हिन्दू मैरिज–पृष्ठ ३८.
३. महाभारत १.१०९.११. ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत।
   १.११२.६ तामहं वरयिष्यामि पाण्डोरर्थे यशस्विनीम्।
   १.११३.१३. ततस्तु वरयित्वा तामानीय भरतर्षभ॥
४. महाभारत १.१००.७५. अभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम्॥
५. वा०रा० १.७०.४५. रामलक्ष्मयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप।
   वा०रा० १.७२.६ वरये ते सुते राजस्तयोरर्थे महात्मनोः।
६. स्वप्नवासवदत्तम् – प्रथम अङ्क
   तापसी – भद्रे ! इमां तावत् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद्राजा न वरयति।
   चेटी – अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति।
७. कु०स० ६.२९
८. कु०स० ६.२९
९. रत्नावली – प्रथम अङ्क
१०. शां०गृ० १.६.५.६.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गृह्यसूत्र पर गदाधर ने अपने भाष्य में वाग्दान का विस्तृत वर्णन किया है। 'वर के पिता आदि के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर कन्या के पिता को अपनी भार्या अदि से अनुमति लेकर उच्च स्वर में कहना चाहिए कि 'दूंगा।'...........पुनः हरिद्रा, पूगफल आदि लेकर कन्या का पिता यह कहे—'ज्योतिषियों द्वारा बताए गए मुहूर्त में अमुक गोत्रोत्पन्ना, अमुक व्यक्ति की पुत्री, अमुक नाम वाली कन्या को दूंगा।' इतना कह कर फिर वह मन्त्रोच्चार करे—'मैंने मौखिक रूप से अपनी कन्या आपके पुत्रार्थ दे दी और आपने स्वीकार कर ली, अब आप निश्चिन्त होकर कन्या को देखिए।' कन्या के पिता की बात सुनकर वर के पिता को उत्तर देनाचाहिए – 'आपके द्वारा मौखिक रूप से दी गई कन्या मैंने अपने पुत्रार्थ स्वीकार की। अब आप निश्चिन्त होकर वर को देखिए।' इसके पश्चात् वर का पिता ताम्बूल-आभूषण-वस्त्रादि से कन्या की पूजा करे और ब्राह्मणगण आशीर्वाद के मन्त्र पढ़ें।"[1]

महाभारत में भी वाग्दान अथवा वाग्निश्चय के प्रसंग प्राप्त होते हैं। भीष्म ने जब धृतराष्ट्र के लिए गान्धार देश की राजकुमारी को माँगा तो राजा सुबल ने सोच विचार कर वाग्दान कर दिया।[2] वाल्मीकि रामायण में वसिष्ठ द्वारा जनक से याचना किए जाने पर जनक ने वाग्दान किया कि 'मैं राम और लक्ष्मण के लिए अपनी पुत्री सीता और उर्मिला देता हूँ।'[3] 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में महाराज दर्शक ने पद्मावती का वाग्दान किया था।[4] कुमारसम्भव में जब सप्तर्षिगण शिव की ओर से पार्वती की याचना करने गए; उस समय हिमालय द्वारा किए गए वाग्दान की प्रक्रिया गदाधर भाष्य में वर्णित प्रक्रिया से बहुत मिलती है। "सप्तर्षि गण की बात सुन कर हिमवान् ने अपनी पत्नी के मुख की ओर साभिप्राय देखा क्योंकि गृहस्थी लोग कन्या के सम्बन्ध में गृहिणी के नेत्रों से देखते हैं। फिर हिमवान् अपनी अलंकृता कन्या को ऋषियों के सम्मुख लाए और कहा कि यह त्रिलोचनवधू आप सबको नमस्कार करती है।"[5]

मण्डपकार्य :

वाग्दान द्वारा विवाह सम्बन्ध के निश्चित हो जाने पर वर एवं कन्या दोनों के घर पर यज्ञार्थ मण्डप तैयार किया जाता था। पारस्कर गृह्यसूत्र ने स्पष्टतः विधान किया कि 'विवाह,

---

१. पा०गृ० १.८ पर गदाधर भाष्य में वाग्दान विधि
२. महाभारत १.१०९.१२.
३. वा०रा० १.७१.२१.२२ सीता रामाय भद्रं ते उर्मिलां लक्ष्मणाय वै।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव॥
४. स्वप्नवासवदत्तम – द्वितीय अंक—
धात्री – भर्तृदारिके! दत्तासि।...........वत्सराजायोदयनाय...........तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च।...........स्वयमेव महाराजेन दत्ता।
५. कु०स० ६.८५ शैलः सम्पूर्णकामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत।
प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः॥
६.८७. इदमत्रोत्तरं न्याय्यमिति बुद्धया विमृश्य सः।
आददे वचसामन्ते मङ्गलालङ्कृतां सुताम्॥
६.८९. -इयं नमति वः सर्वांस्त्रिलोचनवधूरिति॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चूड़ाकरण, उपनयन, केशान्त एवं सीमन्तोन्नयन – ये पांच संस्कार घर से बाहर मण्डप में होने चाहिएँ।'[1] पारस्कर ने यद्यपि इस निश्चित विधान के लिए कोई हेतु नहीं दिया है तथापि घर से बाहर मण्डप में ही विवाह करने के दो कारण युक्तिसङ्गत रूप में खोजे जा सकते हैं। (१) प्रथमतः, विवाह एक सामाजिक उत्सव था, अतः उसमें निमन्त्रित और अभ्यागत सैकड़ों व्यक्तियों के आने की सम्भावना होती थी। धनी अथवा निर्धन कोई भी व्यक्ति अपने घर के भीतर उन समस्त अभ्यागत व्यक्तियों को सुचारु रूप से आसन दे सकने में निश्चय ही असमर्थ रहता होगा अतः मण्डप में विवाह किए जाने का विधान हुआ। मण्डप में सभी व्यक्ति वर्णानुसार एवं योग्यतानुसार बैठ कर विवाह के साक्षी बन सकते थे।

(२) इसके अतिरिक्त भी कन्या अथवा वर के घर में विवाहार्थ मण्डप बनाया जाना सम्भवतः एक घोषणापत्र के रूप में था, जो उस विशिष्ट कन्या-वर के विवाह – बन्धन में बंधने की सूचना समाज को देता था। इस विवाह के प्रति विरोध रखने वाला व्यक्ति समाज के सम्मुख अपना विरोध पहले ही प्रस्तुत कर सकता था। मण्डप इस तथ्य का भी सूचक हो सकता है कि कन्या-वर का यह भावी सम्बन्ध विवेकपूर्वक किया जा रहा है, बलपूर्वक नहीं।

राक्षस विवाह – जो मूलतया बल प्रयोग पर ही आधारित है – कन्या के घर न होकर वर के घर पर सम्पन्न होता था। वर-पक्षीय व्यक्ति अपनी इच्छानुसार मण्डप आदि निर्माण कर के अपहृता कन्या का वर के साथ विवाह करते थे – अतः वर पक्ष द्वारा विरोध किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। कृष्ण ने रुक्मिणी हरण करने के पश्चात् अपनी नगरी में आकर विधि-विधान पूर्वक रुक्मिणी से विवाह किया था।[2]

महाभारत में द्रौपदी, दमयन्ती एवं उत्तरा के विवाह प्रसंग में मण्डप एवं उसकी शोभा का बहुविध वर्णन प्राप्त होता है।[3] विवाह-मण्डप को उत्कृष्ट सुगन्धित द्रव्यों से धूपित करके सुगन्धयुक्त बनाया जाता था। चन्दन से लीप कर सुन्दर और सुगन्धित बनाने के पश्चात् विभिन्न रंगों की सुगन्धयुक्त पुष्पमालाओं से मण्डप को सुसज्जित किया जाता था। मण्डप की शोभावृद्धि का पूर्ण प्रयत्न किया जाता था। मण्डप में हर समय शंख एवं तूर्यनिनाद होता था। विवाह के लिए एक सुन्दर वेदी का निर्माण विवाह मण्डप के मध्य में किया जाता था।

वाल्मीकि रामायण में राम सीता के विवाह प्रसंग में भी मण्डपकार्य एवं वेदी निर्माण का बहुत उत्तम वर्णन है।[4] कुमारसम्भव में कालिदास ने वितानयुक्त, मणिस्तम्भचतुष्टय से सुशोभित, कौतुकवेदी वाले मण्डप का वर्णन कि।ा है।[5]

---

१. आ०गृ० १.४.२ पञ्चसु वहिः शालायां विवाहे चूड़ाकरण उपनयने केशान्ते सीमन्तोन्नयने इति॥

२. श्रीमद्भागवत १०.५२.१८.

३. महाभारत १.१८५.१८-२२. तूर्यौघशतसंकीर्णः पराघ्यागुरुधूपितः।
४.७२.२७. ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
४.७२.४०. तन्महोत्सवसंकाशं हृष्टपुष्ट जनावृतम्।
३.५७.३.

४. वा०रा० १.७३.२०-२४.

५. कु०स० ७.१२. तस्मात्प्रदेशाच्च वितानवन्तं युक्तं मणिस्तम्भचतुष्टयेन।
पतिव्रताभिः परिगृह्य निन्ये क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नान्दीश्राद्ध :

बौधायन गृह्यसूत्र ने विवाह सम्बन्ध तय हो जाने पर तथा मण्डप बन जाने के बाद नान्दी-श्राद्ध का विधान किया।[१] पारस्कर गृह्यसूत्र पर अपने अपने भाष्य में गदाधर और हरिहर दोनों ने नान्दीमुख श्राद्ध का विधान बताया है।[२] किन्तु बौधायन को छोड़कर अन्य गृह्यसूत्रों ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा। विष्णु पुराण ने जिन विभिन्न अवसरों पर नान्दीमुख श्राद्ध का विधान किया, उनमें विवाह भी एक अवसर है।[३]

विवाह के महत्त्व को स्पष्टतर कर देने के लिए ही सम्भवत: नान्दीश्राद्ध किया जाता था। इसके विधान से यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं होगा कि विवाह को केवल परिवार अथवा व्यक्तिगत दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता था अपितु प्रजाति की दृष्टि से भी विवाह का अवसर बहुत महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसीलिए पूर्वजों को प्रसन्न रखने के लिए नान्दीश्राद्ध किया जाता था।

महाभारत के विवाह प्रसंगों में नान्दीश्राद्ध के किए जाने का वर्णन नहीं है किन्तु वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन मिलता है। जनक द्वारा सीता आदि चार राजपुत्रियों का राम आदि चार राजकुमारों के लिए वाग्दान कर दिए जाने पर दशरथ अपने आवास स्थान को लौट आए और वहाँ आकर उन्होंने यथाविधि श्राद्ध किया।[४]

कालिदास, भवभूति, माघ आदि कवियों ने भी इस कृत्य का वर्णन नहीं किया है।

वैवाहिक स्नान :

विवाह विधि में विवाह के दिन वर-वधू के मङ्गल-स्नान का विधान प्राय: सभी गृह्यसूत्र-कारों ने किया है।[५] यह कृत्य अथर्ववेद में भी पाया जाता है।[६] विवाह के दिन वर और वधू प्रातःकाल अपने-अपने घर में सुवासित जल से मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करते थे। वधू को स्नान कराके नए वस्त्र पहनाए जाते थे।

यद्यपि सभी गृह्यसूत्रों ने मंगलस्नान का विधान किया है तथापि सूत्रकारों ने इसे भिन्न-भिन्न समयों पर बताया है। गोभिल गृह्यसूत्र वधू का मंगल स्नान प्रातःकाल बताता है;[७] किन्तु आपस्तम्ब ने वधू के स्नान का विधान उस समय किया है जब वधू के घर वर पहुँच जाए।[८] शांखायन गृह्यसूत्र ने पतिगृह के लिए विदा होने वाले दिवस की सन्ध्या को वधू के मंगल-स्नान का विधान किया है।[९]

---

१. बौ०गृ० १.१.२४.
२. पा०गृ० १.८. पर गदाधर भाष्य एवं हरिहर भाष्य
३. वि०पु० ३.१३.५-७.
४. वा०रा० १.७२.२१. स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानत:।
५. खा०गृ० १.३.६.; पा०गृ० १.४.; आप०गृ० १.४.७.
६. अ०वे० १४.१.३१.
७. गो०गृ० २.१.१०.
८. आप०गृ० १.४.७.
९. शां०गृ० १.११.२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कालिदास ने कुमारसम्भव में पार्वती के मंगल-स्नान का विस्तृत वर्णन किया है। "सौभाग्यवती स्त्रियों ने लोध्रचूर्ण से पार्वती के शरीर को सुगन्धित किया और स्नान योग्य वस्त्र पहना कर स्नानघर में ले गई। नीलमणि की सुन्दर चौकी पर पार्वती को बिठा कर स्त्रियों ने गीत गाते हुए सोने के घड़ों से पार्वती को स्नान कराया।"[1]

वर यात्रा अथवा वधू के घर आगमन :

वर अपने मित्रों एवं बान्धवों के साथ यथायोग्य वाहन पर आरूढ़ होकर वधू के घर के लिए प्रस्थान करता था। शांखायन गृह्यसूत्र के अनुसार वर का वाहन रथ, हाथी या अश्व हो सकता है।[2] कालिदास ने कुमारसम्भव एवं रघुवंश में वरयात्रा का सुन्दर चित्रण किया है। "विकार रहित शिव जब पार्वती के घर की ओर चले तो आगे आगे विश्वावसु आदि प्रसिद्ध गन्धर्व त्रिपुरासुर विजय के गीत गाते हुए चले। सुन्दर गति से चलने वाला नन्दी गले में पहनी स्वर्णघंटिकाओं को सशब्द करता हुआ बादलों को अपने सींगों से प्रताड़ित करता चला।"[3] इन्दुमती से विवाह करने के लिए वर यात्रा के समय राजा अज हाथी पर आरूढ़ हो कर ही गए।[4]

मधुपर्क :

कुछ गृह्यसूत्रों ने मधुपर्क को विवाह विधि के एक कृत्य के रूप में वर्णित किया है, किन्तु कुछ अन्य गृह्यसूत्रों ने स्वतन्त्र रूप से मधुपर्क का विधान किया है। विवाह विधि में इस मधुपर्क को सामान्य रूप में द्वारपूजा कहा जाता है। पारस्करगृह्यसूत्र ने छह पुरुषों को अर्घ्य के योग्य माना है और उसमें वैवाह्य अर्थात् जामाता भी एक है।[5] पारस्कर ने अर्घ्यविधि अथवा मधुपर्क का जितना विस्तृत विवरण दिया है उसी से इस कृत्य की महत्ता परिलक्षित हो जाती है। शांखायन ने मधुपर्क का विधान दो बार किया है। एक बार केवल वर को मधुपर्क दिया जाता है जब वह वधू के घर पहुँचता है, और दूसरी बार मधुपर्क तब दिया जाता है जब वर एवं वधू विवाहोपरान्त अपने नए घर पहुँचते हैं।[6]

---

१. कु०सं० ७.९. तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलामाश्यानकालेयकृतांगरागाम् ।
वासो वसानामभिषेकयोग्यं नार्यश्चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः ॥
७.१०. विन्यस्तवैदूर्यशिलातलेऽस्मिन्नाबद्धमुक्ताफलभक्तिचित्रे ।
आवर्जिताष्टापदकुम्भतोयैः सतूर्यमेनां स्नपयांबभूवुः ॥
७.११.
२. शां०गृ० १.१२.१.
३. कु०सं० ७.४८. विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः सगीयमानत्रिपुरावदानः ।
अध्वानमध्वान्तविकारलंध्यस्ततार ताराधिपखण्डधारी ॥
७.४९. खे खेलगामी तमुवाह बाहः सशब्दचामीकरकिंकणीकः ।
तटाभिघातादिव लग्नपंके धुन्वन्मुहुः प्रोतघने विषाणे ॥
४. रघुवंश ७.१७.
५. पा०गृ० १.३.१-२. षडर्घ्या भवन्ति ।
आचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति ।
६. शां०गृ० १.१२.१०.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वधू के घर वर के पहुँच जाने पर वधू के पिता और आत्मीयजन सबसे पहले मधुपर्क से सत्कार करते हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र के षडर्घ्यविधान से स्पष्ट है कि मधुपर्क एक अत्यन्त दुर्लभ सम्मान था जो समाज के विशिष्ट व्यक्तियों और सर्वाधिक प्रतिष्ठित सम्बन्धियों के लिए सुरक्षित था। विवाह विधि में वर मुख्यतम अतिथि है। वधू का पिता वर को आसन, पैर धोने के लिए जल, आचमन के लिए अर्घ और काँसे के ढक्कनदार पात्र में दही, घृत और मधु का घोल – प्रत्येक वस्तु को तीन-तीन बार निवेदन करता है और वर प्रत्येक को स्वीकार कर लेता है।[१]

श्री दयानन्द सरस्वती ने मधुपर्क के कृत्य में वर को अतिथि माना है और वधू को आतिथ्यकारिणी।[२] उनके अनुसार मधुपर्क ग्रहण करके वर तीन ऋग्वेदीय मन्त्रों का उच्चारण करता है।[३] यहाँ वर वधू जिस वस्तु को भी देखते अथवा सोचते हैं वह सब मधुर, मिष्ट और सरस होती है। वधू द्वारा प्रदत्त यह सत्कार एक और संकेत करता है कि दाम्पत्य जीवन में पत्नी इसी प्रकार सदैव पति का स्वागत करती रहेगी। पत्नी ही वस्तुतः घर को मधुमय बनाया करती है।

प्राचीन काल से ही अतिथि के सम्मान में मांस के बिना अर्घ्य का कृत्य पूर्ण नहीं माना जाता था।[४] पारस्कर गृह्यसूत्र ने पशुओं में गाय की बलि वर की इच्छा पर निर्भर की है। वस्तुतः गाय आर्यों का अभीष्टतम उपहार थी। इससे बढ़कर अतिथि का और कुछ सम्मान नहीं किया जा सकता था। किन्तु दूध देने के कारण और दूध के पवित्र होने से धार्मिक कृत्यों में काम आने के कारण कालक्रम से गाय अवध्य होती गई। गाय के वध के विकल्प में गाय की अवध्यता के भाव के क्रमिक विकास का दर्शन होता है।[५] गदाधर ने अपने भाष्य में इसका अच्छा विवेचन किया

---

१. पा०गृ० १-३.५-७.

ओऽम् विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्। ओऽम् प्रतिगृह्णामि।
ओऽम् पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम्। ओऽम् प्रतिगृह्णामि।
ओऽम् अर्घोऽर्घोऽर्घ प्रतिगृह्यताम्। ओऽम् प्रतिगृह्णामि।
ओऽम् आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयं प्रतिगृह्यताम्।
ओऽम् प्रतिगृह्णामि।
ओऽ मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्। ओऽम् प्रतिगृह्णामि।

२. दयानन्द सरस्वती – संस्कार विधि, पृष्ठ १२३.

३. ऋ०वे० १.९०.६-८. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

४. पा०गृ० १.३.३०. न त्वेवामाँसोऽर्घः स्यात्।
उ०रा० – चतुर्थोऽङ्कः – दाण्डायन – 'समांसो मधुपर्क' इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः........गृहमेधिनः। तं हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।

५. पा०गृ० १,३.२७-२९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। पराशरस्मृति को उद्धृत करते हुए गदाधर ने कलिकाल में 'गवालम्भन' निषिद्ध बताया है। अतः कलिकाल में गोवध निषेध होने के कारण गौ सदा उपहार रूप में दी जाती है।[1]

मधुपर्क में क्या क्या वस्तुएँ मिला कर दी जानी चाहिएँ – इस पर भी गृह्यसूत्रों में मतभेद है आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ने मधुपर्क में मधु और दही अथवा नवनीत और दही का विधान किया।[2] हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र ने दही, मधु, घृत, जल और अन्न का विधान किया।[3] मानव गृह्यसूत्र ने वैदिक वचन उदधृत करते हुए विधान किया कि मधुपर्क मांसयुक्त होना चाहिए अतः यदि गौ का मांस न हो तो बकरे के मांस के साथ मधुपर्क देना चाहिए।[4] शांखायन ने भी यज्ञ और विवाह में समांस मधुपर्क का ही विधान किया।[5] किन्तु परवर्ती संस्कृत ग्रन्थों में मधुपर्क के अन्तर्गत मांस का निषेध ही किया गया है। महाभारत में यज्ञार्थ आए हुए व्यासजी ने मांस त्याग कर मधुपर्क ग्रहण किया।[6] सम्भवतः मधुपर्क में मांस का प्रयोग वाममार्ग के युग में प्रारम्भ हुआ। संहिता काल में तो गौ अघ्न्या ही थी।

कालिदास ने रघुवंश एवं कुमार सम्भव दोनों में ही आगत वर को मधुपर्क देने का वर्णन किया और उस मधुपर्क में मधु, घृत एवं दही का सम्मिश्रण था।[7]

समञ्जन :

वधू का पिता भावी दम्पत्ति का समञ्जन करता है।[8] डॉ० काणे ने समञ्जन का अर्थ वर वधू को उबटन लगाना अथवा सुगन्ध लगाना किया है।[9] इस विधि के समय वर ऋग्वेदीय मन्त्र का पाठ करता है – 'विश्वेदेवा एवं जल हमारे हृदयों को एक सूत्र में आबद्ध कर दें, मातरिश्वा, धाता तथा देष्टा हमें संयुक्त कर दें।[10] समञ्जन की क्रिया वस्तुतः स्नेह या प्रेम की प्रतीक है।

परस्पर समीक्षण :

वर और वधू परस्पर एक दूसरे की ओर देखते हैं और वर मन्त्रपाठ द्वारा वधू से अपेक्षा करता है कि – 'हे कन्या! तुम सौम्य दृष्टि बनो और पति का नाश करने वाली मत बनो। पशुओं (और पशुओं के समान आश्रित जनों) के लिए हितैषिणी बनो। प्रसन्नचित्त, सुप्रभावयुक्त, सत्पुत्र जननी, देवता की कामना करने वाली, हमारे लिए, मनुष्यों के लिए तथा पशुओं के लिए

---

१. पा०गृ० १.३.३०-३१. पर गदाधर भाष्य
२. आ०गृ० ४.१३.१०.
३. हि०गृ० १.२.१०-१२.
४. मा०गृ० १.९.२२.
५. शां०गृ० २.१५.
६. महाभारत १.६०. १३-१४.
७. रघुवंश ८.१८.; कु०स० ८.७२.
८. पा०गृ० १.४.१५. शां०गृ० १.१२.५., गो०गृ० २.२.१५.
९. काणे, पा०वा०, धर्मशास्त्र का इतिहास – प्रथम भाग – पृष्ठ ३०४.
१०. ऋ०वे० १०.८५.४७. समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुख देने वाली बनो।"[1] पारस्कर ने इस मन्त्र के साथ ही ऋग्वेद के तीन और मन्त्रों के वर द्वारा क्रमशः उच्चारण किए जाने का विधान किया है।[2]

विवाह विधि में वर-कन्या-चयन से परस्पर समीक्षण तक के समस्त कृत्य आरम्भिक कृत्यों के अन्तर्गत आते हैं। इन कृत्यों के पश्चात् विवाह विधि के मूल आवश्यक कृत्य प्रारम्भ होते हैं जो प्रायः सभी गृह्यसूत्रों में पाए जाते हैं। इन कृत्यों को निम्नलिखित प्रकार से सम्पन्न किया जाता है—

प्रारम्भ में वधू का पिता विधिपूर्वक अपनी कन्या वर को देता है। उसके पश्चात् वर स्थापित अग्नि में मन्त्रपूर्वक आहुति देता है और वधू वर के हाथ का स्पर्श करती है जिससे उसका पूर्ण सहयोग सूचित होता है। तदनन्तर वर कन्या का पाणिग्रहण करता है। इसके पश्चात् वर स्वयं आगे होकर कन्या को अग्नि की तीन प्रदक्षिणा कराता है। प्रदक्षिणा के समय ही वर वधू को अश्मारोहण कराता है। फिर वे लाजाहोम करते हैं। उसके पश्चात् सप्तपदी की क्रिया होती है।

विवाह विधि के ये प्रमुख कृत्य सभी गृह्यसूत्रों में पाए जाने पर भी इनके क्रम के सम्बन्ध में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। परिशिष्ट 'अ' में विभिन्न गृह्यसूत्रों में प्राप्त विवाह विधि के कृत्यों की भिन्न-भिन्न तालिका प्रस्तुत कर दी गई है।

कन्यादान :

कन्यादान का कृत्य सभी गृह्यसूत्रों में प्राप्त नहीं होता। इसमें पिता अपनी पुत्री का संरक्षण वर में संक्रमित कर देता है। संस्कार कौस्तुभ के अनुसार कन्यादान के कृत्य में ही पिता वर के सम्मुख यह प्रतिबन्ध रखता है कि 'तुम धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति में इस कन्या का अतिचरण अथवा अतिक्रमण न करना, और वर वचन देता है कि – 'मैं इसका अतिचरण नहीं करूँगा।' इसके पश्चात् पिता दूर्वा एवं जल समेत वर को कन्या दे देता है और वर औपचारिक रूप से कन्या को ग्रहण कर लेता है।[3]

परवर्ती संस्कृत साहित्य में कन्यादान का यह कृत्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया, किन्तु यह बहुत विस्मयजनक तथ्य है कि ऋग्वेद अथवा अधिकांश गृह्यसूत्रों में कन्यादान का कृत्य विवाहविधि के अन्तर्गत है ही नहीं। मानव गृह्यसूत्र ने अवश्य कन्यादान की विधि विस्तृत रूप में वर्णन की है।[4] आश्वलायन गृह्यसूत्र ने ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष एवं दैव विवाह प्रकारों में ही केवल 'दद्यात्' पद का प्रयोग किया है।[5] किन्तु आश्वलायन गृह्यसूत्र का यह अष्टविवाह-प्रकार वर्णन अपने प्रसंग में नितान्त असंगत होने के कारण क्षेपक जान पड़ता है।

---

१. ऋ०वे० १०.८५.४४. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

२. पा०गृ० १.४.१७.

३. काणे, पा०वा०, धर्मशास्त्र का इतिहास – प्रथम भाग – पृष्ठ ३०४

४. पा०गृ० १.८. पर गदाधर भाष्य में वर्णित कन्यादान प्रक्रिया
मा०गृ० १.८.६-८.

५. आ०गृ० १.४.२१,२३,२५,२७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वस्तुतः विवाह के आठ प्रकारों में से कन्या दान की विधि केवल चार प्रकारों में ही सम्भव है। गृह्यसूत्रों ने यद्यपि इन प्रकारो के नामोल्लेख पूर्वक ऐसा विधान नहीं किया तथापि चारों धर्म्य एवं प्रशस्त विवाह प्रकारों में ही कन्यादान होने का निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है। चारों अप्रशस्त प्रकार के विवाह वधू के घर पर सम्पन्न ही नहीं होते थे अतः उसमें पिता अथवा अन्य आत्मीयजनों द्वारा कन्यादान किया जाना सम्भव ही नहीं है। सम्भवतः ऋग्वेद में भी इसी कारण कन्यादान वर्णित नहीं है क्योंकि सूर्या का विवाह पिता के घर न होकर सोम-वर के यहाँ सम्पन्न हुआ था।

ऋग्वेद की विवाह विधि में कहीं भी कन्या के दान रूप में दिए जाने की चर्चा यद्यपि नहीं है तथापि विवाह सूक्त में ही एक मन्त्र है जिसमें सविता द्वारा मन से सूर्या के दिए जाने का उल्लेख है – 'सोम वर थे, अश्विनीकुमार वर की ओर से कन्या की याचना करने वाले बने। पति कामा सूर्या को पिता सविता ने मन से दे दिया।'[1] ऋग्वेद का यह मन्त्र यद्यपि विवाहविधि के वाग्दान कृत्य के अन्तर्गत आता है तथापि इससे यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं है कि 'अददात्' पद से ही कालान्तर में कन्यादान की विधि प्रारम्भ हुई होगी। सूर्या के पिता सविता ने ही सूर्या का विवाह सम्बन्ध स्थिर करने का संकल्प किया था अतः परवर्ती संस्कृत साहित्य में भी मुख्यरूप से पिता को ही कन्यादान का अधिकारी माना गया।

इस कृत्य का संकेत या उल्लेख करने वाले गृह्यसूत्रों में पारस्कर गृह्यसूत्र ने पिता द्वारा कन्यादान का विधान किया है।[2] मानव गृह्यसूत्र ने पिता अथवा भाई को कन्यादान का अधिकारी माना।[3] स्मृतियों ने कन्यादान का अधिकार अन्य सम्बन्धियों तक भी विस्तृत कर दिया। याज्ञवल्क्य स्मृति ने विधान किया कि– 'पिता. पितामह, भाई, कुल का कोई पुरुष और माता – ये यथाक्रम पूर्व पूर्व के नष्ट होने पर और स्वयं प्रकृतिस्थ होने पर कन्यादान के अधिकारी हैं।'[4] नारद स्मृति ने 'पिता, भाई, कुल का पुरुष, माता, मित्र, नाना तथा राज्य को' कन्यादान का अधिकारी माना।[5]

वस्तुतः कन्यादान के कृत्य का विधान कर देने वाले सूत्रकारों ने एक वृहद् आदर्श अपने सम्मुख रक्खा है। पिता द्वारा वर को दिए जाने वाले उपहार से अभिभावकत्व का सङ्क्रमण तो सूचित होता ही है; साथ ही यह पिता द्वारा समाज के कल्याण के लिए किया गया एक अनोखा त्याग है। दूसरे व्यक्ति के कुल के कल्याण और सुख के लिए कन्या दी जाती है जिससे समाज में धर्म का निरन्तर पालन होता रहे।

---

१. ऋ०वे० १०.८५.९. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविदाददात् ॥

२. पा०गृ० १.४.१६. पित्रा प्रत्तां आदाय गृहीत्वा निष्क्रामति।

३. मा०गृ० १.८.६-८.

४. या०स्मृ० १.६३. पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा।
कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

५. वी०मि०, संस्कार प्रकाश, पृष्ठ ८२२ पर उद्धृत नारद

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अग्निस्थापन एवं विवाह होम :

कन्यादान के पश्चात् मन्त्रोच्चारण सहित अग्नि प्रज्वलित की जाती थी और अग्नि में आहुति दी जाती थी।[१] अग्नि में कितनी आहुतियां दी जाएँ और किन किन मन्त्रों का उच्चारण किया जाए – इस सम्बन्ध में गृह्यसूत्रों में बहुत मत भेद है। इन आहुतियों के सम्बन्ध में विशेष विवरण परिशिष्ट 'ब' में दे दिया गया है।

महाभारत के विभिन्न विवाह प्रसंगों में सर्वत्र अग्निस्थापन एवं होम प्राप्त होता है।[२]

पाणिग्रहण :

विवाहविधि के विभिन्न कृत्यों में पाणिग्रहण कृत्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।[३] इस कृत्य की महत्ता इसी से आंकी जा सकती है कि 'पाणिग्रहण' शब्द ही विवाह का पर्यायवाची बन गया है। इस कृत्य में वर वधू का दाहिना हाथ पकड़ कर ऋग्वेद के मंत्र का उच्चारण करता है।[४]

पाणिग्रहण के होते ही कन्या पत्नी का पद प्राप्त कर लेती है। वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार केवल सवर्णा वधू का ही पाणिग्रहण करना चाहिए।[५] मनु ने भी सवर्णा कन्या का ही पाणिग्रहण करने का विधान किया।[६] यदि वर्णेतर विवाह हो तो मनु ने इस प्रकार व्याख्या दी कि – 'ब्राह्मण के साथ विवाह करने वाली क्षत्रियकन्या वर द्वारा ग्रहण किए गए बाण के एक भाग को पकड़े, अपने से ऊँचे वर्ण के वर के साथ विवाह करने वाली वैश्यवर्ण की कन्या वर के हाथ में पकड़े हुए चाबुक के एक भाग को पकड़े; अपने से ऊँचे वर्ण में विवाह करने वाली शूद्र वर्ण की कन्या वर के वस्त्र के एक भाग को पकड़े।'[७]

मनु द्वारा विधान की गई इस प्रथा का संकेत महाभारत में भी प्राप्त होता है। पाण्डवों

---

१. पा०गृ० १.५., आ०गृ० १.४.३-७.
   आ०गृ० २.५.२., गो०गृ० २.१.२४-२५.,
२. महाभारत १.१९७.११. ततः समाधाय स वेद पारगः।
   जुहाव मन्त्रैर्ज्वलितं समिद्धाग्निम्॥
   महाभारत १.१९०.७. प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह।
   महाभारत ४.७२.३४. हुत्वा सम्यक् समिद्धाग्निम्।
   महाभारत १३.१४६.३४. स्त्रीधर्मः पूर्व एवायं विवाहे बन्धुभिः कृतः।
   सहधर्मचरी भर्तुर्भवत्यग्नि समीपतः॥
३. पा०गृ० १.७.६.; गो०गृ० २.२.१६.,
   आ०गृ० १.५.३.,
४. ऋ०वे० १०.८५.३६. गृभ्णामि ते सौभगत्वाय............
५. व०ध० २४.५.८.
६. म०स्मृ० ३.४३. पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते।
   असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि॥
७. म०स्मृ० ३.४४. शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया।
   वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रायोत्कृष्टवेदने॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने ब्राह्मणों के वेश में द्रौपदी को पाया था, किन्तु उस क्षत्रियोचित लक्ष्यवेध से द्रुपद के मन में पाण्डवों के ब्राह्मणत्व के सम्बन्ध में शंका हुई, अतः उन्होंने उन विजेताओं का वर्ण जानने की कामना से कहा कि वे विजेता के वर्ण के अनुसार ही विवाह करेंगे।[1] इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यदि वर एवं वधू भिन्न-भिन्न वर्णों के हों तो विवाह विधि में कृत्य भिन्न-भिन्न प्रकार से किए जाते थे।

वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत में पाणिग्रहण की क्रिया विवाह प्रसंगों में अवश्य वर्णन की गई है।[2]

लौकिक संस्कृत के काव्यों और नाटकों के विवाह प्रसंगों में भी पाणिग्रहण का सुचारु वर्णन प्राप्त होता है। कालिदास ने रघुवंश एवं कुमारसम्भव में पाणिग्रहण कृत्य का बड़ा सुकुमार वर्णन किया है – 'इन्दुमती का हाथ अपने हाथ में ग्रहण करके अज इस प्रकार सुशोभित हुए जैसे आम्रपल्लव अशोक लता के किसलय से मिल गया हो।'[3]

उत्तर रामचरितम् के प्रथम अंक में राम चित्रवीथी में अंकित अपने विवाह दृश्यों में से पाणिग्रहण को देखकर ही सर्वाधिक उच्छ्वसित होते है।[4]

आश्वलायन गृह्यसूत्र एवं आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ने पाणिग्रहण में भी हाथ पकड़ने की भिन्न-भिन्न विधि वर्णित की है। उनके अनुसार 'यदि वर केवल पुत्र-सन्तति की कामना करता है, तो कन्या के हाथ का केवल अँगूठा-मात्र पकड़े; यदि केवल कन्या-सन्तति की कामना है तो वर कन्या के हाथ की उँगलियाँ मात्र पकड़े, और यदि पुत्र-कन्या दोनों प्रकार की सन्तति की कामना है, तो वर को चाहिए कि वह कन्या का अंगूठे सहित सारा अग्रहस्त पकड़े।'[5] इन विशिष्ट प्रकारों के द्वारा हाथ पकड़ने से इच्छित सन्तान कैसे उत्पन्न हो जाएगी – इसका विवेचन आश्वलायन या

---

१. महाभारत १.१६५.२-७.

२. वा०रा० १.७३.२७. प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
महाभारत १.७३.२०. जग्राह विधिवत् पाणौ।
महाभारत १.८१.२१. पाणिधर्मो नाहुषायं न पुंभिः सेवितः पुरा।
महाभारत १.१९९.५. पाणिं कृष्णायास्त्वं गृहाणाद्य पूर्वम्।
महाभारत ७.५३.१६. पाणिग्रहणमंत्राश्च प्रथितं वरलक्षणम्।

३. रघुवंश ७.२१. हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे।
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन॥

४. उ०रा० १.१८. समयः स वर्तत इवैष यत्र मां।
समनन्दयत् सुमुखि ! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कणः
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः॥

५. आ०गृ० १.५.३. ....गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तमित्यंगुष्ठमेव
गृह्णीयाद्यदि कामयेत पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्निति अंगुलीरेव
स्त्रीकामो रोमान्ते हस्तं सांगुष्ठमुभयकामः।
आप०गृ० २.४.१२-१४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आपस्तम्ब ने नहीं किया। अतः यह उसी प्रकार एक अन्धविश्वास-मात्र प्रतीत होता है, जैसे वधू-चयन में इन दोनों गृह्यसूत्रों ने मिट्टी के सात ढेलों द्वारा वधू के गुणों को जानने का अन्धविश्वास-पूर्ण विधान किया है।

पाणिग्रहण के पश्चात् वर वधू के वैवाहिक वस्त्रों के छोर परस्पर बाँध दिए जाने के पश्चात् जीवन भर भरण पोषण करने के प्रतीक स्वरूप वर अपनी पत्नी को दो वस्त्र पहनाता है और आदरपूर्वक यह श्लोक पढ़ता है— 'हे आयुष्मती, तुम यहाँ प्रसन्नतापूर्वक सौ वर्ष रहो। यशस्विनी बनो। यहाँ रहते हुए धन और सम्पन्नता का भोग करो। मुझसे वियुक्त मत हो और सम्पूर्ण जीवन-पर्यन्त शान्ति और सुख भोगो। प्रिय सन्तति में फलो-फूलो और गार्हस्थ्यधर्म के पालन में तत्पर रहो।'[१]

लाजाहोम :

इसमें वधू पक्वान्न की तीन अथवा चार आहुतियाँ अग्नि में डालती है और प्रत्येक आहुति के साथ-साथ वर मन्त्रपाठ करता जाता है।[२] स्वयं वधू भी आहुति डालते समय एक मन्त्र पढ़ती है 'यह स्त्री लाजा डालती हुई कामना करती है कि मेरा पति दीर्घायु हो, मेरे सम्बन्धीजन समृद्ध हों।'[३] वस्तुतः यह लाजाहोम उर्वरता एवं समृद्धि का प्रतीक है।[४] कालिदास ने भी कुमार सम्भव एवं रघुवंश दोनों में ही विवाह विधि में लाजाहोम का वर्णन किया है।[५]

अग्नि परिणयन :

वर स्वयं आगे बढ़कर वधू को साथ लेकर अग्नि और एक कलश की तीन परिक्रमाएँ करता है और 'अमोहमस्मि' मन्त्र का उच्चारण करता है।[६]

अश्मारोहण –

पातिव्रत्य में पत्नी को सुदृढ़ करने के लिए और दाम्पत्य में पत्नी की अविचल निष्ठा के लिए अग्नि की उत्तर दिशा में रखे हुए एक पत्थर पर वर वधू का दाहिना पैर रखवाता है और मन्त्र पढ़ता है – 'इस पत्थर पर आरुढ़ हो और पत्थर के समान स्थिर हो। शत्रुवत् आचरण

---

१. पा०गृ० १.४.१३-१४., ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवाकृष्टीनामभिशस्तिपा वा।
शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं
परिधत्स्व वास इति॥
या अकृन्तन्नवयँय्या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ।
तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वास इति॥

२. पा०गृ० १.६.१-२., शां०गृ० १.१३.१५-१७.
आ०गृ० १.५.११-१२.

३. पा०गृ० १.६.२. इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका।
आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां मम ज्ञातयो॥

४. पा०गृ० १.६.२. इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव।

५. रघुवंश ७.२५., कु०स० ७.८०-८१.

६. आ०गृ० १.५.४-५., शां०गृ० १.१३.४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करने वालों को नष्ट कर दो ।'[१] यह कृत्य दाम्पत्य में वधू की निष्ठा स्थिर करने का प्रतीक है ।

केशमुञ्चन :

केशमुञ्चन का कृत्य कम ही गृह्यसूत्रों में मिलता है । आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी इसको ग्रामधर्म के अन्तर्गत ही माना है ।[२] यह कृत्य लौकिक होते हुए भी विचारणीय है । वर वधू को एक अलग कक्ष में ले जाकर वधू के केशों की दोनों लटों को खोलते हुए दो भिन्न भिन्न ऋग्वेदीय मन्त्र पढ़ता है ।[३] इस कृत्य के द्वारा वधू पिता के घर के ब्रह्मचर्य बन्धन से मुक्त होकर पति के गृहस्थ बन्धन में बंधती है ।

सप्तपदी :

वर एवं वधू पुनः अग्निकुण्ड के पास आकर सब व्यक्तियों की उपस्थिति में सात पग चलते हैं और हर पग पर भिन्न-भिन्न प्रतिज्ञाएँ करते हैं ।[४] यही सप्तपदी है । पति पत्नी को उत्तर दिशा में चलने के लिए प्रेरित करते हुए कहता है – 'बाएँ पैर से दक्षिण पैर का अतिक्रमण न करना ।'[५] अर्थात् स्थिर बनो और निरन्तर रहो । इसके पश्चात् वर-वधू सात पग चलते हैं । ये सात पग क्रमशः अन्न, शक्ति, समृद्धि, सुख, सन्तान, ऋतु आनुकूल्य एवं प्रगाढ़ प्रेम के प्रतीक बनते हैं ।[६] सातों प्रतिज्ञाओं के पश्चात् वर पुनः अपनी पत्नी से कहता है – 'हे प्रिये ।

---

१. आ०गृ० १.५.७. इममश्मानमारोहाश्मेव त्वं स्थिर भव सहस्व
पृतनायतोऽभितिष्ठ प्रतन्यत इति ।

२. आ०गृ० १.५.१६-१७. अथास्यै शिखे विमुंचति यदि कृते भवतः ।
ऊर्णास्तुके केशपक्षयोर्बद्धे भवतः ।

३. आ०गृ० १.५.१८.; १.५.१९.;
ऋ०वे० १०.८५.२४. प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोक
अरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ।।
ऋ०वे० १०.८५.२५. प्रेतो मुंचामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ।।

४. पा०गृ० १.८.१.; आ०गृ० १.५.२०.

५. गो०गृ० २.२.१३. मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम ।

६ आ०गृ० १.५.२०. इषे एकपदी भव, सा मामनुव्रता
भव, पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ।
ऊर्ज्जे द्विपदी भव·····················जरदष्टयः ।
रायस्पोषाय त्रिपदी भव············जरदष्टयः ।
मायोभव्याय चतुष्पदी भव·········जरदष्टयः ।
प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव···········जरदष्टयः ।
ऋतुभ्यः षट्पदी भव···················जरदष्टयः ।
सखा सप्तपदी भव·······················जरदष्टयः ।

इस सात प्रतिज्ञाओं में से प्रथम छह चतुर्थी में है अतः उसी दृष्टि में सप्तम मन्त्र में 'सखा' को भी चतुर्थी में लेना कदाचित् अनुचित न हो । उस अवस्था में ऊपर प्रदत्त भाव के साथ-साथ 'मेरे साथ मित्रों को प्राप्त करो' – मेरे मित्रादि के प्रति सुमुख रहो' – यह भाव भी प्राप्त होता है ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाहित जीवन के सात लक्ष्यों को प्राप्त करने में तुम मेरी सहचरी बनो। मैं तुम्हारा सखा बनने की प्रतिज्ञा करता हूँ। हमारा सख्य सम्पूर्ण सुखों का आधार बने।'

वैधानिक दृष्टि से सप्तपदी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि सप्तपदी के पश्चात् वैधरूप में विवाह पूर्ण हुआ माना जाता है। सप्तपदी के पश्चात् ही कन्या पिता के गोत्र को त्याग कर पति की सगोत्रा बनती है। महाभारत, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति इन सभी में इसी तथ्य का निदर्शन है।[1]

कन्यादान से सप्तपदी तक के ये वैवाहिक कृत्य विवाह विधि के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृत्य हैं। इसके पश्चात् के कृत्य मुख्यतया वर-वधू के एकात्म्य को सूचित करते हैं। और वधू को वर के घर ले जाने से सम्बन्धित हैं।

अभिषिञ्चन अथवा मूर्धाभिषेक :

सप्तपदी के पश्चात् वर एवं वधू अथवा केवल वधू के मस्तक पर जल छिड़का जाता है[2] तथा कामना की जाती है कि – 'ये सौभाग्यशाली एवं अधिक सौभाग्यशाली एवं शान्त तथा शान्ततम जल तुम्हें स्वास्थ्य प्रदान करें।'[3] इस विधि के द्वारा वधू को शारीरिक दोषों से मुक्त एवं दाम्पत्य जीवन के लिए पवित्र हुआ माना जाता है। साथ ही जल के औषध गुणों का स्मरण करा के उनका पुष्कल प्रयोग करने का आह्वान किया जाता है।

सूर्योदीक्षण :

पारस्कर गृह्यसूत्र ने अभिषिञ्चन के पश्चात् इस प्रथा की चर्चा की जिसमें वर द्वारा वधू को सूर्य की ओर देखने के लिए कहा जाता है।[4] इस समय वर ऋग्वेद के मन्त्र का पाठ करता है।[5] इसमें दीर्घायुष्य, आजीवन अविकलेन्द्रियता और तेजस्विता की कामना की जाती है।

हृदय-स्पर्श :

वधू के दाहिनी ओर जाकर वर उसका हृदय स्पर्श करता है और कहता है – 'मैं तेरा हृदय अपने व्रत में धारण करता हूँ; तुम्हारा चित्त मेरे चित्त का अनुगामी बने। मेरे वचनों को

---

१. महाभारत ७.५६ १६. नन्वेषां निश्चिता निष्ठा सप्तपदी स्मृता।
महाभारत १३.४४.५५. पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे।
म०स्मृ० ८.२२७. पाणिग्रहणमन्त्रास्तु नियतं दारलक्षणम्।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विवाहात् सप्तमे पदे॥
या०स्मृ० १.८४. नोदकेन न वाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते।
पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे॥

२. आ०गृ० १.५.२१.; गो०गृ० २.२.१५.

३. पा०गृ० १.८.५-७.; आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः
शांततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजमिति।

४. पा०गृ० १.८.७.

५. ऋ०वे० ७.६६.१६. तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एकाग्र मन से ग्रहण करो। प्रजापति ने तुम्हें मेरे लिए नियुक्त (प्रदान) किया है।'[1] वस्तुतः हृदय भावों का केन्द्र है। हृदयस्पर्श कृत्य द्वारा वर दोनों हृदयों को एक सूत्र में बाँधता है – भावात्मक एकता स्थापित करता है, जो गार्हस्थ्य जीवन के सुचारु और सुखमय यापन के लिए परम आवश्यक है। साथ ही अपना आधिपत्य भी व्यक्त करता है। घर में अन्तिम निर्णय उसी का मान्य होगा। पत्नी उसकी परिधि से बाहर जाने की कामना न करे। दयानन्द सरस्वती यह क्रिया वधू द्वारा भी कराते हैं।[2] इस अवस्था में यह अर्थ अभीष्ट है कि दोनों मिल कर विवादों का निर्णय कर बुद्धिपूर्वक एकमन से काम करें, और सब प्रकार के व्यभिचार तथा अप्रियभाषणादि को छोड़कर परस्पर प्रीतियुक्त रहें।

वधू को आशीर्वाद :

वर समस्त अभ्यागत व्यक्तियों और सम्बन्धियों को आमन्त्रित करता हुआ यह कहता है कि – 'यह सुमंगली वधू है – आप सब इसको देखें। इसे सौभाग्य प्रदान करके आप सब विदा हों।'[3] गृह्यसूत्रों में तो इस आशीर्वाद मात्र का ही उल्लेख है,[4] किन्तु पारस्कर गृह्यसूत्र पर गदाधर ने अपने भाष्य में इसी समय सौभाग्यवती पुत्रवती नारियों के द्वारा वधू को सिन्दूर लगाने के लौकिक कृत्य का भी विधान किया है।[5]

वृषभचर्म पर वधू को आसीन कराना :

पारस्कर गृह्यसूत्र एवं गोभिल गृह्यसूत्र में आशीर्वाद के पश्चात् एक और कृत्य प्राप्त होता है जिसमें एक सबल पुरुष - सम्भवतः वर - वधू को उठा कर चारों ओर से परिवृत घर में पहले से बिछे बैल के लाल चमड़े पर बिठाता है।[6] वृषभ वीर्यसेचन में प्रमाण या आदर्शरूप माना गया है। वृषभ चर्म भी उर्वरता एवं समृद्धि का प्रतीक माना जाता है, अतः पुत्रोत्पत्ति की दृष्टि से यह कृत्य किया जाता था। वृषभ सात्त्विक शक्ति का प्रतीक भी है। अथर्ववेद में भी यह कृत्य प्राप्त होता है।[7]

विवाहदक्षिणा :

विवाह विधि सम्पन्न कराने वाले आचार्य को दक्षिणा दी जाती है। पारस्कर एवं

---

१. पा०गृ० १.८.८. अथास्यै दक्षिणाऽँसमधि हृदयमालभते –
मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

२. दयानन्द सरस्वती – संस्कार विधि – पृष्ठ १४३.

३. ऋ०वे० १०.८५.३३. सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेतन॥

४. मा०गृ० १.२.१.; पा०गृ० १.८.९.

५. पा०गृ० १.८.९. पर गदाधर भाष्य
पतिपुत्रान्विता भव्याश्चतस्राः सुभगा अपि।
सौभाग्यमस्यै दद्युस्ताः मंगलाचारपूर्वकम्।

६. गो०गृ० २.३.३.; पा०गृ० १.८.१०.

७. अ०वे० १४.२.२२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शांखायन ने ब्राह्मण के विवाह में एक गाय, राजा या क्षत्रिय के विवाह में एक गाँव और वैश्य के विवाह में एक अश्व दक्षिणा में देने का विधान किया है।[१] किन्तु गोभिल ने केवल एक गाय देने का विधान किया है।[२]

ध्रुवदर्शन तथा अरुन्धती दर्शन :

विभिन्न गृह्यसूत्रों में वधू को विभिन्न नक्षत्र दिखाने का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु प्रायः सभी ने ध्रुव एवं अरुन्धती नक्षत्र दिखाने का वर्णन अवश्य किया है।[3] केवल पारस्कर गृह्यसूत्र ने एकमात्र ध्रुवदर्शन ही वर्णित किया है, अरुन्धतीदर्शन नहीं।[४] वर वधू को ध्रुवतारा दिखाता है और वधू पतिकुल में ध्रुव होने की प्रतिज्ञा करती है।[५] इसी प्रकार वर वधू को अरुन्धतीदर्शन कराता है और चाहे वधू अरुन्धती नक्षत्र को न देख सके तथापि यही कहती है कि 'मैं देखती हूँ।'[६] तदनन्तर दाम्पत्य धर्म एवं पतिकुल में पत्नी की स्थिरता के लिए वर यह श्लोक पढ़ता है—'जैसे ये अन्तरिक्ष, पृथिवी, यह संसार और ये पर्वत सब स्थिर हैं, इसी प्रकार यह स्त्री भी पतिकुल में स्थिर रहे।'[७]

कालिदास ने भी कुमारसम्भव में वर द्वारा वधू को ध्रुवदर्शन कराए जाने का वर्णन किया है।[८]

वधू का उद्वाह :

इन कृत्यों के पश्चात् वर अपने घर ले जाने के लिए वधू को उपयुक्त वाहन पर आरुढ़ कराता है[९] और मन्त्र पढ़ता है – 'हे पत्नी ! देवजन तुम्हें यहाँ से मेरे घर ले जाकर – उसकी स्वामिनी बना दें और हम दोनों गार्हस्थ्य यज्ञ को करते रहें।'[१०]

---

१. शां०गृ० १.१४.१३-१७.
पा०गृ० १.८.१४-१७ आचार्याय वरं ददाति ॥ गौर्ब्राह्मणस्य वरः ॥
ग्रामो राजन्यस्य ॥ अश्वो वैश्यस्य ॥

२. गो०गृ० २.३.२२. गौर्दक्षिणा ।

३. गो०गृ० २.२.८-१२.; आ०गृ० १.५.२२.

४. पा०गृ० १.८.१९.

५. गो०गृ० २.२.८. ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् ।

६. पा०गृ० १.८.२०. सा यदि न पश्येत्पश्यामीत्येव ब्रूयात् ।

७. गो०गृ० २.२.१२. ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदञ्जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता: इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ।

८. कु०स० ७.८५.

९. ऋ०वे० १०.८५.२०. सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥
गो०गृ० २.४.१.

१०. ऋ०वे० १०.८५.२६. पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥
आ०गृ० १.६.१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पिता के घर से पति के घर जाते समय स्वाभाविक रूप से रोती हुई कन्या के रुदन को भी गृह्यसूत्रों ने एक आचार का रूप दे डाला है। आश्वलायन एवं शांखायन ने विदा होते समय वधू के रोने पर वर द्वारा एक मन्त्र के पाठ का वर्णन किया है।[1] आपस्तम्ब का मत है कि यदि वधू या उसके आत्मीयजन विवाह विधि के मध्य रोएँ तो यह श्लोक पढ़ा जाए।[2]

गृहप्रवेशनीय होम :

वर एवं वधू जब वर के घर में प्रवेश करते थे तो होम किया जाता था।[3] घर के लोग दम्पति का स्वागत करते थे और उसे घर की साम्राज्ञी होने का आशीर्वाद देते थे।

त्रिरात्र व्रत :

विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद पतिगृह में वधू के आ जाने पर भी वर-वधू को त्रिरात्रव्रत का पालन करना होता था। इसमें वर एवं वधू लवण एवं क्षारयुक्त भोजन नहीं करते थे, भूमि पर शयन करते थे. केवल दुग्धपान करते थे और सहवास से दूर रह कर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।[4] गृह्यसूत्रों ने इस व्रत की अवधि एक वर्ष, अथवा छह मास, अथवा चार मास, अथवा बारह रात्रि अथवा कम से कम तीन रात्रि मानी है। त्रिरात्रिपर्यन्त इस व्रत का पालन अनिवार्य होने के कारण ही इस कृत्य का नाम त्रिरात्रव्रत पड़ा।

इस व्रत में पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन की व्याख्या आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के भाष्यकार सुदर्शनाचार्य ने इस प्रकार की है कि – 'इस व्रत में केवल सहवास ही निषिद्ध नहीं है वरन् परस्पर दर्शन, काम-सम्बन्धी वार्तालाप, एकान्त में बैठना आदि भी वर्जित है।'[5] वात्स्यायन ने भी कामसूत्र में त्रिरात्र व्रत का उल्लेख किया है।[6]

आपस्तम्ब एवं बौधायन गृह्यसूत्र ने इस त्रिरात्रव्रत का विशिष्ट ढंग से वर्णन किया है।[7] उनके अनुसार नवविवाहित दम्पति पृथिवी पर एक ही शय्या पर तीन रात्रियों तक सोएँ, किन्तु उनके मध्य में चन्दन लिप्त तथा वस्त्र से आवृत अथवा सूत्र से बँधी हुई उदुम्बर की लकड़ी रखी रहे। चौथी रात्रि को वह लकड़ी इन ऋचाओं को बोलकर जल में फेंक दी जाए – 'हे विश्वावसु! यह कन्या अब पतिवती है; तुम यहाँ से उठो – मैं स्तोत्र और नमस्कार द्वारा तुम्हारा स्तवन करता हूँ। पिता के घर रहने वाली किसी अन्य कन्या की तुम कामना करो – वही तुम्हारा भाग है।'[8]

---

१. आ०गृ० १.६.४.; शां०गृ० १ १५.२.
अ०वे० १४.१.४६. जीवं कदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे।
२. आप०गृ० २.४.६.
३. गो०गृ० २.४.१०.; आ०गृ० १.६.९., शां०गृ० १.१६.१-२.
४. पा०गृ० १.८.२१.; गो०गृ० २.२.१५.; आ०गृ० १.६.११.,
५. आ०गृ० ३.८.९. पर सुदर्शनाचार्य का भाष्य।
६. का०सू० ३.२.१.
७. बौ०गृ० १.५.१७-१८.; आप०गृ० ३.८.९.
८. ऋ०वे० १०.८५.२१-२२. उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि॥
उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यहाँ उदुम्बर को अग्नि का प्रतीक माना गया है इसीलिए उसे विश्वावसु – सब में निवास करने वाला कहा गया है। अग्नि ही वधू को पुरुषपति को देने वाला माना गया है।

त्रिरात्रव्रत वर-वधू को यौनजीवन में संयम का पाठ तो पढ़ाता ही था – इस व्रत का उद्देश्य उदात्त गुणों से युक्त पुत्र प्राप्त करना था। आश्वलायन ने प्रतिपादित किया कि एक वर्ष तक पति-पत्नी द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन किए जाने पर उन्हें ऋषिपुत्र की प्राप्ति होगी।[1] बौधायन ने भी तीन रात्रि अथवा बारह रात्रि अथवा चार मास आदि भिन्न-भिन्न समय पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का फल क्रमशः उदात्ततर गुणों से युक्त पुत्र की प्राप्ति बताया है।[2]

चतुर्थीकर्म :

त्रिरात्रव्रत के समाप्त होने पर चौथे दिन पति प्रातः काल घर में गृह्याग्नि की प्रतिष्ठा करके अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र एवं गन्धर्व को आज्य आहुतियाँ देता है।[3] आहुतियाँ देने के पश्चात् वह इस मन्त्र के साथ वधू का अभिषिञ्चन करता है – 'जो तुम्हारे पति, सन्तति, पशु गृह और यश को नष्ट करने वाले तत्त्व हैं, उनको मैं उपपति आदि दोषों का मारक तत्त्व बनाता हूँ, जिससे तुम वृद्धावस्था पर्यन्त निर्दुष्ट रूप में मेरे साथ निवास करती रहो।'[4]

त्रिरात्रव्रत के पश्चात् चौथे दिन सम्पन्न होने के कारण यह कृत्य चतुर्थी कर्म कहलाता है।

स्थालीपाक :

चतुर्थीकर्म की समाप्ति पर वर अपनी पत्नी को कुछ पक्वान्न यह कहता हुआ खिलाता है कि – 'मैं अपने प्राणों से तेरे प्राणों को, अपनी अस्थियों से तेरी अस्थियों को, अपने मांस से तेरे मांस को और अपनी त्वचा से तेरी त्वचा को धारण करता हूँ।'[5] इसके भाष्य में गदाधर ने स्थालीपाक को वर वधू के सहभोजन के रूप में वर्णन किया है।[6] सामान्य रूप से पत्नी के साथ भोजन करना निषिद्ध है,[7] किन्तु गदाधर ने विवाह तथा यात्रा में पतिपत्नी के सहभोजन को पापमूलक नहीं माना है।[8] स्थालीपाक के इस कृत्य से पतिपत्नी का ऐक्य सूचित होता है।

---

१. आ०गृ० १.८.११. संवत्सरं वैक ऋषिर्जायत।
२. बौ०गृ० १.५.१७-१८,
३. गो०गृ० २.५.२-४.; पा०गृ० १.११.१-४.
   शां०गृ० १.१८., खा०गृ० १.४.२२.
४. पा०गृ० १.११.४. या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी
   यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नीं तत एनां करोमि सा
   जीर्य त्वं मया सहासौ।
५. पा०गृ० १.११.५.
६. पा०गृ० १.११.५. पर गदाधर भाष्य
७. म०स्मृ० ४.४३. नाश्नीनाद्भार्यया सार्धम्।
८. पा०गृ० १.११.५. पर गदाधर भाष्य
   अत्र स्त्रिया सह वरोऽपि समाचाराद्भोजनं करोति।
   स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोष इत्याह हेमाद्रौ
   प्रायश्चित्तकाण्डे गालवः –
   एकयानसमारोह एकपात्रे च भोजनम्।
   विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक्।
   मिताक्षरायामप्येवम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गृह्यसूत्रों में चतुर्थीकर्म अथवा स्थालीपाक के साथ साथ विवाहविधि समाप्त हो जाती है। उनमें इसके पश्चात् अन्य कोई कृत्य प्राप्त नहीं होता। किन्तु परवर्ती निबन्धों तथा पद्धतियों ने विवाह मण्डपोद्वासन तथा देवोत्थापन क्रिया का भी वर्णन किया है। इसमें विभिन्न देवी-देवता अपने अपने स्थान को विदा कर दिए जाते हैं और विवाह मंडप हटा दिया जाता है।[1] यह क्रिया विवाह के पश्चात् किसी सम दिवस को सम्पन्न होनी चाहिए। पाँचवें एवं सातवें दिन के अतिरिक्त अन्य विषम दिन निषिद्ध हैं।[2]

संस्कृत साहित्य में सूत्रकाल तक विवाह विधि का उपर्युक्त स्वरूप रहा था। वैदिक कर्म-काण्ड के आधार पर धर्मशास्त्रों ने विवाह प्रक्रिया का वर्णन किया और लौकिक आचार को यथासम्भव प्रविष्ट न करने का प्रयत्न किया। किन्तु सूत्रकाल के उपरान्त भाष्यकारों, निबन्धकारों एवं पद्धतिकर्ताओं ने परिवर्तित एवं परिवर्द्धित होते हुए कृत्यों के लौकिक आचरण-रूप को भी मान्यता प्रदान की। वर्तमान काल में विवाह विधि के दो मुख्य रूप प्राप्त होते हैं। एक सनातनियों की विवाह विधि है जो मुख्यतया पारस्कर गृह्यसूत्र और उसके गदाधर भाष्य पर अवलम्बित है; दूसरी आर्य समाज की विवाह विधि है जो स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा वेदों और गृह्यसूत्रों के आधार पर 'संस्कारविधि' नामक ग्रन्थ में वर्णित हुई। सनातनी विवाह-पद्धति में लौकिक प्रथाओं को मान्यता देने के कारण कुछ अधिक वैवाहिक कृत्य प्राप्त होते हैं जिनको आर्य समाजी पद्धति में स्थान नहीं दिया गया है। इन दोनों प्रकार की पद्धतियों के वैवाहिक कृत्यों की तालिका परिशिष्ट 'अ' में ही प्रस्तुत कर दी गई है।

---

१. काणे, पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग एक पृष्ठ ३०६.

२. पांडेय, राजबली – हिन्दू संस्कार, पृष्ठ २८५ पर उद्धृत गर्गपद्धति

समे च दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधैः।
षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पंचमसप्तमौ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अष्टम अध्याय

विवाह विच्छेद, पुनर्विवाह एवं बहुविवाह

दियाह विच्छेद
पुरुष का पुनर्विवाह एवं बहुविवाह
स्त्री का पुनर्विवाह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नियोग

विवाह एवं नियोग का सम्बन्ध :

संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार का विवेचन तब तक सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जब तक नियोग प्रथा पर विचार न कर लिया जाए। पुत्रहीन व्यक्ति की पत्नी अथवा विधवा का किसी अन्य नियुक्त पुरुष के सहवास से पुत्र उत्पन्न करना नियोग प्रथा है। सामान्यतः विवाह के साथ नियोग का कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह नियोग प्रथा विवाह से जुड़ी हुई ही दिखाई देती है।

जैसा कि विवेचन किया जा चुका है कि संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार के तीन प्रयोजन पाए जाते हैं। विभिन्न सूत्रकारों ने इन तीनों प्रयोजनों में प्रजा रूप प्रयोजन को बहुत महत्ता प्रदान की है, क्योंकि पुत्र धर्म पालन में भी सहायक होता है और पुत्रोत्पत्ति में रति रूप प्रयोजन भी स्वयंसिद्ध हो जाता है। नियोग प्रथा का उद्भव भी केवल पुत्रोत्पत्ति के प्रयोजन से हुआ। रोगी अथवा नपुंसक व्यक्ति यदि पुत्रोत्पत्ति करने में असमर्थ था, तो विवाह ही लक्ष्यभ्रष्ट होता था, अतः नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करके विवाह के लक्ष्य को पूर्ण किया जा सकता था।

विवाह संस्कार की विधि के अन्तर्गत चतुर्थीकर्म नामक जो कृत्य पाया जाता है, उसमें वर एवं वधू यज्ञ में विभिन्न आहुतियाँ आदि डालकर उसके उपरान्त ही गर्भाधान में प्रवृत होते हैं। नियोग में भी स्त्री एवं नियुक्त पुरुष ब्राह्मणों और अतिथियों आदि को भोजन कराके तथा यज्ञादि सम्पन्न करके ही सहवास करते हैं। अतः धार्मिक कृत्यों की इस समानता से भी विवाह संस्कार और नियोग का सम्बन्ध स्पष्ट है।[1]

इस प्रकार प्रयोजन और धार्मिक कृत्यों की समानता के कारण विवाह संस्कार के विवेचन में नियोग का विवेचन स्वतः सिद्ध है।

वेदों के समय में नियोग प्रथा का प्रचलन नहीं था, यह मानते हुए डॉ० उपाध्याय ने इसके दो कारण दिए हैं।[2] – प्रथमतः, आर्यजाति पौरुष युक्त थी अतः पत्नी अपने पति से ही पुत्र उत्पन्न कर लेती थी। व्यक्ति अपनी सन्तानोत्पादन शक्ति को व्यर्थ ही विलासादि में नहीं गँवाते थे। द्वितीयतः, वेदों के समय में विधवा विवाह प्रचलित था, अतः पुत्रहीन विधवा को नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

---

१. व०ध० १७.५२ पाणिग्राहवदुपचरेत्।

२. उपाध्याय, बी०एस० – वीमेन इन ऋग्वेद, पृष्ठ ९८-१००.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वामी दयानन्द सरस्वती का मत इससे विपरीत है। उन्होंने नियोग का समर्थन करते हुए अनेक ऋग्वेदीय मन्त्र दिए हैं। स्वामीजी के अनुसार वैदिक काल में भी नियोग प्रथा प्रचलित थी।[१] मैक्डानल एवं कीथ ने भी ऋग्वेद के एक मन्त्र से नियोग के संकेत का उल्लेख किया है।[२] मनु (९.६६.) पर भाष्य लिखते हुए मेधातिथि ने भी उपर्युक्त ऋग्वेदीय मन्त्र को नियोग का ही सूचक माना है। वस्तुतः ऋग्वेद के मन्त्र विवादास्पद हैं। फिर भी अधिकांश विद्वानों ने इन मन्त्रों के आधार पर ही वैदिक युग में नियोग प्रथा को प्रचलित माना है।

महाभारत एवं धर्मसूत्रों के समय में नियोग प्रथा पूर्णतया प्रतिष्ठित थी— यह तथ्य इन ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है। महाभारत के अनेक प्रमुख चरित्र नियोग द्वारा ही उत्पन्न हुए थे। समस्त कुरुवंश ही इस नियोग प्रथा का ऋणी है। महाभारत काल में नियोग के इतने उदाहरण मिलने का कारण यह हो सकता है, कि क्षत्रिय लोग राज्य प्राप्त करके विलास एवं व्यभिचार में लिप्त हो गए। फलतः उनकी सन्तानोत्पादन शक्ति क्षीण हो गई अथवा वे असमय में ही कालकवलित हुए। पाण्डु एवं विचित्रवीर्य ऐसे ही उदाहरण हैं।[३] यह एक अन्य विलक्षण तथ्य है कि यद्यपि धर्मसूत्रकारों तथा स्मृतिकारों ने नियोग का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है, तथापि नियोग के प्रसंग संस्कृत साहित्य में महाभारत के अतिरिक्त और कहीं प्राप्त नहीं होते।

उद्देश्य एवं आधार :

महाभारत के जिन प्रसंगों में नियोग प्राप्त होता है उन्हें दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है; प्रथमतः पति के मर जाने पर विधवा स्त्री एवं नियुक्त पुरुष मिल कर सन्तान उत्पन्न करें, जैसे अम्बिका एवं अम्बालिका से व्यास ने पुत्र उत्पन्न किए।[४] द्वितीयतः पति के रोगी अथवा नपुंसक होने पर पति की आज्ञा एवं अनुमति से पत्नी नियुक्त पुरुष से पुत्र उत्पन्न करे। कुन्ती, माद्री, आदि के उदाहरण ऐसे ही हैं।[५] इन दोनों प्रकार की श्रेणियों में प्रथम श्रेणी के केवल अम्बिका एवं अम्बालिका के ही उदाहरण प्राप्त होते हैं। अन्य सारे प्रसंगों में पति के जीवित रहते ही पत्नी ने नियोग द्वारा पुत्रोत्पत्ति की है। अतः यह सम्भव है कि प्रारम्भ में पति की सन्तानेच्छा से ही यह प्रथा प्रारम्भ हुई हो। वैदिक समय से ही पुत्र को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अतः पारिवारिक लाभ, वंशवृद्धि एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पति ने ही अपनी पत्नी को किसी अन्य उत्तम पुरुष से गर्भधारण करने की अनुमति दी होगी। कालान्तर में विधवा स्त्री को भी नियोग द्वारा पुत्रप्राप्ति की अनुमति दे दी गई, क्योंकि विवाह में कौमार्य गुण अनिवार्य मान लिए जाने पर पुरुष विधवाओं से विवाह नहीं करते होंगे।[६]

---

१. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ ६९-७४.

२. मैक्डानल एवं कीथ – वैदिक इण्डेक्स, पृष्ठ ४२४ पर उद्धृत ऋ०वे० १०.४०.२.

३. महाभारत १.११८.२१.; १.९६.५७-५८.

४. महाभारत १.१००.८-९; १.१००.१६-१७.

५. महाभारत १.११४.३-१०; १.११५.१६-१७,

६. अल्तेकर, ए०एस० – पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ १४९.
दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ ७१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भरण पोषण करे।'[1] इससे स्पष्ट है कि यहाँ त्याग से तात्पर्य सहवास त्याग से है, विवाह विच्छेद से नहीं।

मनु ने एक स्थल पर वाग्दत्ता कन्या के त्याग का विधान किया है, किन्तु उसमें भी मनु ने दो शर्तें सम्मुख रक्खी हैं। यदि पिता ने कन्या के विभिन्न दोषों को बिना बताए ही वाग्दान कर दिया हो तो ऐसी दोषी कन्या को सप्तपदी से पूर्व ही त्याग देने वाला व्यक्ति दोषी नहीं होता।[2] विवाह विधि के अन्तर्गत विवाह पूर्ण तभी माना जाता है जब सप्तपदी हो जाए – पाणिग्रहण-मन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे। अतः सप्तपदी से पूर्व पति वाग्दत्ता कन्या को त्याग सकता है यदि कन्या के पिता ने पहले ही उस कन्या के दोष न बता दिए हों। इससे स्वाभाविक निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि यदि पिता ने कन्या के दोष बता कर वाग्दान किया था, तो सप्तपदी से पूर्व भी पति कन्या को त्याग नहीं सकता। और यदि सप्तपदी हो जाए, तब तो किसी भी प्रकार विवाह को विच्छिन्न नहीं किया जा सकता।

सूत्रकारों तथा स्मृतिकारों के अतिरिक्त लौकिक संस्कृत काव्यों, नाटकों तथा गद्यकाव्यों में भी कहीं विवाह विच्छेद के प्रसंग प्राप्त नहीं होते। वाल्मीकि रामायण में तो आदर्श समाज का चित्रण होने से ऐसे प्रसंगों का अभाव पाया जाना उचित ही है, किन्तु महाभारत में भी विवाह विच्छेद का एक भी प्रसंग प्राप्त नहीं होता। महाभारत के समाज में नैतिकता का स्तर बहुत उच्च भी नहीं है, तथापि विच्छेद के प्रसंग न होना यही सूचित करता है कि समाज में विवाह विच्छेद था ही नहीं। महाभारत के सुकन्या च्यवन-प्रसंग से इस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजा शर्याति की रूप यौवन-सम्पन्न पुत्री सुकन्या का विवाह वृद्ध च्यवन ऋषि से हुआ था। एक दिन वन में भ्रमण करते हुए अश्विनीकुमारों ने रूपवती सुकन्या को देखा और उस पर मोहित हो गए। उस समय अश्विनीकुमारों ने सुकन्या से अनुरोध किया कि उस वृद्ध पति को त्याग कर वह अश्विनी-कुमारों में से किसी एक को पति बना कर सुखपूर्वक रहे। किन्तु सुकन्या ने इस प्रस्ताव को ठुकरा कर अपने वृद्ध पति में ही अपना अनुराग प्रगट किया।[3]

सूत्रों, स्मृतियों एवं काव्यों आदि में कहीं भी विवाह विच्छेद के नियम अथवा प्रसंग प्राप्त न होने पर भी कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में कुछ स्थितियों में विच्छेद का प्रावधान रक्खा है। 'यदि पति नहीं चाहता तो पत्नी अलग नहीं हो सकती; यदि पत्नी नहीं चाहती तो पति विलग नहीं हो सकता; किन्तु यदि पति पत्नी दोनों में ही पारस्परिक विद्वेष है तो विवाह-विच्छेद सम्भव है।'[4] कौटिल्य के इस कथन से ज्ञात होता है कि एक पक्ष की रुचि मात्र से विवाह को विच्छिन्न नहीं किया जा सकता था। जब पति पत्नी दोनों में परस्पर प्रेम और स्नेह का नितान्त अभाव हो जाए और दोनों एक दूसरे से द्वेष और घृणा करते हों तब विवाह तोड़ा जा सकता था। इस एक शर्त के अतिरिक्त कौटिल्य ने एक शर्त और रक्खी थी कि यदि विवाह धर्म्य प्रकार

---

१. बौ०ध० २.२.४.६.

२. म०स्मृ० ९.७२. विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम्॥

३. महाभारत ३.१२३.

४. कौ०अर्थ० ३.२.१७-१९. अमोक्ष्या भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या॥
भार्यायाश्च भर्ता॥ परस्परं द्वेषान्मोक्षः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से सम्पन्न हुआ था तो किसी भी स्थिति में विच्छेद नहीं हो सकता।'[1] अर्थात् यदि पति पत्नी ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष अथवा दैव प्रकार से विवाहित हुए हैं तो पति पत्नी में विद्वेष होने पर भी विच्छेद नहीं हो पाएगा। प्रकारान्तर से इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि समाज विवाह के अधर्म्य प्रकारों – गान्धर्व, आसुर, राक्षस एवं पैशाच – को प्रोत्साहन नहीं देता था अतः इन विवाह प्रकारों में से किसी विवाह प्रकार द्वारा विवाहित पति पत्नी में यदि विद्वेष होता, तो एक दूसरे की सहमति से वे वियुक्त हो सकते थे। समाज में हर प्रकार की रुचि और प्रवृत्ति के व्यक्ति होते हैं – इसी तथ्य को ध्यान में रख कर कौटिल्य ने सम्भवतः अपवाद रूप में विवाह विच्छेद का नियम प्रस्तुत किया।

संस्कृत साहित्य के समग्र स्वरूप में कहीं भी विवाह विच्छेद एक सामान्य प्रथा के रूप में प्राप्त नहीं होता – इस के एकाधिक कारण खोजे जा सकते हैं।

प्रथमतः, व्यभिचार से ही दाम्पत्य की निष्ठा एवं प्रणय खण्डित होते हैं। पति अथवा पत्नी के परस्त्री अथवा परपुरुष के प्रति आकर्षित होने और उनसे सम्बन्ध हो जाने से ही पति पत्नी के बीच विद्वेष एवं घृणा पनपती है। इसी विद्वेष से विवाह विच्छेद की सम्भावना होती है। संस्कृत साहित्य में सर्वत्र व्यभिचार की बहुत निन्दा की गई। व्यभिचारी पुरुष तथा व्यभिचारिणी स्त्री दोनों ही सामाजिक निन्दा के पात्र बनते और दण्ड के भागी होते। व्यभिचारिणी स्त्री को जनसमूह के सम्मुख चौराहे पर कुत्तों से कटवाए जाने का नियम था।[2] व्यभिचारी पुरुष के नाक कान आदि काट कर देश निकाला दे दिया जाता था[3] अथवा जलते हुए लोहे की खाट पर लिटा कर ऊपर से लकड़ियाँ डाल दी जाती थीं जिससे वह दोषी व्यक्ति जल कर मर जाए।[4] जनसमूह के सम्मुख दिए जाने वाले इस दण्ड और सामाजिक अपमान से भयभीत होकर व्यक्ति सामान्यतया व्यभिचार में प्रवृत्त नहीं होते थे। अतः पति पत्नी में पारस्परिक निष्ठा बनी रहने पर विवाह विच्छेद की आवश्यकता ही नहीं होती थी।

द्वितीयतः, संस्कृत साहित्य में विवाह एक संस्कार है, विवाह को धार्मिक मान्यता प्राप्त है। जीवन में धार्मिक कृत्यों को पूर्ण करने के लिए व्यक्ति विवाह द्वारा पत्नी से संयुक्त होता है। पत्नी के बिना यज्ञीय कार्य पूर्ण ही नहीं हो सकते – 'अयज्ञियो हि पुरुषः योऽपत्नीकः।' यह धार्मिक आवश्यकता आजीवन ही बनी रहती है, अतः बीच में ही विवाह विच्छेद नहीं हो सकता। पत्नी एवं सन्तति से संयुक्त होकर व्यक्ति पूर्ण बनता है,[5] इसीलिए मनु ने यह व्यवस्था दी कि

---

१. कौ०अर्थ० ३.२.२२. अमोक्षो धर्मविवाहानामिति।

२. म०स्मृ० ८.३७१. भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥

३. म०स्मृ० ८.३५२. परदाराभिमर्षेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्॥

४. म०स्मृ० ८.३७२. पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्॥
आप०ध० १.९.२५.१-२.

५. म०स्मृ० ९.४५. एतावानेव पुरुषो यज्जायाऽऽत्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृतांगना॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

'मरणपर्यन्त पति पत्नी का परस्पर अव्यभिचार रहे अर्थात् धर्म-अर्थ-काम सम्बन्धी कार्यों में पार्थक्य न हो, यही चरम धर्म है।'[1]

वैवाहिक सौख्य और गार्हस्थ्य धर्म के निष्ठापूर्वक पालन के लिए संस्कृत साहित्य के प्रणेताओं का कैसा चरम आग्रह रहा है यह पहले ही वर्णन किया जा चुका है। विवाह विच्छेद एवं पुर्नविवाह – ये दोनों ही कार्य दाम्पत्य के उस ऋषि प्रणीत आदर्श के विपरीत हैं। किन्तु आदर्श और यथार्थ परस्पर भिन्न होते हैं। हर व्यक्ति की रुचि भिन्न भिन्न होती है – विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः – इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए पुर्नविवाह पर विचार कर लेना अनुचित अथवा अप्रासंगिक नहीं है।

स्त्री और पुरुष दोनों की दृष्टि से पुर्नविवाह को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। संस्कृत साहित्य में सामान्यतया पुरुष के पुर्नविवाह की अनुमति प्राप्त होती है।

पुरुष का पुर्नविवाह एवं बहुविवाह :

विवाह के प्रति स्थापित किए गए विधिनिषेध सम्बन्धी अध्याय में यह लिखा जा चुका है कि पुरुष को अनुलोम क्रम से कई विवाह करने का अधिकार प्राप्त था।[2] एक पत्नी के जीवित रहते हुए ही पुरुष दूसरा विवाह भी कर लेता था। इस दूसरे विवाह के कई कारण हो सकते थे।[3] केवल कामवासना की पूर्तिमात्र के लिए भी पुरुष दूसरा विवाह करते थे - द्वितीया रति-वर्धिनी – अथवा पहली पत्नी के रोगिणी, धूर्त, कटुवादिनी अथवा वन्ध्या होने पर भी पुरुष दूसरा विवाह करता था। मनु ने स्त्रियों के प्रति बड़ा अनुग्रह प्रदर्शित करते हुए इतना और लिखा कि - 'यदि पत्नी रोगिणी हो किन्तु शीलवती एवं मधुरभाषिणी हो तो पति उससे अनुमति लेकर दूसरा विवाह करे, उसका अपमान न करे।'[4] पहली पत्नी से पुत्रोत्पत्ति न होना भी पुरुष के दूसरे विवाह का एक कारण है। कामसूत्र ने व्यवस्था दी कि 'यदि स्त्री से सन्तति उत्पन्न ही न हुई हो, अथवा केवल पुत्रियाँ ही उत्पन्न हुई हों तो स्त्री को चाहिए कि वह स्वयं ही पति को दूसरे विवाह के लिए प्रेरित करे।'[5]

वस्तुतः, किसी विशिष्ट कारण से अथवा मन की चञ्चलता के वशीभूत होकर पुरुष का दूसरा विवाह कर लेना अधर्म समझा ही नहीं जाता था। आपस्तम्ब ने अवश्य पुरुष के बहुविवाह का निषेध किया है – 'यदि पत्नी सन्ततियुक्त हो और धार्मिक कार्यों में सहयोग देती हो तो दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए।'[6] किन्तु महाभारतकार ने पुरुष की बहुपत्नीकता को अधर्म नहीं

---

१. म०स्मृ० ९.१०१. अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥

२. वि०ध० २४.१-४.

३. का०सू० ४.२.१. जाड्यदौःशील्यदौर्भाग्येभ्यः प्रजानुत्पत्तेराभीक्ष्ण्येन।
दारिकोत्पत्तेर्नायकचापलाद्वा सपत्न्यधिवेदनम्॥

४. म०स्मृ० ९.८२. या रोगिणी स्यात्तु हिता सम्पन्ना चैव शीलता।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या न कर्हिचित्॥

५. का०सू० ४.२.२. प्रजानुत्पत्तौ च स्वयमेव सापत्नके चोदयेत्।

६. आप०ध० २.५.११.१२. धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नान्यां कुर्वीत।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

माना ।[१] महाभारत के प्रायः सभी राजाओं की एकाधिक पत्नियाँ थी । रामायण में दशरथ के तीन पत्नियाँ थी । राम यद्यपि जनमानस में एकपत्नीव्रती रूप में प्रसिद्ध हैं तथापि रामायण के एक संस्करण में राम के भी कई पत्नियाँ बताई प्रतीत होती हैं ।[२] संस्कृत के सभी प्रसिद्ध नाटकों में नायकों की कई पत्नियाँ चित्रित को गई है ।

संस्कृत साहित्य के सूत्रकारों ने एक पत्नी के जीवित रहते ही पुरुष को दूसरे विवाह की अनुमति दी है, विधुर पुरुष को तो पत्नी की मृत्यु के तुरन्त बाद पुनर्विवाह कर लेने का आदेश दिया गया है । विधुर पुरुष के तुरन्त पुनर्विवाह के लिए यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि पत्नी-हीन पुरुष अपने धार्मिक कार्यों को पूर्ण नहीं कर सकता – अयज्ञियो वा एषः योऽपत्नीकः । किन्तु संस्कृत साहित्य में सूत्रकारों से पूर्व ब्राह्मण ग्रन्थों के कथन से यह तर्क बहुत समीचीन नहीं ठहरता । ऐतरेय ब्राह्मण ने स्पष्ट कहा कि 'यज्ञ-सम्बन्धी कार्यों को पूर्ण करने के लिए मनुष्य को पुनर्विवाह की आवश्यकता नहीं है । विधुर रह कर भी व्यक्ति वैदिक यज्ञ सम्पन्न कर सकता है । उस व्यक्ति की श्रद्धा ही उसकी पत्नी होती है ।'[३] कालान्तर में सूक्ष्म भावना श्रद्धा को पत्नी मानने के स्थान पर विष्णु ने यह व्यवस्था दी कि 'यज्ञादि कार्यों को सम्पन्न करने के लिए मृत पत्नी की प्रतिमा भी उतनी ही उपयोगी है ।'[४] राम ने अपनी निर्वासिता पत्नी सीता की हिरण्मयी प्रतिकृति को ही पार्श्व में रखकर अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था ।[५] परन्तु क्रमशः लोक में मृत पत्नी की प्रतिमा आदि के स्थान पर दूसरी पत्नी के प्रति ही आग्रह बढ़ता गया । मनु ने यह नियम प्रस्तुत किया कि 'मृत पत्नी का दाहकर्म आदि अन्त्येष्टि संस्कार करके व्यक्ति फिर से विवाह करे, और यज्ञीय अग्नि का आधान पुनः करे ।'[६] याज्ञवल्क्य ने मनु से सहमत होते हुए बिल्कुल ऐसी ही व्यवस्था दी ।[७]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत साहित्य में प्रारम्भ से ही पुरुष के पुनर्विवाह अथवा बहुविवाह का कोई निषेध नहीं था । ऋग्वेद में विवाह का आदर्श अत्यधिक उच्च

---

१. महाभारत १.१८७.२८. एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन ।
महाभारत १.१६९.३६. (बम्बई एडीशन) न चाप्यधर्मः कल्याण बहुपत्नीकता नृणाम् ।

२. वाल्मीकि रामायण – (बम्बई संस्करण) २.८.१२.

३. ऐ०ब्रा० ७.९-१०. तदाहुरपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेदिति । आहरेदित्याहुः ।
यदि नाहरेदनद्धा पुरुषः । तदेषाभियज्ञगाथा गीयते ।
यजेत् सौत्रामण्यामपत्नीकोऽप्यसोमपः । मातापितृणामनृण्यार्थाद्यजेतेति
वचनाच्छ्रुतिः । अपत्नीकः कथमग्निहोत्रं जुहोति । श्रद्धा पत्नी सत्यं
यजमानः श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम् ॥

४. अल्तेकर, ए०एस०–पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन – पृष्ठ १११.
पर उद्धृत विष्णु ।

५. वा०रा० – ७.९१.२५. काञ्चनीं मम पत्नीं च ।

६. म०स्मृ० ५.१६८. भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि ।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥

७. या०स्मृ० १.८९. दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृतवतीं पतिः ।
आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन् ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहे। ....मुझे प्राप्त करने की कामना से तुम अकेले ही इस वन में राम के पीछे-पीछे चले आए हो। किन्तु तुम्हारा मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता। मैं श्रीराम को पति रूप में पाकर फिर अन्य पुरुष की कामना कैसे कर सकती हूँ।'[1] सीता का यह आक्षेप स्पष्ट कर देता है कि पति के मर जाने पर विधवा का फिर पति ग्रहण करना यद्यपि रामायण काल में आर्य जाति के उच्च कुलों में सम्भवतः प्रचलित नहीं था, परन्तु किसी समय यह प्रथा थी अवश्य।

इसी प्रकार महाभारत में नलोपाख्यान से भी स्त्री के पुनर्विवाह की प्रथा का संकेत प्राप्त होता है।[2] कलि के प्रभाव से आविष्ट राजा नल अपनी पत्नी दमयन्ती को वन में एकाकिनी ही सोता छोड़ कर चले गए। अनेक कष्टों को सहती हुई दमयन्ती बहुत दिनों पश्चात् येनकेन प्रकारेण अपने पिता के घर पहुँची। वहाँ राजा नल को खोजने के उसने बहुत उपाय किए। अन्त में उसने एक ब्राह्मण को यह संदेश देकर राजा ऋतुपर्ण के यहाँ भेजा कि दमयन्ती के स्वयंवर में सम्मिलित होइए।[3] वह ब्राह्मण राजा ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँच कर सन्देश दे देता है। स्पष्टतः यह दमयन्ती का द्वितीय स्वयंवर था, किन्तु ऋतुपर्ण को यह सुनकर तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि रूप में नियुक्त नल ने यह सुन कर पहले तो दमयन्ती को चञ्चलस्वभाव वाली कहा, लेकिन अपनी निष्ठुरता का ध्यान करके उसने दमयन्ती के कार्य को नितान्त गर्हित नहीं माना।[4] महाभारत में यद्यपि दमयन्ती का दूसरा विवाह होता नहीं है तथापि उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रसंग से पुनर्विवाह के यदा कदा प्राप्त होने का आभास अवश्य मिलता है। पुनर्विवाह यदि निषिद्ध और समाजनिन्दित कार्य होता तो दमयन्ती ऐसा सन्देश भेजने की बात भी नहीं सोच सकती थी।

रामायण एवं महाभारत के इन दोनों प्रसंगों से पुनर्विवाह के प्रचलन का निष्कर्ष निकलने पर भी एक अन्य तथ्य भी साथ ही साथ उदित होता है। रामायण एवं महाभारत के युग में आर्य जाति की संस्कृति एवं परम्परा का आर्येतर जातियों की संस्कृति से संघर्ष एवं सम्मिलन हो रहा था। उन आर्येतर जातियों में एक पति के रहते दूसरा पति कर लेना अथवा विधवा का पुनर्विवाह निषिद्ध नहीं था। शूर्पनखा विधवा थी किन्तु फिर भी उसने बिना किसी संकोच के राम को अपना पति बनाना चाहा।[5] सुग्रीव के भाई बालि ने अपने छोटे भाई की पत्नी को

---

१. वा०रा० ३.४५.१-२६. सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥
तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा।
कथं..........उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम्॥

२. महाभारत ३.५०-७०.

३. महाभारत ३.६८.२१.

ऋतुपर्णं वचो ब्रूहि पतिमन्यं चिकीर्षति।
आस्थास्यति पुनर्भैमी दमयन्ती स्वयंवरम्॥

४. महाभारत ३.६९.३-७

५. वा०रा० ३.१७.२४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपने अन्तःपुर में सम्मिलित कर लिया था और उसने कोई विरोध भी नहीं किया।[१] अपने पति बालि की मृत्यु पर करुण विलाप करने वाली तारा ने वानरराज सुग्रीव के साथ पुनः विवाह कर लिया।[२] नागकन्या उलूपी ने विधवा होने पर भी अर्जुन से विवाह कर लिया था।[३] राक्षसों, वानरों और नागों के इन उदाहरणों से आर्येतर जातियों में पुनर्विवाह का ज्ञान हो जाता है। अतः यह भी सम्भव है कि सीता द्वारा लक्ष्मण पर आक्षेप और दमयन्ती का पुनः स्वयम्वर का सन्देश – इन्ही आर्येतर जातियों का समाज पर पड़ते प्रभाव का प्रतिफलन मात्र हो। क्योंकि इन दो प्रसंगों के अतिरिक्त रामायण एवं महाभारत में अन्य कहीं आर्य स्त्री के पुनर्विवाह का संकेत नहीं मिलता। इसके विपरीत अक्षतयोनि कन्या का पुनर्विवाह भी महाभारत में निषिद्ध ठहराया गया है।[४] दो बार कन्यादान करने वाला व्यक्ति जन्मान्तर में कृमियोनि में उत्पन्न होता है।[५] इसके अतिरिक्त अर्जुन एवं दुर्योधन की कुछ उक्तियों में विधवा विवाह के प्रति घृणा की भावना भी मिलती है। जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा करते हुए अर्जुन कहता है – 'प्रतिज्ञा पूरी न करने पर मुझे विधवा स्त्री ग्रहण करने का पाप हो।'[६] इसी प्रकार एक स्थल पर दुर्योधन कहता है – 'इस श्रीहीन पृथिवी को भोगने का उत्साह मुझे वैसे ही नहीं है जैसे विधवा को भोगने के प्रति निरुत्साह हो।'[७]

महाभारत एवं रामायण में स्त्री के पुनर्विवाह के प्रति निषेध की जो क्रमिक प्रवृत्ति है वह मनु आदि सूत्रकारों में शतमुखी हो उठी है। मनु ने स्त्री के एक ही विवाह का विधान किया है।[८] पतिव्रता स्त्री का केवल एक ही पति होता है।[९] याज्ञवल्क्य ने भी यही कहा कि 'अपनी इच्छानुसार पति को त्याग कर दूसरे को ग्रहण करती है वह स्त्री स्वैरिणी होती है।'[१०] कौटिल्य आदि ने पति के संन्यासी हो जाने पर पत्नी को पुनर्विवाह की अनुमति दे दी थी किन्तु गौतम ने वह भी निषिद्ध कर दिया – 'पति के प्रव्रजित हो जाने पर पत्नी सभी विषय प्रसंगों से निवृत्त हो जाए।'[११] एक बार विवाहिता स्त्री से पुनर्विवाह कर लेने वाला पुरुष भी पतित माना जाता था तथा उसे श्राद्ध आदि में बुलाने का निषेध किया गया।[१२]

---

१. वा०रा० ४.१०.२७.
२. वा०रा० ४.२३.१-३०; ४.३१.२२.
३. महाभारत १.२०६.१९-२०.
४. महाभारत १३.४४.५०.
५. महाभारत १३.११२.७३.
६. महाभारत ७.५१.२७. भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
७. महाभारत ९.३०.४२. न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम्॥
८. म०स्मृ० ९.४७. सकृत्कन्या प्रदीयते।
९. म०स्मृ० ५.१६२. न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते।
१०. या०स्मृ० १.६७ स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्।
११. गौ०ध० २.९.१६ प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसंगात्।
१२. म०स्मृ० ३.१६६; या०स्मृ० १.२२४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहे। ....मुझे प्राप्त करने की कामना से तुम अकेले ही इस वन में राम के पीछे-पीछे चले आए हो। किन्तु तुम्हारा मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता। मैं श्रीराम को पति रूप में पाकर फिर अन्य पुरुष की कामना कैसे कर सकती हूँ।'[1] सीता का यह आक्षेप स्पष्ट कर देता है कि पति के मर जाने पर विधवा का फिर पति ग्रहण करना यद्यपि रामायण काल में आर्य जाति के उच्च कुलों में सम्भवत: प्रचलित नहीं था, परन्तु किसी समय यह प्रथा थी अवश्य।

इसी प्रकार महाभारत में नलोपाख्यान से भी स्त्री के पुनर्विवाह की प्रथा का संकेत प्राप्त होता है।[2] कलि के प्रभाव से आविष्ट राजा नल अपनी पत्नी दमयन्ती को वन में एकाकिनी ही सोता छोड़ कर चले गए। अनेक कष्टों को सहती हुई दमयन्ती बहुत दिनों पश्चात् येनकेन प्रकारेण अपने पिता के घर पहुँची। वहाँ राजा नल को खोजने के उसने बहुत उपाय किए। अन्त में उसने एक ब्राह्मण को यह संदेश देकर राजा ऋतुपर्ण के यहाँ भेजा कि दमयन्ती के स्वयंवर में सम्मिलित होइए।[3] वह ब्राह्मण राजा ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँच कर सन्देश दे देता है। स्पष्टतः यह दमयन्ती का द्वितीय स्वयंवर था, किन्तु ऋतुपर्ण को यह सुनकर तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि रूप में नियुक्त नल ने यह सुन कर पहले तो दमयन्ती को चञ्चलस्वभाव वाली कहा, लेकिन अपनी निष्ठुरता का ध्यान करके उसने दमयन्ती के कार्य को नितान्त गर्हित नहीं माना।[4] महाभारत में यद्यपि दमयन्ती का दूसरा विवाह होता नहीं है तथापि उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रसंग से पुनर्विवाह के यदा कदा प्राप्त होने का आभास अवश्य मिलता है। पुनर्विवाह यदि निषिद्ध और समाजनिन्दित कार्य होता तो दमयन्ती ऐसा सन्देश भेजने की बात भी नहीं सोच सकती थी।

रामायण एवं महाभारत के इन दोनों प्रसंगों से पुनर्विवाह के प्रचलन का निष्कर्ष निकलने पर भी एक अन्य तथ्य भी साथ ही साथ उदित होता है। रामायण एवं महाभारत के युग में आर्य जाति की संस्कृति एवं परम्परा का आर्येतर जातियों की संस्कृति से संघर्ष एवं सम्मिलन हो रहा था। उन आर्येतर जातियों में एक पति के रहते दूसरा पति कर लेना अथवा विधवा का पुनर्विवाह निषिद्ध नहीं था। शूर्पनखा विधवा थी किन्तु फिर भी उसने बिना किसी संकोच के राम को अपना पति बनाना चाहा।[5] सुग्रीव के भाई बालि ने अपने छोटे भाई की पत्नी को

---

१. वा०रा० ३.४५.१.-२६. सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥
तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा।
कथं..........उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम्॥

२. महाभारत ३.५०-७०.

३. महाभारत ३.६८.२१.

ऋतुपर्णं वचो ब्रूहि पतिमन्यं चिकीर्षति।
आस्थास्यति पुनर्भैमी दमयन्ती स्वयंवरम्॥

४. महाभारत ३.६९.३-७

५. वा०रा० ३.१७.२४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपने अन्तःपुर में सम्मिलित कर लिया था और उसने कोई विरोध भी नहीं किया।[१] अपने पति बालि की मृत्यु पर करुण विलाप करने वाली तारा ने वानरराज सुग्रीव के साथ पुनः विवाह कर लिया।[२] नागकन्या उलूपी ने विधवा होने पर भी अर्जुन से विवाह कर लिया था।[३] राक्षसों, वानरों और नागों के इन उदाहरणों से आर्येतर जातियों में पुर्नविवाह का ज्ञान हो जाता है। अतः यह भी सम्भव है कि सीता द्वारा लक्ष्मण पर आक्षेप और दमयन्ती का पुनः स्वयम्वर का सन्देश – इन्ही आर्येतर जातियों का समाज पर पड़ते प्रभाव का प्रतिफलन मात्र हो। क्योंकि इन दो प्रसंगों के अतिरिक्त रामायण एवं महाभारत में अन्य कहीं आर्य स्त्री के पुर्नविवाह का संकेत नहीं मिलता। इसके विपरीत अक्षतयोनि कन्या का पुर्नविवाह भी महाभारत में निषिद्ध ठहराया गया है।[४] दो बार कन्यादान करने वाला व्यक्ति जन्मान्तर में कृमियोनि में उत्पन्न होता है।[५] इसके अतिरिक्त अर्जुन एवं दुर्योधन की कुछ उक्तियों में विधवा विवाह के प्रति घृणा की भावना भी मिलती है। जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा करते हुए अर्जुन कहता है – 'प्रतिज्ञा पूरी न करने पर मुझे विधवा स्त्री ग्रहण करने का पाप हो।'[६] इसी प्रकार एक स्थल पर दुर्योधन कहता है – 'इस श्रीहीन पृथिवी को भोगने का उत्साह मुझे वैसे ही नहीं है जैसे विधवा को भोगने के प्रति निरुत्साह हो।'[७]

महाभारत एवं रामायण में स्त्री के पुर्नविवाह के प्रति निषेध की जो क्रमिक प्रवृत्ति है वह मनु आदि सूत्रकारों में शतमुखी हो उठी है। मनु ने स्त्री के एक ही विवाह का विधान किया है।[८] पतिव्रता स्त्री का केवल एक ही पति होता है।[९] याज्ञवल्क्य ने भी यही कहा कि 'अपनी इच्छानुसार पति को त्याग कर दूसरे को ग्रहण करती है वह स्त्री स्वैरिणी होती है।'[१०] कौटिल्य आदि ने पति के संन्यासी हो जाने पर पत्नी को पुर्नविवाह की अनुमति दे दी थी किन्तु गौतम ने वह भी निषिद्ध कर दिया – 'पति के प्रव्रजित हो जाने पर पत्नी सभी विषय प्रसंगों से निवृत्त हो जाए।'[११] एक बार विवाहिता स्त्री से पुर्नविवाह कर लेने वाला पुरुष भी पतित माना जाता था तथा उसे श्राद्ध आदि में बुलाने का निषेध किया गया।[१२]

---

१. वा०रा० ४.१०.२७.
२. वा०रा० ४.२३.१-३०; ४.३१.२२.
३. महाभारत १.२०६.१९-२०.
४. महाभारत १३.४४.५०.
५. महाभारत १३.११२.७३.
६. महाभारत ७.५१.२७. भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
७. महाभारत ९.३०.४२. न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम्॥
८. म०स्मृ० ९.४७. सकृत्कन्या प्रदीयते।
९. म०स्मृ० ५.१६२. न द्वितीयश्च साध्वीनां कच्चिद्भर्तोपदिश्यते।
१०. या०स्मृ० १.६७ स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्।
११. गौ०ध० २.९.१६ प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसंगात्।
१२. म०स्मृ० ३.१६६; या०स्मृ० १.२२४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार उपर्युक्त सूत्रकारों ने स्त्री के पुनर्विवाह को बिल्कुल ही निषिद्ध कर दिया। किन्तु इन सभी सूत्रों में पुनर्भू एवं पौनर्भव शब्दों के प्राप्त होने से यह ज्ञात होता है कि समाज में पुनर्विवाह भले ही निन्दित रहा हो पर कुछ अंशों में प्रचलित अवश्य था, इसीलिए इसे इतना गर्हित विषय बना कर इन सूत्रकारों ने समाज से इसका प्रचलन बिल्कुल ही समाप्त कर देना चाहा। मनु ने अक्षतयोनि स्त्री को पुनर्विवाह कर लेने पर पुनर्भू की संज्ञा दी।[१] क्षतयोनि अथवा विधवा के पुनर्विवाह का प्रश्न ही नहीं था।

पौनर्भव पुत्र को सूत्रकारों ने जिस कोटि में रक्खा है, उससे भी पुनर्विवाह की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। महाभारत, वसिष्ठ धर्म सूत्र, विष्णु धर्मसूत्र, मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति आदि में विभिन्न प्रकार के पुत्रों की सूची दी गई है। महाभारत, वसिष्ठ धर्मसूत्र एवं विष्णु धर्मसूत्र में पौनर्भव पुत्र को चौथे पद पर रक्खा गया और महाभारत तथावसिष्ठ ने पौनर्भव पुत्र को दायाद बन्धु माना।[२] दायाद बन्धु पुत्र का तात्पर्य यहहै कि ऐसा पुत्र पिता के धन का भी अधिकारी है और पिता को पिण्डदान देने का भी अधिकारी है। याज्ञवल्क्य ने पौनर्भव पुत्र को छठे क्रम पर रक्खा।[३] किन्तु मनु ने पौनर्भव पुत्र को दसवें स्थान पर रक्खा और अदायाद बन्धु माना,[४] अर्थात् मनु के मतानुसार पौनर्भव पुत्र को धन का अधिकार नहीं है, केवल तिलोदक आदि देने का अधिकार है। पौनर्भव पुत्र के स्थान के क्रमशः ह्रास से भी यही स्पष्ट होता है कि सम्भवतः समाज में पहले पुनर्विवाह पाया जाता था किन्तु क्रमशः यह गर्हित माना जाने लगा। मनु उसी परवर्ती सुधारवादी मत को सूचित करते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी केवल अक्षतयोनि कन्या एवं अक्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह माना है, क्षतयोनि अथवा क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह नहीं माना है।[५]

उपर्युक्त समस्त विवेचन से यह निष्कर्ष स्वभावतः प्राप्त होता है कि संस्कृत साहित्य के प्राचीन समय में पुनर्विवाह निषिद्ध नहीं था, भले ही उसके अधिक उदाहरण समाज में प्राप्त न होते हों। समय के परिवर्तित होने के साथ साथ पुरुष के पुनर्विवाह को तो समाज ने स्वीकार कर लिया, किन्तु स्त्री के लिए समस्त वैवाहिक पवित्रता का पालन अपेक्षित हो गया, और पुनर्विवाह का विधान न रहा। विवाह में धार्मिक संस्कारत्व होने के कारण दोनों ही पक्षों से निष्ठा और प्रणय के आजीवन पालन की अपेक्षा की जाती थी, किन्तु क्रमशः उस नैतिकता और पवित्रता की रक्षा का समस्त भार केवल स्त्री को वहन करना पड़ा। इस तथ्य की यदि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचना की जाए तो यह तथ्य समाज के पितृसत्तात्मक स्वरूप को उजागर कर देता है।

---

१. म०स्मृ० ९.१७६. सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागताऽपि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः सस्कारमर्हति॥

२. महाभारत १.१११.२७-२८.
व०ध० १७.१९. पौनर्भवश्चतुर्थः। ....इत्येते दायादा बान्धवास्त्रातारो महतो भयादित्याहुः॥
वि०ध० १५.७.

३. या०स्मृ० २.१३०.

४. म०स्मृ० ९.१६०.

५. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकार – चतुर्थमुल्लास – पृष्ठ ७१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नवम अध्याय

नियोग

विवाह एवं नियोग का सम्बन्ध
नियोग का उद्देश्य एवं आधार
नियोग के लिए उपयुक्त पुरुष
- देवर, सपिण्ड, सगोत्र
- ब्राह्मण
- देवता

नियोग सम्पन्न करने के नियम
नियोग से उत्पन्न पुत्र
- उत्पन्न पुत्र पति का है
- उत्पन्न पुत्र नियुक्त पुरुष का है
- उत्पन्न पुत्र दोनों का है

नियोग की निन्दा एवं क्रमशः ह्रास
निषेध के कारण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नियोग

विवाह एवं नियोग का सम्बन्ध :

संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार का विवेचन तब तक सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जब तक नियोग प्रथा पर विचार न कर लिया जाए। पुत्रहीन व्यक्ति की पत्नी अथवा विधवा का किसी अन्य नियुक्त पुरुष के सहवास से पुत्र उत्पन्न करना नियोग प्रथा है। सामान्यतः विवाह के साथ नियोग का कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह नियोग प्रथा विवाह से जुड़ी हुई ही दिखाई देती है।

जैसा कि विवेचन किया जा चुका है कि संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार के तीन प्रयोजन पाए जाते हैं। विभिन्न सूत्रकारों ने इन तीनों प्रयोजनों में प्रजा रूप प्रयोजन को बहुत महत्ता प्रदान की है, क्योंकि पुत्र धर्म पालन में भी सहायक होता है और पुत्रोत्पत्ति में रति रूप प्रयोजन भी स्वयंसिद्ध हो जाता है। नियोग प्रथा का उद्भव भी केवल पुत्रोत्पत्ति के प्रयोजन से हुआ। रोगी अथवा नपुंसक व्यक्ति यदि पुत्रोत्पत्ति करने में असमर्थ था, तो विवाह ही लक्ष्यभ्रष्ट होता था, अतः नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करके विवाह के लक्ष्य को पूर्ण किया जा सकता था।

विवाह संस्कार की विधि के अन्तर्गत चतुर्थीकर्म नामक जो कृत्य पाया जाता है, उसमें वर एवं वधू यज्ञ में विभिन्न आहुतियाँ आदि डालकर उसके उपरान्त ही गर्भाधान में प्रवृत होते हैं। नियोग में भी स्त्री एवं नियुक्त पुरुष ब्राह्मणों और अतिथियों आदि को भोजन कराके तथा यज्ञादि सम्पन्न करके ही सहवास करते हैं। अतः धार्मिक कृत्यों की इस समानता से भी विवाह संस्कार और नियोग का सम्बन्ध स्पष्ट है।[1]

इस प्रकार प्रयोजन और धार्मिक कृत्यों की समानता के कारण विवाह संस्कार के विवेचन में नियोग का विवेचन स्वतः सिद्ध है।

वेदों के समय में नियोग प्रथा का प्रचलन नहीं था, यह मानते हुए डॉ० उपाध्याय ने इसके दो कारण दिए हैं।[2] – प्रथमतः, आर्यजाति पौरुष युक्त थी अतः पत्नी अपने पति से ही पुत्र उत्पन्न कर लेती थी। व्यक्ति अपनी सन्तानोत्पादन शक्ति को व्यर्थ ही विलासादि में नहीं गँवाते थे। द्वितीयतः, वेदों के समय में विधवा विवाह प्रचलित था, अतः पुत्रहीन विधवा को नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

---

१. व०ध० १७.५२ पाणिग्राहवदुपचरेत्।

२. उपाध्याय, बी०एस० – वीमेन इन ऋग्वेद, पृष्ठ ९८-१००.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वामी दयानन्द सरस्वती का मत इससे विपरीत है। उन्होंने नियोग का समर्थन करते हुए अनेक ऋग्वेदीय मन्त्र दिए हैं। स्वामीजी के अनुसार वैदिक काल में भी नियोग प्रथा प्रचलित थी।[1] मैक्डानल एवं कीथ ने भी ऋग्वेद के एक मन्त्र से नियोग के संकेत का उल्लेख किया है।[2] मनु (९.६६.) पर भाष्य लिखते हुए मेधातिथि ने भी उपर्युक्त ऋग्वेदीय मन्त्र को नियोग का ही सूचक माना है। वस्तुतः ऋग्वेद के मन्त्र विवादास्पद हैं। फिर भी अधिकांश विद्वानों ने इन मन्त्रों के आधार पर ही वैदिक युग में नियोग प्रथा को प्रचलित माना है।

महाभारत एवं धर्मसूत्रों के समय में नियोग प्रथा पूर्णतया प्रतिष्ठित थी — यह तथ्य इन ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट ज्ञात होता है। महाभारत के अनेक प्रमुख चरित्र नियोग द्वारा ही उत्पन्न हुए थे। समस्त कुरुवंश ही इस नियोग प्रथा का ऋणी है। महाभारत काल में नियोग के इतने उदाहरण मिलने का कारण यह हो सकता है, कि क्षत्रिय लोग राज्य प्राप्त करके विलास एवं व्यभिचार में लिप्त हो गए। फलतः उनकी सन्तानोत्पादन शक्ति क्षीण हो गई अथवा वे असमय में ही कालकवलित हुए। पाण्डु एवं विचित्रवीर्य ऐसे ही उदाहरण हैं।[3] यह एक अन्य विलक्षण तथ्य है कि यद्यपि धर्मसूत्रकारों तथा स्मृतिकारों ने नियोग का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है, तथापि नियोग के प्रसंग संस्कृत साहित्य में महाभारत के अतिरिक्त और कहीं प्राप्त नही होते।

उद्देश्य एवं आधार :

महाभारत के जिन प्रसंगों में नियोग प्राप्त होता है उन्हें दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है; प्रथमतः पति के मर जाने पर विधवा स्त्री एवं नियुक्त पुरुष मिल कर सन्तान उत्पन्न करें, जैसे अम्बिका एवं अम्बालिका से व्यास ने पुत्र उत्पन्न किए।[4] द्वितीयतः पति के रोगी अथवा नपुंसक होने पर पति की आज्ञा एवं अनुमति से पत्नी नियुक्त पुरुष से पुत्र उत्पन्न करे। कुन्ती, माद्री, आदि के उदाहरण ऐसे ही हैं।[5] इन दोनों प्रकार की श्रेणियों में प्रथम श्रेणी के केवल अम्बिका एवं अम्बालिका के ही उदाहरण प्राप्त होते हैं। अन्य सारे प्रसंगों में पति के जीवित रहते ही पत्नी ने नियोग द्वारा पुत्रोत्पत्ति की है। अतः यह सम्भव है कि प्रारम्भ में पति की सन्तानेच्छा से ही यह प्रथा प्रारम्भ हुई हो। वैदिक समय से ही पुत्र को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अतः पारिवारिक लाभ, वंशवृद्धि एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पति ने ही अपनी पत्नी को किसी अन्य उत्तम पुरुष से गर्भधारण करने की अनुमति दी होगी। कालान्तर में विधवा स्त्री को भी नियोग द्वारा पुत्रप्राप्ति की अनुमति दे दी गई, क्योंकि विवाह में कौमार्य गुण अनिवार्य मान लिए जाने पर पुरुष विधवाओं से विवाह नहीं करते होंगे।[6]

---

१. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ ६९-७४.

२. मैक्डानल एवं कीथ – वैदिक इण्डेक्स, पृष्ठ ४२४ पर उद्धृत ऋ०वे० १०.४०.२.

३. महाभारत १.११८.२१.; १.९६.५७-५८.

४. महाभारत १.१००.८-९; १.१००.१६-१७.

५. महाभारत १.११४.३-१०; १.११५.१६-१७,

६. अल्तेकर, ए०एस० – पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ १४९.
दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ ७१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पति के आध्यात्मिक लाभ के अतिरिक्त नियोग के लिए एक और आधारभूमि प्राप्त होती है। पत्नी को विश्व की प्रायः सभी सभ्यताओं एवं जातियों में पारिवारिक सम्पत्ति का अंश माना जाता रहा है।[1] अतः यद्यपि वधू का विवाह वर से होता है, तथापि आती तो वह परिवार में ही है। आपस्तम्ब ने लिखा है कि 'स्त्री कुल के लिए ही दी जाती है।'[2] अतः पारिवारिक सुख एवं लाभ की दृष्टि से पति के अतिरिक्त परिवार के ही अन्य किसी व्यक्ति से नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त कर लेना श्रेयस्कर है। इस प्रकार परिवार अथवा कुल का यह पवित्र कर्त्तव्य था कि यदि एक व्यक्ति पुत्रहीन ही मर जाए, या जीवित रहते भी सन्तानोत्पत्ति में अक्षम हो तो उस व्यक्ति को स्वर्ग लाभ कराने के लिए परिवार या कुल का ही अन्य कोई व्यक्ति उस व्यक्ति की पत्नी में पुत्र उत्पन्न करे।[3] क्षत्रियों एवं राजाओं के कुल में तो पुत्रहीन रह जाना और भी बड़ा दुर्भाग्य और दुख था, क्योंकि पारलौकिक आध्यात्मिक हानि के अतिरिक्त इहलोक में भी उनकी राज्यलक्ष्मी दूसरों को प्राप्त हो जाती थी। अतः नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करके उस दुर्भाग्य से रक्षा की जा सकती थी।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी नियोग प्रथा के उद्भव का एक कारण खोजा जा सकता है। पति के रोगी अथवा नपुंसक होने पर पत्नी की कामेच्छा अतृप्त रह जाती है। कामभावना के प्रबल आवेग के सम्मुख ऐसी अतृप्त पत्नी कभी व्यभिचार में भी प्रवृत्त हो सकती है। नियोग प्रथा के द्वारा स्त्री तृप्त होने के साथ ही पुत्र रूप में स्वयं को संयमित कर सकने का आधार पा लेती थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने नियोग का समर्थन करते हुए यही कारण दिया है कि इससे व्यभिचार कम हो जाता है।[4] विधवा पुत्रहीना स्त्री के लिए नियोग भले ही काम तृप्ति की दृष्टि से न हुआ हो; किन्तु विधवा भी नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करके परिवार में अपना स्थान सुरक्षित कर लेती थी। पुत्रवती बन जाने पर उसे आर्थिक दृष्टि से परमुखापेक्षी नहीं रहना होता था।

कुलपरम्परा तथा रक्तशुद्धि भी नियोग के प्रारम्भ का एक आधार हो सकती है। गोद लिए गए पुत्र की अपेक्षा नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र अधिक श्रेयस्कर हो सकता है। ऋग्वेद में भी एक स्थल पर आया है कि 'हम अन्यजात (दत्तक) सन्तान वाले न हों, क्योंकि अन्यजात पुत्र को हृदय अपना स्वीकार नहीं करता, वह अपने ही मन का होता है।[5] दत्तक पुत्र परिवार के लिए नितान्त अपरिचित होता है, उसमें रक्त, एवं संस्कार भी अन्य परिवार के होते हैं। नियोग से उत्पन्न पुत्र में परिवार से समता पाई जाती है, क्योंकि कम से कम परिवार की वधू का रक्त तो उसमें होता है। संस्कृत के धर्मसूत्रों ने इसीलिए पुत्रों के क्रम में औरस पुत्र के तुरन्त बाद क्षेत्रज पुत्र का स्थान माना है।[6]

---

१. अल्तेकर, ए०एस०—पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन - पृष्ठ १४४

२. आप०ध० २.१०.२७.३. कुलाय हि स्त्री प्रदीयत इत्युपदिशन्ति।

३. जायल, शाकम्भरी – स्टेटस आफ वीमेन इन एपिक्स – पृष्ठ १५७.

४. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ ७०.

५. ऋ०वे० ७.४.७-८.

६. महाभारत १.१११.२७-३०; म०स्मृ० ९.१५९.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे धर्मसूत्रों ने यद्यपि पति के पारलौकिक एवं धार्मिक लाभ की दृष्टि से एवं वंशवृद्धि की दृष्टि से नियोग प्रथा को समीचीन ठहराया, तथापि इस प्रथा का उद्‌भव मनोवैज्ञानिक एवं प्रजननशास्त्र की दृष्टि से भी हुआ होगा ।

नियोग के लिए उपयुक्त पुरुष :

दूसरे व्यक्ति की पत्नी अथवा विधवा से कौन व्यक्ति नियोग सम्पन्न करने का अधिकारी है, इस सम्बन्ध में प्रायः सभी धर्मशास्त्रकारों ने कुछ न कुछ व्यवस्था दी है ।

देवर, सपिण्ड, सगोत्र :

अधिकांश सूत्रकारों ने स्त्री का देवर अथवा सपिण्ड अथवा सगोत्र व्यक्ति नियोग सम्पन्न करने का अधिकारी माना है ।[1] गौतम ने इन तीनों को क्रमशः अधिकारी कहा । इसके अतिरिक्त गौतम ने सप्रवर व्यक्ति को भी नियोग का अधिकारी माना है ।[2] कौटिल्य ने मातृबन्धु अर्थात् मातृपक्षीय व्यक्ति को भी नियोग के लिए उपयुक्त पुरुष कहा ।[3] महाभारत में देवर को नियोग सम्पन्न करने का अधिकार दिया गया,[4] किन्तु महाभारत के ही नियोग प्रसंगों में से किसी भी प्रसंग में देवर ने नियोग सम्पन्न नहीं किया ।

सामान्य रूप में देवर का अर्थ पति के छोटे भाई से लिया जाता है । गौतम धर्मसूत्र के टीकाकार हरदत्त ने और याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने देवर शब्द का अर्थ 'पति का छोटा भाई' ही ग्रहण किया हैं ।[5] मैक्डानल एवं कीथ ने भी देवर का अर्थ छोटा भाई ही ग्रहण किया है ।[6] किन्तु देवर शब्द का अर्थ प्रारम्भ से 'पति का छोटा भाई' ही रहा हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता । निरुक्तकार ने 'देवर' शब्द की व्याख्या 'द्वितीय वर' के रूप में की है ।[7] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी यही अर्थ माना है – "देवर उसको कहते हैं जो कि विधवा का दूसरा पति होता है चाहे छोटा भाई या बड़ा भाई अथवा अपने वर्ण या अपने से उत्तम वर्ण वाला हो, जिससे नियोग करे उसी का नाम देवर है ।"[8]

देवर शब्द से पति का छोटा भाई ही द्योतित नहीं होता था, वरन् बड़ा भाई भी द्योतित होता था – यह महाभारत के सत्यवती-भीष्म वार्तालाप से भी स्पष्ट होता है । भीष्म शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र थे और विचित्रवीर्य आदि भीष्म से छोटे थे, फिर भी माता सत्यवती ने हठपूर्वक भीष्म

---

१. म०स्मृ० ९.५९. देवराद्वा सपिण्डाद्वा ।
   या०स्मृ० १.६८; आप०ध० २.१०.२७.२.
२. गौ०ध० २.६.४-७. अपतिरपत्यलिप्सुर्देवरात् । ········पिण्डगोत्रर्षिसम्बन्धेभ्यो योनिमात्राद्वा । ····················नादेवरादित्येके ।
३. कौ०अर्थ० ३.६.३३.
४. महाभारत (बम्बई एडीशन) १.१२०.३५. उत्तमाद्देवरात्पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ।
   महाभारत १३.४४.५०. देवरं प्रविशेत्कन्या ।
५. गौ०ध० २.९.४. पर हरदत्त – पत्युर्भ्राता देवरः कनिष्ठः ।
   या०स्मृ० १.६८. पर विज्ञानेश्वर – देवरो भर्तुः कनीयान् भ्राता ।
६. मैक्डानल एवं कीथ — वैदिक इण्डेक्स, पृष्ठ ४२४.
७. निरुक्त ३.१५- देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते ।
८. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ ७१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से अनुरोध किया कि 'हे पुत्र ! तुम्हारे भाई की रानियाँ तथा काशिराज की ये दोनों पुत्रियाँ रूप यौवन सम्पन्न हैं तथा पुत्र पाने की अभिलाषा करती हैं। कुल की सन्तानपरम्परा को सुरक्षित रखने के लिए तुम स्वयं ही इन दोनों के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करो।"[१] भीष्म ने माता का अनुरोध नहीं माना, लेकिन अनुरोध न मानने के मूल में भीष्म को प्रतिज्ञा भंग का भय था। बड़े भाई होने कारण भीष्म ने माँ का अनुरोध न माना हो, ऐसा उल्लेख महाभारत में नहीं है।

इसके अतिरिक्त भी जब भीष्म के अनुमोदन से सत्यवती ने अपने कानीन पुत्र व्यास को नियोग के लिए आमन्त्रित कर लिया, तब अपनी पुत्रवधू से यही कहा— 'कौसल्ये ! तुम्हारे एक देवर हैं, वे ही आज गर्भाधान के लिए आएँगे। प्रमाद रहित होकर उनकी प्रतीक्षा करो।'[२] व्यास मुनि सत्यवती की कौमार्यावस्था में उत्पन्न हुए थे, और निश्चय ही विचित्रवीर्य आदि से बड़े थे। फिर भी सत्यवती ने उनको पुत्रवधू का देवर कहा। सत्यवती ने व्यास से भी स्पष्टतया छोटे भाई की वधुओं से नियोग सम्पन्न करने को कहा था,[३] और फिर भी व्यास ने मना नहीं किया। इससे यही ज्ञात होता है कि देवर का अर्थ पति का भाई मात्र ही था।

देवर शब्द से पति का बड़ा भाई भी सूचित होता था, इसके लिए व्यास-नियोग प्रसंग में ही एक और तर्क प्राप्त होता है। माता सत्यवती से देवर द्वारा गर्भाधान किए जाने का आदेश पाकर जब अम्बिका शयनारूढ़ हुई, तब उसने सम्भावित देवर के रूप में भीष्म आदि कुरुपुंगवों का मन ही मन चिन्तन किया।[४] भीष्म अम्बिका के पति के बड़े भाई थे, छोटे नहीं। इससे भी सूचित होता है कि देवर शब्द 'पति का भाई' अर्थ का द्योतक था, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। मनुस्मृति से भी इस अर्थ की पुष्टि होती है। मनु ने बड़े भाई की पत्नी को गुरुपत्नी और छोटे भाई की पत्नी को पुत्रवधूतुल्य कहा है।[५] किन्तु मनु ने भी आपत्तिकाल में नियोग के लिए पति के बड़े भाई को नियुक्त किए जाने का उल्लेख किया है।[६]

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से निष्कर्ष यही निकलता है कि प्रारम्भ में देवर शब्द से 'पति का भाई' अर्थ सूचित होता था, और पति का छोटा अथवा बड़ा कोई भी भाई नियोग सम्पन्न

---

१. महाभारत १.९७.९-१०. इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे।
रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च भारत॥
तयोरुत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य नः।
मन्नियोगान्महाभाग धर्मं कर्तुमिहार्हसि॥

२. महाभारत १.१००.२. कौसल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्यत्वानुप्रवेक्ष्यति।
अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे आगमिष्यति॥

३. महाभारत १.९९.३४-३५. यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे।
रूपयौवनसंपन्ने पुत्रकामे च भारत॥
तयोरुत्पादयापत्यं समर्थो ह्यसि पुत्रक।
अनुरूपं कुलस्यास्य संतत्याः प्रसवस्य च॥

४. महाभारत १.१००.३ श्वश्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे।
साऽचिन्तयत् तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुंगवान्॥

५. म०स्मृ० ९.५७.

६. म०स्मृ० ९.६२-६३.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करा सकता था। किन्तु कालान्तर में जैसे-जैसे बड़े भाई के प्रति श्वसुर के समान सम्मान और आदर की भावना बढ़ती गई, वैसे ही वैसे देवर शब्द से पति का छोटा भाई अर्थ ही ग्रहण किया जाने लगा।

पति के भाई अथवा सपिण्ड या सगोत्र से विवाह कर लेना या पुत्रोत्पत्ति करना विश्व की अन्य प्राचीन जातियों में भी पाया जाता है।[१] इस प्रथा के मूल में एकाधिक कारण खोजे जा सकते हैं। प्रथमतः, पुत्र में अपने पिता और उसके वंशगत संस्कार आते हैं। नियोग के लिए यदि देवर नियुक्त हो तो क्षेत्रज पुत्र और परिवार के अन्य बच्चों में स्वाभाविक स्नेह और पारिवारिक समानता होती है। द्वितीयतः, यदि परिवार से बाहर का नितान्त अपरिचित व्यक्ति नियोग के लिए नियुक्त हो तो पुत्र के पर्याप्त बड़े हो जाने पर पुत्र को प्रभावित करके वह पारिवारिक सम्पत्ति का अंश ले सकता है।[२] नियोग में धन के लोभ का निषेध सम्भवतः इसी दृष्टि से किया गया है।[३]

ब्राह्मण :

कुछ ही धर्मसूत्रकारों अथवा स्मृतिकारों ने नियोग के लिए ब्राह्मण नियुक्त किए जाने की व्यवस्था की है।[४] किन्तु महाभारत के सभी नियोग प्रसंगों में ब्राह्मण ही नियुक्त किए गए हैं। राजा बलि ने अन्ध ब्राह्मण ऋषि को अपनी पत्नी सुदेष्णा से नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न कराने के लिए नियुक्त किया था।[५] वसिष्ठ ऋषि ने नियोग द्वारा राजा कल्माषपाद की पत्नी मदयन्ती से पुत्रोत्पत्ति की थी।[६] इन सबका स्वाभाविक निष्कर्ष यही निकलता है कि सम्भवतः प्राचीन काल में नियोग के लिए ब्राह्मण आमन्त्रित नहीं होते थे; किन्तु जैसे जैसे वर्ण व्यवस्था कठोर होती गई और समाज पर ब्राह्मणों का प्रभाव व नियंत्रण बढ़ता गया, वैसे ही वैसे ब्राह्मणों को नियोग के लिए नियुक्त करना उत्तम माना जाने लगा। महाभारत में ही भीष्म ने माँ के अनुरोध को पूरा करने में स्वयं को असमर्थ कहा किन्तु साथ ही नियोग के लिए किसी ब्राह्मण को नियुक्त करने की प्रेरणा दी।[७] सत्यवती के लिए यह नवीन बात थी, अतः भीष्म ने उनका संशयच्छेद करने के लिए प्राचीन उदाहरण भी दिया कि परशुराम ने यद्यपि इक्कीस बार पृथिवी पर क्षत्रियों का संहार किया तथापि क्षत्रिय जाति इसीलिए नष्ट नहीं हुई क्योंकि क्षत्रिय पत्नियाँ नियोग के द्वारा ब्राह्मणों से पुत्र उत्पन्न करा लेती थीं।[८]

---

१. वेस्टरमार्क – हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज, भाग ३, पृष्ठ २०७-२२०.

२. अल्तेकर, ए. एस. – पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ १४५

३. व०ध० १७.५७. लोभान्नास्ति नियोगः

४. वि०ध० १५.३. नियुक्तायां सपिण्डेनोत्तमवर्णेन वा।
ना०स्मृ० १२.४८.; महाभारत १.९९.१–२.

५. महाभारत १.९८.......

६. महाभारत १.१६८.२१....२३.

७. महाभारत १.९९.१-२.

८. महाभारत १.९८.३-५. ब्राह्मणान् क्षत्रिया राजन् सुतार्थिन्योऽभिचक्रमुः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्राह्मण को नियोग का अधिकारी माने जाने के कई कारण हो सकते हैं। प्रथमत:, ब्राह्मण अपने तप, स्वाध्याय एवं ज्ञान की दृष्टि से समाज में सम्माननीय होते थे। विलासी जीवन व्यतीत न करने के कारण वे वीर्यवान् और गर्भाधान कराने के लिए अधिक उपयुक्त थे। ब्राह्मण से उत्पन्न पुत्र में भी ब्राह्मण के उपर्युक्त सारे गुण आने की सम्भावना होती थी। द्वितीयत:, ब्राह्मण को संसार से निर्लिप्त और मामा-मोह से परे माना जाता था। अतः नियोग से गर्भाधान करा देने के पश्चात् ब्राह्मण को उस स्त्री से किसी प्रकार का भावनात्मक सम्बन्ध या लगाव नहीं रह जाता होगा। तृतीयत:, क्षत्रिय लोग प्राय: राजा होने के कारण अपने कुल और धन के प्रति गर्वित हो जाते थे। ऐसी स्थिति में अपने कुल की विधवाओं का गर्भाधान सगोत्र किन्तु निर्धन क्षत्रियों से कराना वे असम्मानजनक मानते होंगे, अतः आध्यात्मिक दृष्टि से अपने से ऊँचे ब्राह्मण वर्ण के पुरुष को वे नियुक्त करने लगे।

महाभारत तथा अन्य एकाधिक सूत्रों में यद्यपि ब्राह्मण के नियुक्त किए जाने की व्यवस्था प्राप्त होती है तथापि समाज इसके बहुत पक्ष में नहीं था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने इसीलिए ब्राह्मण का उल्लेख नहीं किया। महाभारत में भी ब्राह्मण द्वारा नियोग कराए जाने के विरोध में स्वर सुनाई देता है। सभापर्व में शिशुपाल भीष्म पर आक्षेप करते हुए स्पष्ट कहता है – 'तुम्हारे भाई की दो विधवा पत्नियों के गर्भ से दूसरे पुरुष के द्वारा सन्तान उत्पन्न की गई और तुम जैसे पण्डित देखते रहे।'[१] इसी प्रकार अर्जुन एक स्थल पर खिन्न होकर कहता है – 'राजा कल्माषपाद ने अपनी पत्नी ब्रह्मज्ञानवादी वसिष्ठ को क्यों सौंपी, और वसिष्ठ ने धर्म जानते हुए भी अगम्यागमन क्यों किया?'[२] इन दोनों प्रसंगों से ज्ञात होता है कि समाज अपने वर्ण से बाहर ब्राह्मण को भी नियोग का अधिकारी मानने को पूर्णतया तत्पर नहीं था।

देवता :

महाभारत में कुन्ती और माद्री के प्रसंग में देवताओं द्वारा नियोग उल्लिखित है।[३] यह निश्चय करना कठिन है कि महाभारतकार का तात्पर्य देवता से क्या था। यह सम्भव है कि वे समकालीन राजा अथवा राजकुमार रहे हों।[४]

नियोग सम्पन्न करने के नियम :

संस्कृत साहित्य में नियोग के सम्बन्ध में इतनी व्यवस्था प्राप्त होने पर भी सर्वत्र यही सावधानी दिखाई देती है कि नियोग कहीं व्यभिचार में परिणत न हो जाए। सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने इस दोष से बचने के लिए अनेक नियम बनाए हैं।

(१) नियोग की व्यवस्था केवल आपद्धर्म के रूप में की गई है। जब पति के रोगी अथवा नपुंसक होने पर या मर जाने पर वंशलोप का भय उपस्थित हो जाए, तभी नियोग होना चाहिए

---

१. महाभारत २.३८.२३. दारयोर्यस्य चान्येन मिषत: प्राज्ञमानिनः।
तव जातान्यपत्यानि सज्जनाचरिते पथि॥

२. महाभारत १.१७३.२. जानता वै परं धर्मं वसिष्ठेन महात्मना।
अगम्यागमनं कस्मात् कृतं तेन महर्षिणा॥

३. महाभारत १.११४ २-३७; १.११५.१६-१७

४. जायल, शाकम्भरी – स्टेटस आफ वीमेन इन एपिक्स, पृष्ठ १६४
......The fact might well have been that the Devas was the name of a people. There may be some grain or truth in Sarkar's statement that they were contemporary princes.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्यथा नहीं।[१] महाभारत में सत्यवती ने भीष्म को और पाण्डु ने कुन्ती को समझाते हुए यही कहा – 'इस समय वंशलोप उपस्थित है अतः आपद्धर्म के रूप में नियोग स्वीकार करो।'[२]

(२) कुल के गुरुजन अथवा जीवितावस्था में पति जिसे नियुक्त करें, उसी व्यक्ति से स्त्री का नियोग होना चाहिए, हर किसी व्यक्ति से नहीं।[३] महाभारत के जिन नियोग प्रसंगों में पति जीवित रहता है, उन सबमें स्वयं पति ने ही नियोग के लिए उपयुक्त पुरुष को नियुक्त किया है। पाण्डु ने धर्म, वायु और इन्द्र को कुन्ती के लिए नियुक्त किया था।[४] इसी प्रकार राजा कल्माषपाद ने अपनी पत्नी मदयन्ती के लिए स्वयं ही वसिष्ठ को नियुक्त किया था।[५] पति के जीवित न रहने की स्थति में कुल के गुरुजनों की अनुमति एवं आज्ञा से पुरुष नियुक्त किया जाता है।[६] भीष्म ने पुरोहितों एवं माता सत्यवती आदि की अनुमति से ही अम्बिका एवं अम्बालिका के लिए ब्राह्मण नियुक्त करने को कहा था।[७]

(३) सूत्रकारों के अनुसार नियोग का एकमात्र प्रयोजन पुत्रोत्पत्ति है, अतः यह व्यवस्था दी गई कि स्त्री के ऋतुकाल में ही नियुक्त पुरुष सहवास करे।[८] ऋतुकाल में ही समागम होने से गर्भधारण की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है। अम्बिका, मदयन्ती आदि से नियुक्त पुरुष ने ऋतुकाल में ही सहवास किया था।[९]

पुत्रोत्पत्ति ही मूल लक्ष्य होने के कारण यह भी नियम बनाया गया कि नियुक्त स्त्री व पुरुष दोनों ही रोगहीन हों। जो स्त्री वन्ध्या, उन्मत्त, रोगी या केवल मृत पुत्रों को ही प्रसव करने वाली हो, उससे नियोग नहीं होना चाहिए।[१०] नियुक्त पुरुष भी रोगी नहीं होना चाहिए।[११]

(४) नियोग धन की कामना से कदापि नहीं होना चाहिए।[१२] यह नियम सम्भवतः

---

१. गौ०ध० २.९.४.

२. महाभारत १.९७.२२. आपद्धर्ममवेक्षस्व वह पैतामहीं धुरम्।
१.१११.२२. अपत्योत्पादने यत्नमापदि त्वं समर्थय।

३. गौ०ध० २.९.५. गुरुप्रसूता........।। या०स्मृ० १.६८. गुर्वनुज्ञातः।
बौ०ध० २.२.४.९. गुरुभिरनुमता।। म०स्मृ० ९.५९. सम्यङ्नियुक्तया।

४. महाभारत १.११३.३९: १.११४.८.; १.११४.२६.

५. महाभारत १.१६८.२१. तस्य राज्ञोऽऽज्ञया देवी वसिष्ठमुपचक्रमे।

६. गौ०ध० २.९.५., या०स्मृ० १.६८.;

७. महाभारत १.९९.-

८. गौ०ध० २.९.५. नर्तुमतीयात्।

९. महाभारत १.१००.१- वधूं स्नातामृतौ तदा।
महाभारत १.१६८.२२. ऋतावथ महर्षिः स संबभूव तया सह।
देव्या दिव्येन विधिना वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः।।

१०. ब०ध० १७.५०. न सोन्मात्तामवशां व्याधितां वा नियुंज्यात्।
बौ०ध० २.२.३.१०.

११. व०ध० १७.५१.

१२. व०ध० १७.५७. लोभान्नास्ति नियोगः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस लिए बनाया गया, जिससे नियोग कर्त्तव्यमात्र की दृष्टि से किया जाय। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नियोग में धन बिल्कुल ही महत्वहीन नहीं था क्योंकि महाभारत में इस नियम के विरुद्ध भीष्म माता से यह कहते हैं – 'किसी गुणवान् ब्राह्मण को धन देकर आमन्त्रित करो।'[१] यहाँ भीष्म का तात्पर्य सम्भवतः यह हो कि नियोग के पश्चात् ब्राह्मण को भी दक्षिणा रूप में धन देकर प्रसन्न करना चाहिए।

(५) जो व्यक्ति नियोग के लिए नियुक्त किया जाए, वह स्त्री के पास मौन होकर रात्रि में जाए तथा जाते समय अंगों पर घृत का लेप करे।[२] मौन होकर सहवास करने का निष्कर्ष यही है कि नियुक्त पुरुष को स्त्री से रतिक्रीड़ा, अश्लील भाषण, आदि नहीं करना चाहिए। व्यास जब अम्बिका से सहवास करने के लिए गए तो उन्होंने कुत्सित रूप धारण कर रखा था।[३]

(६) नियोग में गर्भाधान के पश्चात् उन स्त्री पुरुष का परस्पर मिलना निषिद्ध है।[४] गर्भ की स्थिति तक ही सहवास की व्यवस्था की गई है। मनु ने नियम स्थापित किया कि 'यथा-विधि नियोग के निर्वृत्त हो जाने पर स्त्री-पुरुष परस्पर पुत्रवधू एवं श्वशुर के समान व्यवहार करते हुए रहें।'[५]

(७) नियोग के द्वारा कितने पुत्र उत्पन्न किए जाएँ – इसकी संख्या भी सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने नियमित कर दी है। सभी सूत्रकार पुत्र संख्या के सम्बन्ध में एक मत नहीं हैं। गौतम ने नियोग द्वारा एक ही पुत्र उत्पन्न करने का नियम स्थापित किया है।[६] मनु ने अपने मत से केवल एक ही पुत्र उत्पन्न करने का विधान किया, द्वितीय का कदापि नहीं।[७] किन्तु साथ ही मनु ने अन्य आचार्यों का मत देते हुए नियोग से दो पुत्र उत्पन्न करने को भी धर्मसम्मत कहा है।[८] महाभारत में कुन्ती ने स्पष्ट कहा— 'नियोग द्वारा तीन से अधिक पुत्र उत्पन्न करने वाली स्त्री पुंश्चली होती है।'[९]

---

१. महाभारत १.९९.२. ब्राह्मणो गुणवान् कश्चित् धनेनोपनिमन्त्र्यताम्।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत् प्रजाः॥
२. मनुस्मृति ९.६०. विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।
याoस्मृo १.६८. घृताभ्यक्तः
३. महाभारत १.९९.४२-४३.
४. याoस्मृo १.६९. आ गर्भसम्भवाद्गच्छेत्।
५. मoस्मृo ९.६२. विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तयातां परस्परम्॥
६. गौoधo २.९.८. नातिद्वितीयम्
गौoधo २.९.८. पर हरदत्त – प्रथममपत्यमतीत्य द्वितीयं न जनयेत्।
७. मoस्मृo ९.६०. एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथञ्चन।
८. मoस्मृo ९.६१. द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः।
अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः॥
९. महाभारत १.११४.६५. नातश्चतुर्थं प्रसवमापत्स्वपि वदन्त्युत।
अतः परं स्वैरिणी स्याद् बन्धकी पञ्चमे भवेद्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नियोग के लिए उपर्युक्त नियमों का विधान करके ही सूत्रकार सन्तुष्ट नहीं हुए हैं। नियमों का उल्लंघन करने पर दण्ड का विधान भी किया गया है। याज्ञवल्क्य ने विधान किया कि गर्भाधान के पश्चात् भी सहवास करने वाला नियुक्त पुरुष पतित हो जाता है।[१] मनु ने कहा कि 'नियुक्त होने पर भी यदि आपत्तिकाल के बिना ही सहवास हो तो स्त्री पुरुष दोनों ही पतित हो जाते हैं।'[२] इसके अतिरिक्त 'नियुक्त जो नियमों का त्याग करके काम भावना के वशीभूत होकर सहवास करते हैं, वे पुत्रवधू सम्भोग अथवा गुरुपत्नी सम्भोग के पापी होते हैं।'[३] नारद एवं मनु ने इस प्रकार उत्पन्न पुत्र को जारज कहा, और उससे सम्पत्ति का अधिकार छीन लिया। 'नियुक्त स्त्री में भी विधिहीन रूप से उत्पन्न किया गया पुत्र पितृधन का अधिकारी नहीं होता क्योंकि वह पतित से उत्पन्न हुआ है।'[४] नारद ने यह भी व्यवस्था दी कि यदि स्त्री पुरुष नियोग के नियमों के प्रतिकूल आचरण करें तो राजा उन दोनों को दण्डित करे।[५]

नियोग से उत्पन्न पुत्र :

नियुक्त पुरुष द्वारा स्त्री में जो पुत्र उत्पन्न किया जाता है, वह किसका पुत्र होता है? —यह प्रश्न यद्यपि उठना नहीं चाहिए, क्योंकि नियोग का मूल प्रयोजन ही पति के लिए सन्तानोत्पत्ति है, तथापि कुछ सूत्रकारों ने इस प्रश्न का भी उत्तर दिया है। इस सम्बन्ध में परस्पर मतैक्य भी नहीं पाया जाता। इस समस्या के तीन समाधान हो सकते हैं, और हर समाधान का समर्थन किसी न किसी सूत्र या स्मृति ने किया है। गौतम एवं वसिष्ठ ने तीनों समाधानों का उल्लेख किया है।[६]

(१) **उत्पन्न पुत्र पति का है :** गौतम ने व्यवस्था दी कि यदि स्त्री का पति जीवित है और पति ने स्वयं रुग्ण अथवा नपुंसक होने के कारण पुरुष नियुक्त करके पुत्र उत्पन्न कराया है तो पुत्र पति का ही होता है।[७] पति के मर जाने पर भी यदि गुरुजनों ने पहले ही निश्चय करके तब विधवा से नियुक्त पुत्र उत्पन्न कराया हो, तब भी पुत्र मृत पति का ही होता है।[८] याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने भी इसका समर्थन किया कि नियुक्त पुरुष यदि स्वयं पुत्रवान् हो तो नियोग से उत्पन्न पुत्र पति का ही होता है।[९] महाभारत में भी गुरुजनों द्वारा नियुक्त व्यास से

---

१. या०स्मृ० १.६८. आ गर्भसम्भवाद् गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेद्।

२. म०स्मृ० ९.५८. पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि।

३. म०स्मृ० ९.६३. नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ॥

४. म०स्मृ० ९.१४४. नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः।
नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः॥

५. ना०स्मृ १२.८५-८६.

६. व०ध० १७.८, १७.९., गौ०ध० २.९.९-१३.

७. गौ०ध० २.९.११. जीवतश्च क्षेत्रे।

८. गौ०ध० २.९.१०. समयादन्यस्य।

९. या०स्मृ० २.१२७. पर विज्ञानेश्वर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्पन्न पुत्र विधवा के पति के ही कहलाए।[1] दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदीय मन्त्र को उद्धृत करते हुए यह व्यवस्था दी है कि यदि विधवा गुरुजनों के कहने से अपने लिए नियोग करती है तो पुत्र विधवा के पति का ही होता है।[2]

(२) **उत्पन्न पुत्र नियुक्त पुरुष का है :** निरुक्तकार ने ऋग्वेद के मन्त्र का उद्धरण देते हुए इस मत का समर्थन किया है कि नियोग से उत्पन्न पुत्र बीजी अर्थात् नियुक्त पुरुष का होता है।[3] गौतम ने भी इस मत का उल्लेख किया है।[4] आपस्तम्ब ने स्पष्टतः विधान किया कि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार पुत्र उत्पन्न करने वाले पुरुष का ही होता है।'[5] आपस्तम्ब ने बौधायन द्वारा उद्धृत एक वैदिक गाथा का भी उदाहरण दिया है कि 'पितृलोक में पुत्र उत्पन्न करने वाले का ही होता है। मृत्यु के बाद वीर्यदाता पिता पुत्र को लेकर यम के घर जाता है, इसीलिए लोग दूसरे व्यक्तियों के वीर्य पड़ने की आशंका से पत्नियों की सावधानी पूर्वक रक्षा करते हैं।'[6] मनु की स्थिति इस समस्या में बड़ी विचित्र है। वे नियोग का विधान भी करते हैं फिर भी नियोग से उत्पन्न पुत्र को बीजी पिता का ही मानते हैं – 'पुत्र जिसके वीर्य से उत्पन्न होता है, उसी का होता है दूसरे का नहीं।'[7] महाभारत में भी इस प्रकार के उदाहरण प्राप्त होते है जहाँ उत्पन्न पुत्र अपने वीर्यदाता पिता का ही कहलाया है। उनमें एक विशिष्टता अवश्य है। यदि नियुक्त की गई स्त्री नियुक्त पुरुष के पास स्वयं न जाकर किसी अन्य स्त्री को चुपचाप भेज दे तो उस अनियुक्ता स्त्री से उत्पन्न पुत्र नियुक्त पुरुष का होता था। व्यास द्वारा प्रथम नियोग में अम्बिका के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह अन्धा था, अतः सत्यवती ने अम्बिका को दूसरी बार समागम के लिए प्रेरित किया। किन्तु अम्बिका ने सास की आज्ञा नहीं मानी और व्यास के कुत्सित रूप और गन्ध के कारण स्वयं न जाकर एक दासी को व्यास के पास समागम के लिए भेज दिया।[8] वह दासी अनियुक्ता थी अतः उससे उत्पन्न विदुर व्यास के ही पुत्र कहलाए, विचित्रवीर्य के नहीं।[9] इसी प्रकार महाभारत में ऋषि दीर्घतमा का आख्यान प्राप्त होता है। पुत्रों द्वारा नदी में फेंके गए दीर्घतमा को राजा बलि ने बचाया और अपनी पत्नी सुदेष्णा से नियोग द्वारा एक पुत्र उत्पन्न करने की

---

१. महाभारत १.१००........

२. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश – चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ ७१
तथा उसी पृष्ठ पर उद्धृत ऋग्वेद १०.१८.८.

३. ऋ०वे० ७.४.७-८. पर आधारित निरुक्त ३.१-३.

४. गौ०ध० २.९.९. जनयितुरपत्यम्

५. आप०ध० २.६.१३.५. उत्पादयितुः पुत्र इति हि ब्राह्मणम्।

६. आप०ध० २.६.१३.५. पर उद्धृत बौ०ध० २.२.३४-३५
इदानीमहमीर्ष्यामि स्त्रीणां जनक नो पुरा।
यतो यमस्य सदने जनयितुः पुत्रमब्रुवन्॥
रेतोधाः पुत्रं नयति परेत्य यमसादने।
तस्माद्भार्यां रक्ष्यन्ति बिभ्यन्तः पररेतसः॥

७. म०स्मृ० ९.१८१. यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु।

८. महाभारत १.१००.२१-२३.

९. महाभारत १.१००.२७. स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रार्थना की। सुदेष्णा ने ऋषि को वृद्ध और अन्ध देखकर अपनी दासी को भेज दिया स्वयं, ऋषि के पास नहीं गई। ऋषि ने उस दासी से कक्षीवान् आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए। राजा ने जब उन पुत्रों की पितृता के सम्बन्ध में पूछा तब ऋषि ने यही कहा 'ये पुत्र मेरे हैं। तुम्हारे द्वारा नियुक्त तुम्हारी पत्नी मेरे पास नहीं आई अत: अनियुक्ता स्त्री से उत्पन्न पुत्र मेरे हैं तुम्हारे नहीं।'[1] दयानन्द सरस्वती के अनुसार यदि नियुक्त पुरुष पहले से ही तय कर ले तो पुत्र उसी का होता है।[2]

(३) **उत्पन्न पुत्र नियुक्त पुरुष और पति दोनों का है** : कुछ सूत्रकारों ने यह भी व्यवस्था दी है कि नियोग से उत्पन्न पुत्र दोनों पिताओं का होता है। नारद इसी मत के समर्थक हैं।[3] गौतम ने भी इस का उल्लेख किया है।[4] बौधायन एवं याज्ञवल्क्य ने इस मत का समर्थन करते हुए नियम स्थापित किया कि 'नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र दो पिता वाला होता है, वह पुत्र दोनों पिताओं से उत्तराधिकार का धन प्राप्त करता है और धर्मानुसार दो गोत्र का होकर दोनों ही पिताओं को पिण्डदान करता है।'[5] मनु ने खेत और बीज का उदाहरण देते हुए परोक्ष रूप में इसी मत का समर्थन किया है।[6]

नियोग की निन्दा एवं क्रमश: ह्रास :

सूत्रों, स्मृतियों एवं महाभारत में स्पष्ट रूप से पाई जाने वाली यह नियोग प्रथा ईसा पूर्व तीसरी शती तक तो सामान्यत: प्रचलित रही[7], किन्तु पातिव्रत्य का आदर्श जटिल एवं रूढ़ होते जाने के साथ-साथ इस प्रथा की बहुत आलोचना की जाने लगी। आपस्तम्ब ने नियोग प्रथा की बहुत निन्दा की। आपस्तम्ब के अनुसार नियोग से उत्पन्न पुत्र वीर्यदाता पिता का होता है[8] अत: नियोग प्रथा की कोई आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि पुत्रोत्पत्ति और वंशवृद्धि का मूल प्रयोजन ही खण्डित हो जाता है और स्त्री के पति को कोई लाभ नही होता। आपस्तम्ब ने यह भी कहा कि

---

१. महाभारत १.९८.१८-२८.
　　१.९८.२८- शूद्रयोनौ मया हीमे जाता: काक्षीवदादय: ।।
　महाभारत १.९८.२९. अन्धं वृद्धं च मां मत्वा सुदेष्णा महिषी तव।
　　अवमन्य ददौ मूढा शूद्रां धात्रेयिकां हि मे ।।

२. दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थ प्रकाश – चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ ७१.

३. ना०स्मृ० १२.५८.

४. गौ०ध० २.९.१३. द्वयोर्वा।

५. बौ० ध० २. २. १८-१९ स एष द्विपिता द्विगोत्रश्च
　　द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति ।। द्विपितुः पिण्डदाने
　　स्यात्…………।

　या० स्मृ० २.१२७ अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादित: सुत:।
　　उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मत: ।।

६. म० स्मृ० ९.५३ क्रियाऽभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते।
　　तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ।।

७. अल्तेकर, ए० एस० – पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन-पृष्ठ १४६

८. आप० ध० २.६.१३.५.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

'यद्यपि पहले नियोग प्रथा प्रचलित थी, किन्तु उस समय उन ऋषियों के अत्यधिक तेजस्वी होने के कारण उनका कर्म पापकर्म नहीं होता था। किन्तु अब उनके कर्मों का अनुसरण करने वाला व्यक्ति पापी होता है।'[१] आपस्तम्ब ने नियोग को निषिद्ध बताते हुए कारण भी दिया कि अब मनुष्यों को अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं रहा अतः 'इन्द्रियदुर्बलता के कारण अब नियोग निषिद्ध है।'[२] 'नियोग द्वारा पुत्र प्राप्त करने की अपेक्षा वैवाहिक पवित्रता का निर्वाह करने से परलोक में प्राप्य फल श्रेयस्कर है।'[३]

नियोग के सम्बन्ध में मनु के विचार सर्वाधिक विरोधाभासी हैं। मनु ने नियोग की व्यवस्था भी की है[४], नियोग की भरपूर निन्दा भी की है[५], और नियोग से उत्पन्न पुत्र के लिए उत्तराधिकार में प्राप्त धन का नियम भी बनाया है।[६] बृहस्पति ने मनु की इन परस्पर विरोधी उक्तियों का विवेचन करते हुए लिखा है—'मनु ने प्रथम नियोग का वर्णन करके इसे निषिद्ध किया है, इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में लोगों में तपबल एवं ज्ञान था, अतः वे नियमों का पालन तथैव कर सकते थे किन्तु द्वापर और कलियुगों में शक्ति एवं बल का ह्रास हो गया है अतः वे नियोग के नियमों का पालन करने में असमर्थ हैं।'[७]

वसिष्ठ ने भी नियोग प्रथा को निषिद्ध ठहराया है। वसिष्ठ के अनुसार भाई का पुत्र अथवा सपत्नी का पुत्र अपने ही पुत्र के समान होता है अतः नियोग से पुत्रोत्पत्ति करना प्रयोजन रहित है।[८]

उपयुक्त धर्मसूत्रकारों द्वारा नियोग के निषेध किए जाने के कई कारण प्राप्त होते हैं—

निषेध के कारण

(१) वैदिक उपदेशों और ब्राह्मण धर्म की प्रभुता के साथ साथ समाज में संन्यास की प्रवृत्ति क्रमशः बढ़ती जा रही थी। नियोग का विचार मात्र भी इस त्याग प्रवृत्ति के विपरीत था।

(२) वैवाहिक पवित्रता एवं पारिवारिक शान्ति की दृष्टि से यह नियोग प्रथा हानिकारक थी, क्योंकि परिवार के पुरुष में परिवार की वधुओं के प्रति काम-विचार उत्पन्न हो सकते थे।

---

१. आप० ध० २.६.१३.७-८ दृष्टो धर्मव्यतिक्रमस्साहसं च पूर्वेषाम्।
तेषां तेजोविशेषेण प्रत्यवायो न विद्यते ॥

२. आप० ध० २.१०.२७.४. तदिन्द्रियदौर्बल्याद्विप्रतिपन्नम्।

३. आप० ध० २.१०.२७.७. नियमारम्भणो हि वर्षीयानभ्युदय
एवमारम्भणादपत्यात्।

४. म० स्मृ० ९.५९-६२.

५. म० स्मृ० ९.६४,६८. अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।
ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥

६. म० स्मृ० ९.१२०-१२१,१४५.

७. काणे, पा० वा० धर्मशास्त्र का इतिहास-प्रथम खण्ड-पृष्ठ ३४० पर उद्धृत बृहस्पति

८. व० ध० १७.११,१२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साथ ही विधवा के प्रति परिवार की अन्य वधुएँ सपत्नी द्वेष भी रख सकती थीं।[1] इसलिए नियोग का क्रमशः निषेध हुआ।

(२) परिवार का एक पुरुष यदि पुत्रहीन ही मर जाता है तो नियमानुसार उसके भाग की सम्पत्ति परिवार के अन्य पुरुषों में विभाजित हो जाती है। किन्तु यदि विधवा नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न कर ले तो मृत पति की सम्पत्ति का अधिकारी वह क्षेत्रज पुत्र हो जाता है। अतः आर्थिक लाभ की दृष्टि से परिवार के सदस्यों ने ही स्वयं नियोग को प्रोत्साहन नहीं दिया होगा। दूतवाक्यम् नाटक में दुर्योधन नियोग से उत्पन्न युधिष्ठिर आदि को पाण्डु का पुत्र ही न मानकर उन्हें उत्तराधिकार देने से मना करता है।[2]

इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि विवाह के प्रमुख प्रयोजन पुत्रोत्पत्ति को पूर्ण करने की दृष्टि से जो नियोग प्रथा प्रारम्भ हुई थी, वह प्रथा दाम्पत्य आचरण में पवित्रता पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण और नैतिकता का उच्च मानदण्ड स्थिर होने पर धीरे धीरे निषिद्ध होकर लुप्त हो गई। इसके अतिरिक्त नियोग प्रथा के प्रारम्भ होने का जो एक मनोवैज्ञानिक कारण था कि नपुंसक पति की अतृप्त पत्नी को इस प्रथा के द्वारा गर्भाधान होने तक तृप्ति प्राप्त होती थी--वह कारण भी स्त्री की सामाजिक स्थिति पतित होते जाने के साथ ही समाप्त हो गया, क्योंकि परवर्ती शास्त्रों ने स्त्री को इस योग्य माना ही नहीं कि उसकी कामनाएँ एवं इच्छाएँ भी ध्यान देने योग्य हैं।

---

१. अल्तेकर, ए० एस० – पोज़ीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन-पृष्ठ १४८

२. दूतवाक्यम्, श्लोक २१. वने पितृव्यो मृगयाप्रसंगतः
कृतापराधः मुनिशापमाप्तवान्।
तदा प्रभृत्येव स दारनिस्पृहः
परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दशम अध्याय

पति एवं पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध

अविच्छेद्यत्व
अन्योन्याश्रय
अनुराग एवं सौहार्द्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पति एवं पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते'

(ऋग्वेद १.१६४.२०.)

ऋग्वैदिक मनीषियों ने ब्रह्म एवं जीव के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए उपर्युक्त जिस मन्त्र का उद्घोष किया था, वह अपनी सुन्दर अलंकार-छटा एवं दार्शनिक विवेचना से तो मुग्ध करता ही है – प्रकारान्तर से वही मन्त्र विवाहित स्त्री-पुरुष के उस पुरातन पारस्परिक सम्बन्ध का भी बोध कराता है जो अपने निजी स्वरूप में परम मंगलमय होने के साथ साथ भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ करने वाले आधारभूत स्तम्भों में से एक बन गया। यह स्थूल जगत् स्त्री एवं पुरुष के सूक्ष्म सम्बन्ध के बिना दृष्टिगोचर नहीं होता है। पति एवं पत्नी एक ही डाल पर बैठने वाले दो पक्षी हैं। दोनों में परस्पर सौहार्द एवं प्रेम है। दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध हैं – दोनों ही एक दूसरे के सखा हैं। रथ के दो पहियों की भाँति सृष्टि की धुरी को गतिशील बनाने के लिए दोनों ही परस्पर अनिवार्य हैं। दोनों का आधार—जीवन मरण की समस्त समस्याएँ – भोग्य पदार्थ – वृक्ष की एक ही शाखा से प्राप्त हो जाते हैं। स्त्री पुरुष एक होते हुए भी दो हैं और दो होते हुए भी एक हैं।

अथर्ववेद ने भी यही उद्घोष दूसरे ढंग से किया। 'मननशील सर्वज्ञ ईश्वर ने संकल्प के घर से पत्नी का आह्वान किया, अर्थात् विवाह किया।'[1] पुरुष और प्रकृति के पारस्परिक सम्पर्क से ही इस जगत् का निर्माण हुआ और जब तक इस विश्व की सत्ता विद्यमान है तब तक पुरुष-प्रकृति का संयोग भी अवश्यम्भावी है। स्त्री शक्ति है और पुरुष शक्तिमान्। शक्ति के बिना शक्तिमान् की सत्ता शून्य है और शक्तिमान् के बिना शक्ति का कोई आधार स्थान ही नहीं है। पुरुष के संसर्ग से प्रकृति सब जीवधारियों को सभी विभिन्नताओं, सम्पूर्ण विकारों और गुणों के साथ उत्पन्न करती है। वेदों के ये आलंकारिक वर्णन स्त्री और पुरुष की पारस्परिक स्थिति को पर्याप्त स्पष्ट कर देते हैं। इस विश्व रंगमञ्च के सूत्रधार ने नर और नारी की रचना केवल इसलिए की है जिससे मानव-सृष्टि बनी रहे। पुरुष और प्रकृति का परिवर्तित नाम ही नर और नारी है, जो स्थूल जगत् में विवाह द्वारा संयुक्त होकर पति और पत्नी बनते हैं। पति से रहित पत्नी की स्थिति असम्भव है तो पत्नी के बिना पुरुष का जीवन भी नितान्त नीरस एवं अपूर्ण है। इसी तथ्य को याज्ञवल्क्य ने बृहदारण्यक में दृष्टांत पूर्वक स्पष्ट किया— "यह सब कुछ आत्मा ही था। उसका आकार पुरुष सदृश था। उसने जब इतस्ततः देखा तो अपने अतिरिक्त

---

१. अ० वे० ११.८.१. तन्मन्युर्जायामावहत्संकल्पस्य गृहादधि।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कोई भी दूसरा दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अपने को एकाकी जान कर उसे भय हुआ। पर अन्य सत्ता के बिना भय कैसा – इस विचार ने उसका भय शीघ्र ही दूर कर दिया। पर अकेलेपन के अनुभव के कारण उसे आनन्द की उपलब्धि नहीं हुई। तब उसने एक और की चाहना की। नर-नारी के परस्पर आलिंगन के समय जो अवस्था होती है, वही अवस्था उस आत्मा की भी हुई। उससे अपने को विभक्त किया। उससे पति-पत्नी बने। अतः प्रत्येक अपने ही आधे अंश के समान है।"[1] इस कथा से स्पष्ट है कि पुरुष का आधा अंश पति है और आधा पत्नी। इन दो अंशों के पारस्परिक सम्मिलन से ही पुरुष पूर्ण होता है। शतपथ ब्राह्मण ने भी इसी तथ्य की पुष्टि दूसरे शब्दों में की है – "आत्मा का अर्ध भाग ही जाया (पत्नी) है।'[2] व्यास ने भी स्पष्ट कहा – 'यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान्।" नर-नारी, पति-पत्नी की इस अर्धांग कल्पना से बढ़कर पावन और कोई कल्पना नहीं है। परस्पर भेद-बुद्धि न रहने पर शरीर भिन्नावस्था में वर्तमान रहें तो भी वे सर्वथा और स्पष्टतः अभिन्न रहते हैं। भारतीय मूर्तिकला में शिव को अर्धनारीश्वर-रूप में प्रस्तुत करना किसी एक व्यक्ति की सृजनशील कल्पना मात्र ही नहीं थी, वरन् उसमें युग-युगान्तर से पुष्ट होती हुई भारतीय संस्कृति की यही विशेषता प्रस्फुटित हुई थी जो नर और नारी, पुरुष और स्त्री को पति और पत्नी के रूप में परस्पर अभिन्न, अन्योन्याश्रित एवं सौहार्द युक्त मानती है। इसी अभिन्न स्थिति से परिवार की सुदृढ़ नींव पर प्रशस्त भित्तियां उठा करती है।

परिवार की इकाई में एकत्व से अनुप्राणित पति और पत्नी का मञ्जुल और मंगलमय स्वरूप जिस भाँति सस्कृत साहित्य में वर्णित किया जाकर भारतीय संस्कृति में सुप्रनिष्ठित हुआ, उसके कुछ विशिष्ट गुण हैं। एक दूसरे से अविच्छेद्य सम्बन्ध, पारस्परिक सौहार्द्य एवं सौमनस्य तथा अन्योन्याश्रित भाव – ये तीन गुण उन सबमें प्रमुख परिलक्षित होते हैं।

अविच्छेद्यत्व :

विवाह के उपरांत पति एवं पत्नी का सम्बन्ध सर्वाधिक घनिष्ट सम्बन्ध है। पति-पत्नी दोनों संयुक्त रूप से परिवार का मूल बनते हैं। एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह वे अभिन्न हैं। दोनों के संयुक्त स्वरूप के बीच ही जीवन की सम्पूर्ण धारा अपने परिपूर्ण सौख्य एवं कल्याणपूर्ण सरसता से प्रवाहित होती है। हमारे वैदिक मनीषियों ने पति और पत्नी की उपमा द्युलोक और पृथिवी-लोक से दी थी[3] सूर्य और चन्द्रमा अथवा दिन और रात की भाँति ही पति और पत्नी भी एक दूसरे से अविच्छन्न हैं।[4] विश्वरचना में दोनों का अविच्छेद्य रूप ही समर्थ होता है। सृष्टि के हेतु दोनों का ही आह्वान होता है। एक अकेला अपने सम्पूर्ण स्वरूप में भी आधा है, व्यर्थ है।

---

१. बृहदा० उप० १.४.१-३. आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः।
सोऽनुवीक्ष्य नाऽन्यदात्मनोऽपश्यत् ।........स वै नैव रेमे।
तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्।
स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ परिष्वक्तौ। स
इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्, ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।
तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति ह स्माऽऽह याज्ञवल्क्यः।

२. शत० ब्रा० ५.२.१.१०. अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जायेति।

३. अ० वे० १४.२.७१ अमोहमस्मि सा त्वम् सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै।

४. ऋ० वे० १.११३.७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वैदिक ऋषि ने पति और पत्नी को यही चरम आशीर्वाद दिया था – 'तुम दोनों पति-पत्नी आयुपर्यन्त विवाह के बन्धन में बंधे रहो, कभी एक दूसरे को मत छोड़ो। सारी आयु परस्पर साथ रहो जैसे चक्रवाक दम्पती रहते हैं।'[१] पति एवं पत्नी के हृदय, विचार एवं भावनाएँ सभी ऐसे मिले हुए रहें जैसे विभिन्न जल मिलकर एक हो जाते हैं, फिर पृथक् नहीं होते। विवाह विधि के मन्त्रों में ही पति-पत्नी का यह अविच्छेद्य स्वरूप भली भाँति प्रगट होता है – 'हे विद्वद्गण! आप निश्चित जानें कि प्रसन्नतापूर्वक हम गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिए एक दूसरे को स्वीकार करते हैं। हम दोनों के हृदय जल के समान शान्त और मिले हुए रहेंगे। जैसे प्राणवायु हमको प्रिय है वैसे ही हम दोनों एक दूसरे से प्रसन्न रहेंगे। जैसे धारणकर्त्ता सब में मिल कर जगत् धारण करता है ऐसे ही हम भी एक दूसरे को धारण करेंगे। जैसे उपदेष्टा श्रोताओं से प्रेम करता है ऐसे ही हम दोनों की आत्मा एक दूसरे से दृढ़ प्रेम को धारण करें।'[२]

अथर्ववेद में पति-पत्नी को सौ वर्ष तक के दीर्घजीवन के लिए उत्तम बुद्धि से युक्त होकर जीने का उपदेश है।[३] मनु का कथन है कि पति-पत्नी का व्यवहार ऐसा होना चाहिए जिससे वे परस्पर पृथक् न हों।[४] सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा द्वारा रचित मानव जीवन का कर्त्तव्य और उनकी आत्मा का विकसित रूप यही है कि बेचने अथवा त्यागने से स्त्री एवं पुरुष एक दूसरे से छूटें नहीं।[५] विवाह में कन्या अपने पिता का गोत्र त्याग कर पति का गोत्र अपना लेती है और उसी से कन्या का रक्त सम्बन्ध हो जाता है। यह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि पति और पत्नी में अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

शतपथ ब्राह्मण की एक कथा पति–पत्नी के अविभाज्य सम्बन्ध का निदर्शन करती है। देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार जब रोगियों की खोज में निकले तो उन्होंने देखा कि सुकन्या नामक एक अपरूप रूपवती कन्या का विवाह वृद्ध च्यवन ऋषि से हुआ है। अश्विनीकुमारों ने सुकन्या से अपने साथ चलने को कहा, किन्तु सुकन्या ने उत्तर दिया कि उसके पिता ने एक बार जिसे दे दिया, उसे छोड़कर जाने की वह अधिकारिणी नहीं है। पति के साथ उसका जो सम्बन्ध स्थापित हुआ है उसे नष्ट नहीं किया जा सकता।[६]

---

१. अ०वे० १४.१.२२. इहैव स्तं मा वियौष्टम्।
ऋ०वे० १०.८५.४२
अ०वे० १४.२.६४. चक्रवाकेव दम्पती। विश्वमायुर्व्यश्नुताम्।

२. ऋ०वे० १०.८५.४७. ओम् समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥

३. अ०वे० १४.२.७५.

४. म०स्मृ० ९.१०२-१०३. तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम्॥
........एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः।

५. म०स्मृ० ९.४६. न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते।
एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम्॥

६. शत० ब्रा० ४.१.५.९.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पति–पत्नी के इसी अविच्छेद्य सम्बन्ध के कारण भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार का स्वरूप अतुलनीय एवं अनुपम बना। अनेक गृह्यसूत्रों एवं धर्मसूत्रों ने बहुविवाह प्रथा का इसी कारण निषेध किया था। आपस्तम्ब ने स्पष्ट व्यवस्था दी कि धर्म एवं सन्तति से सम्पन्न पत्नी के रहते दूसरी पत्नी करनी ही नहीं चाहिए।[१] यदि किसी भी दोष या अपराध से वैवाहिक प्रतिज्ञाएँ भंग होती हैं तो पति एवं पत्नी दोनों ही नरक के भागी होते हैं।[२] पर्याप्त विवेकपूर्वक पति–पत्नी के रूप में पारस्परिक वरण कर लेने के बाद फिर विच्छेद के लिए हिन्दू विवाह में कोई स्थान नहीं था। किसी भी शास्त्र या साहित्य ग्रन्थ ने ऐसी अनुमति नहीं दी। पति-पत्नी में विभाजन का कोई स्थान नहीं था।[३] कन्यादान तो केवल एक बार होता है।[४] न तो पति अपनी पत्नी को त्याग सकता है और न ही पत्नी पति को। मरण पर्यन्त पति और पत्नी का सम्बन्ध एक दूसरे से रहता है।[५] यदि कोई पति अपनी पत्नी का त्याग कर दे तो उसके लिए अत्यन्त असम्मानजनक प्रायश्चित का विधान था कि 'गधे का चमड़ा ओढ़ कर प्रतिदिन सात घरों में भिक्षा माँगता हुआ कहे —उस व्यक्ति को भिक्षा दो जिसने अपनी पत्नी का त्याग किया है।[६] उस व्यक्ति को इस प्रकार छह मास व्यतीत करने पड़ते थे। यदि कोई पत्नी अपने पति का त्याग करे तो उसके लिए छह मास तक 'बालकृच्छव्रत का विधान था।[७]

विभिन्न गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों तथा स्मृतिग्रन्थों में जिस प्रकार कहीं भी पति-पत्नी के पारस्परिक विच्छेद का विधान प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार साहित्य ग्रन्थों में भी दम्पति-विच्छेद नहीं मिलता। विवाह तो एक संस्कार है। पति-पत्नी का जीवन ही अपनी नैतिकता और पवित्रता के रूप में समाज को दृढ़ आधार देता था। पति-पत्नी के अविच्छेद्य स्वरूप के विपरीत हमें वाल्मीकि रामायण में दो उल्लेख प्राप्त होते हैं; किन्तु उन दोनों प्रसंगों का पूर्ण विवेचन पहले किया जा चुका है।[८] वस्तुत: उन दोनों प्रसंगों में पत्नी को त्याग देने के पीछे असामान्य कारण थे।

अन्योन्याश्रय सम्बन्ध :

पति–पत्नी का यह पारस्परिक अविच्छेद्य सम्बन्ध दोनों के ही आचरणों पर निर्भर था। पत्नी अपने पति पर सर्वस्व समर्पण करती थी और पति अपनी पत्नी को इहलौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की उन्नति और समृद्धि की नींव – रूपा मानता था। दोनों ही एक दूसरे पर

---

१. आप० ध० २.५.११.१२ धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नान्यां कुर्वीत।

२. आप० ध० २.१०.२७.६.

३. आप० ध० २.६.१४.१६.

४. म० स्मृ० ९.४७ सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥

५. म० स्मृ० ९.१०१ अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिक:।
एष धर्म: समासेन ज्ञेय: स्त्रीपुंसयो: पुन: ॥

६. आप० ध० १.१०.२८.२९

७. आप० ध० १.१०.२८.२०

८. इसी पुस्तक में देखिए--पृष्ठ २७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आश्रित होते हुए एक दूसरे के लिए त्याग करते हुए अपने सौख्य को स्पृहणीय बनाते थे। यह लोकयात्रा पारस्परिक आश्रय के बिना चल ही नहीं सकती है। ताण्ड्य ब्राह्मण ने पति का यही अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रूपक के द्वारा बहुत भली प्रकार समझाया है – "स्वर्ग एवं पृथिवी में पहले एकता थी। किन्तु वे पृथक् पृथक् हो गए। तब उन्होंने कहा – आओ, हम लोग विवाह कर लें। हम लोगों में सहयोग उत्पन्न हो जाए।"[1]

पति-पत्नी का यह अन्योन्याश्रय भाव वैवाहिक मन्त्रों में ही स्पष्टतया उपदिष्ट है। अग्नि को साक्षी बनाकर किया गया धर्मबन्धन दोनों को रथांगनेमि बना देता है। सप्तपदी के सातों वचन जीवन के समस्त भावों को समेट कर पति और पत्नी को एक दूसरे पर आश्रित कर देते हैं। सप्तपदी के सात मन्त्रों को भारतीय मनीषियों ने कितने विचारपूर्वक क्रमशः प्रस्तुत किया होगा, यह उन मन्त्रों से ही स्पष्ट है।[2] पति अपने पुरुषार्थ के द्वारा धनादि अर्जन करके लाए जिससे खरीदे गए अन्नादि को पत्नी सुस्वादु एवं सुपाच्य बना कर परिवार की क्षुधा निवारण करे। अन्नादि से पुष्ट देह द्वारा पति एवं पत्नी तेज एवं बल धारण करें। स्वस्थ एवं तेजस्वी दम्पति धन तथा समृद्धि से परिपूर्ण हों और परस्पर एक दूसरे के सुख की वृद्धि करें। सौख्य, स्वास्थ्य एवं बल से युक्त पति-पत्नी मिल कर सन्तति उत्पन्न करें। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सहवास से सामान्यतया ही गर्भस्थिति हो जाती है, किन्तु स्वस्थ रोगहीन एवं परस्पर अनुरक्त पति-पत्नी जिस सन्तति को जन्म देते हैं, वह दीर्घायु, स्वस्थ, बुद्धिमान् एवं शोभासम्पन्न होती है। सन्तति सम्पन्न पति – पत्नी सभी ऋतुओं में आनुकूल्य धारण करें और एक दूसरे के सखा बनें। सप्तपदी के इन सात वचनों में भी अन्तिम प्रतिज्ञा पति एवं पत्नी के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। पति पत्नी एक दूसरे के सखा हों— यह ऋषि का चरम आशीर्वाद कौर शुभकामना है। सखा या मित्र की परिभाषा बहुत विस्तृत और फिर भी अत्यन्त सूक्ष्म है।

रामायण एवं महाभारत में स्थल स्थल पर पति और पत्नी के इसी सखा, मित्र तथा अन्योन्याश्रित रूप का वर्णन है।[3] रावण के सीता हर ले जाने पर व्याकुल राम ने अपना और सीता का सम्बन्ध कितने सरल और स्पष्ट शब्दों में बताया है—'वैदेही के जीवन के सारे भाव तात्त्विक रूप से मुझमें समाहित थे और मेरे भी सारे ही भाव उस वैदेही में संवेशित हो गए थे।'[4] सीता के प्रति राम के वियोग के कारण चतुर्मुखी थे।[5] महाभारत काल ने इस अन्योन्याश्रय

---

१. ताण्ड्य ब्राह्मण ७.१०.१ इमौ वै लोकौ सहास्तां तौ वियन्तावभूतां
विवाहं विवहावहै सह नावस्त्विति ।

२. आ० गृ० १.५.२०.
इसी पुस्तक में देखिए, पृष्ठ १५१, पाद टिप्पणी।

३. वा० रा०, १.७७.२६—२८; २.१२.६८-६९; २.३७.२३-२४
महाभारत, १.७४.५०-५१; ३.७३.७२; १.७४.७२;१२.१४४.५-६-१२-१७

४. वा० रा० ४.१.५२. मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्वतो विनिवेशितः।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः॥

५. वा० रा० ५.१५.१९ स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंसतः।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्बन्ध की महत्ता को बताने के लिए महाभारत के अनुशासन पर्व का एक सम्पूर्ण छियालीसवाँ अध्याय ही रच डाला।

कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती निधन पर राजा अज़ का जो विलाप चित्रित किया वह युग युगान्तर तक सदैव स्पृहणीय रहेगा – 'इन्दुमती मेरे घर की शोभा थी, गूढ़ कार्यों में मन्त्रणा देने के कारण मेरी मन्त्री थी। पारस्परिक रहस्योद्भेद तथा भोजन पानादि में मेरी सखी थी। ललित कलाओं को ध्यानपूर्वक ग्रहण करने के कारण मेरी प्रिय शिष्या थी। नृशंस मृत्यु ने इन्दुमती को छीनकर मुझसे क्या नहीं छीन लिया ?'[1] अज का यह रुदन एक ऐसे व्यक्ति का रुदन है, जिसका आश्रय भी छिना और आश्रित भी। पति और पत्नी का यही अन्योन्याश्रय भाव जीवन का चरम प्रेय और परम श्रेय दोनों ही है।

'उत्तररामचरितम्' में भवभूति ने राम के मुख से पति-पत्नी के इसी अन्योन्याश्रय रूप दाम्पत्य-भाव की जितनी ललित व्याख्या प्रस्तुत की, वह विश्व साहित्य में भी दुर्लभ है–'सुख-दुख में जो समान रहता है, हर अवस्था में अनुगत रहता है, जहाँ हृदय विश्रान्ति अनुभव करता है, वृद्धावस्था भी जिसके रस को नष्ट नहीं कर पाती, समय क्रम से आवरण हटते जाने पर जो क्रमशः परिणत होकर प्रेमसार रूप में स्थित होता है वह दाम्पत्य का (अनुराग रूप) कल्याण प्रार्थनीय है।'[2] मालती माधव में भी भवभूति ने पति पत्नी के परस्पर आश्रय की व्याख्या अत्यन्त चामत्कारिक ढंग से की है—'आप दोनों यह भली प्रकार समझ लें कि प्रार्थनीय मित्रता, सम्पूर्ण बन्धुता, सारी कामनाएँ यहाँ तक कि सम्पूर्ण जीवन ही—स्त्री के लिए पति है और पति के लिए उसकी धर्मपत्नी।'[3]

पति और पत्नी का पारस्परिक अन्योन्याश्रय भाव बहुत कुछ रथ और उसके पहिए या वीणा और उसके तारों के सदृश है। रथ और पहिए एक दूसरे का आश्रय लेकर ही गतिशील वस्तु की संज्ञा धारण करते हैं और समाज के लिए उपयोगी बनते हैं। पहिए हटा देने से ऊपर का भाग नितान्त अनुपयोगी होकर जड़ सदृश पड़ा रह जाता है; और ऊपर के भाग से अलग होकर पहिए गतिशील होते हुए भी व्यर्थ हो जाते हैं। किसी का कुछ भी उपकार नहीं कर पाते। इसी प्रकार वीणा और उसके तार भी परस्पर आश्रित होकर ही अपनी स्पष्ट मधुर गुञ्जार से श्रोताओं को रससिक्त करते हैं। वीणा के दण्ड एवं तारों को परस्पर पृथक् कर दिया जाए तो तार रहित दण्ड अथवा दण्डरहित तार किसी भी प्रकार अलौकिक संगीत की सृष्टि नहीं कर सकते।

यही स्थिति दम्पति की भी है। सृष्टि के प्रवाह को चिरन्तन बनाए रखने के लिए, समाज

---

१. रघुवंश ८.६७ गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥

२. उ०रा० १.३९. अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते ॥

३. मा०मा० ३.१८. प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा।
स्त्रीणां भर्ता, धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के स्वरूप में उदात्तता और सौख्य प्रवाहित करने के लिए और परिवार में समृद्धि और शान्ति का वातावरण रच देने के लिए पत्नी एवं पति का अन्योन्याश्रित होना नितान्त आवश्यक है।

अनुराग एवं सौहार्द्य :

पति एवं पत्नी में अविच्छिन्नता एवं अन्योन्याश्रय होने के मूल में सौहार्द्य भाव होता है। प्रिय एवं प्रिया का एक दूसरे के दुख से दुखी और एक दूसरे के सुख से सुखी रहना ही सौदार्द्य है। सौहार्द्य ही एकनिष्ठता के भाव को जन्म देता है। वैदिक साहित्य में पति-पत्नी के पारस्परिक सौहार्द्य का भाव सम्बद्ध सूत्रों में सर्वत्र ही व्याप्त है। लौकिक साहित्य का आद्यकाव्य रामायण ही दम्पति के जिस अनुराग पूर्ण सौहार्द्य का वर्णन कर गया, वह भविष्यत् सभी युगों में आदर्श रहेगा। विश्व साहित्य में कहीं भी पति और पत्नी का वह त्याग और प्रणयानुभूति दुर्लभ है। पिता से वनवास की आज्ञा पाकर राम वन चलने के लिए तत्पर हुए तो सीता ने भी साथ ही चलने का आग्रह किया। राम ने वन की भयावहता का वर्णन करके सीता को रोकना चाहा तो सीता ने निष्कपट भाव से अपने प्रणय का, सौहार्द्य का कितना सरल किन्तु मनोमुग्धकारी परिचय दिया–'हे राघव ! आप यदि आज ही दुर्गम वन जा रहे हैं तो मैं मार्ग के कुश कण्टकों को चुनती-कुचलती आपसे आगे आगे चलूँगी।'[1] प्रिय पति के कथन की उपेक्षा नहीं, अपने पक्ष का तर्क पूर्वक आग्रह भी नहीं – केवल अपने प्रणय का, सौहार्द्य का समर्पण मात्र ही सीता के कथन में झलकता है; इसी अनुराग के कारण तो सीता पति के साथ वन जा सकीं। पति एवं पत्नी में यही चरम एकत्व था जिसके वशीभूत हो सीता ने अपमानजनक निर्वासन के बाद भी राम को ही पति रूप में पुनः पुनः पाने की चाहना की थी।[2] सन्तप्त राम ने प्रजानुरंजन के लिए प्रिया सीता को त्यागा अवश्य था, पर वे उस वैदेहसुता को मन से भूल नहीं सके। लक्ष्मण से सीता का सन्देश सुन कर 'राम के नेत्र सहसा ही अश्रुपूर्ण हो गए जैसे पौष मास का चन्द्रमा नीहार वर्षा करता है। कलंक से डरे हुए राम ने मैथिलसुता को घर से निकाला – मन से नहीं।'[3] पति के अपमान से आवेशयुक्त सती ने पिता की यज्ञाग्नि में कूद कर प्राणाहुति दे दी। पत्नी की मृतदेह के प्रति भी शिव ने जो मनोनिवेश प्रदर्शित किया, उसी से आकृष्ट होकर तो पार्वती ने शिव को पति रूप में पाना चाहा;[4] भले ही इसके लिए कितनी भी कठोर तपस्या करनी पड़ी।

भारतीय संस्कृति में पुरुष का स्थान समाज में सदैव ऊँचा रहा, किन्तु पारिवारिक दृष्टि से स्त्री भी पुरुष से रञ्चमात्र कम नहीं है। पति यदि पूजनीय है तो पत्नी भी आदरार्ह है।[5] वे

---

१. वा०रा० २.२७.७ यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव ।
अग्रस्ते गमिष्यामि मृदन्तो कुशकण्टकान् ॥

२. रघुवंश १४.६६. साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥

३. रघुवंश १४.८४. बभूव रामः सहसा सवाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः ।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः ॥

४. कुमारसम्भव ५.२. इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥

५. रघुवंश १०.५५. अर्चिता तस्य कौसल्या………… ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मूर्खजन हैं जो पति और पत्नी में भेद करते हैं। बुद्धिमान् दोनों का समान आदर करते हैं।[१] पति के वियोग में यदि पत्नी एकवेणी, पृथिवी शयन, तैलांगराग का अप्रयोग आदि व्रतपालन करती है,[२] तो पत्नी के वियोग में पति भी उन्मत्त होकर विलाप कर उठता है। सीता वियोग से त्रस्त राम ने जो व्याकुल आचरण किया था उससे पत्थर भी रो दिए थे और वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो गया था।[३] सीता और राम का यह पारस्परिक सौहार्द्य ही था, जिसने पति राम के मन में पत्नी सीता के प्रति अटूट सम्मान का भाव जाग्रत किया था। मात्र जनापवाद से जब राम को मर्यादा पालन हेतु अपनी पत्नी के निर्वासन का आदेश देना पड़ा तब कक्ष से जाते हुए राम ने सोती हुई सीता के तीर्थ-सम चरणों में अश्रुसिक्त प्रणाम किया था।[४] पति-पत्नी के बीच वह अनुराग और सौहार्द ही था जिससे मूर्च्छित राम सीता के स्पर्श मात्र से फिर से चेतनायुक्त हो गए मानो उन पर हरिचन्दन के पत्तों का रस निचोड़ दिया गया हो अथवा चन्द्रमा की शीतल किरणों का द्रव उन पर टपक गया हो।[५] शाकुन्तलम् में कण्व ऋषि ने अपनी पालिता पुत्री को पतिगृह भेजते समय जो आशीर्वचन उपदेश रूप में कहे थे, उनमें भी पति के प्रति सौहार्द्य गुण ही उन्हें अधिक इष्ट था– 'पति के द्वारा कुछ विपरीत आचरण करने पर भी तुम क्रोधयुक्त होकर पति की प्रतिकूल मत होना।'[६]

वस्तुतः पति और पत्नी के बीच प्रणय से सुवासित सौहार्द ही वह चरम प्राप्तव्य गुण है जिसके वशीभूत होकर दम्पती अन्योन्याश्रित हो जाते हैं और उनमें अविच्छेद्यत्व उत्पन्न होता है। संस्कृत साहित्य में पति पत्नी के इसी रूप की घोषणा 'द्वा सुपर्णा……' श्लोक से निनादित होती थी। किन्तु भारतीय संस्कृति का स्वरूप विभिन्न कारणों से ज्यों ज्यों सम्मिश्रित एवं ह्रासोन्मुख होता गया वैसे ही वैसे दम्पती के ये गुण भी कम होते गए। पुरुष ने स्त्री को देवी पद पर अभिषिक्त कर के साहित्य एवं शास्त्रों में तो स्थान दिया पर व्यवहार में स्त्री के प्रति सम्मान कम होता गया। वैदिक युग की पत्नी ने परवर्ती युग की स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च एवं आदरार्ह पद का उपभोग किया था। उस समय पति और पत्नी समान थे। पत्नी यदि साथ नहीं देती थी तो यज्ञ का आधा फल ही नष्ट हो जाता था।[७] पत्नी भले ही ऋतुमती हो गई हो पर तब भी वह स्नानपूर्वक यज्ञ में बैठने की अधिकारिणी थी।[८] पत्नी न होने की स्थिति में श्रद्धा को

---

१. कुमारसम्भव ६.१२. स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम् ।

२. अभि०शा० ७.२१. वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥

३. उ०रा० १.२८. जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥

४. उ०रा० – प्रथम अङ्क – रामः (सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा)
अयं पश्चिमस्ते रामशिरसि पादपङ्कजस्पर्शः । (इति रोदिति)

५. उ०रा० ३.११. आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां,
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः ।

६. अभि०शा० ४.१८. ……पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गतः ।

७. तै०ब्रा० ३.७१.

८. गो०ब्रा० २.२३.४.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पत्नी और सत्य को यजमान रूप माना जाता था।[1] मनु ने यद्यपि परिवर्तित होते हुए युग को अपनी स्मृति में सर्वत्र प्रस्तुत किया पर पत्नी को पति की अर्धांगिनी ही कहा।[2] जब तक समाज में पति एवं पत्नी, पुरुष एवं स्त्री की शिक्षा एवं स्थिति समान रही तब तक वे चक्रवाक-युगल के सदृश माने गए किन्तु बाह्य आक्रमणों और म्लेच्छों के संसर्ग से बहुविवाह की प्रथा प्रचलित हुई और तब कन्या बहुत कम आयु में ही विवाह योग्य मानी जाने लगी। यहीं से परिवार में पत्नी के पद की महत्ता का पतन प्रारम्भ हुआ। सपत्नी की तुलना में पति का साहचर्य एवं प्रेम अधिक प्राप्त करने के लिए उत्कण्ठता स्त्री अपने सहधर्मिणी रूप एवं गौरवमण्डित आसन को छोड़कर चरणानुगामिनी बन गई। संहिता युग की साम्राज्ञी,[3] स्वामिनी,[4] एवं पत्नी[5] उपनिषद् काल तक आते आते भार्या (भरण योग्या) और जाया (पुत्रोत्पत्ति करने वाली) मात्र रह गई।[6]

किन्तु सृष्टि में अर्धांश की यह निम्नतर स्थिति कभी भी वरेण्य नहीं रही। स्त्री एवं पुरुष जब विवाह के द्वारा परस्पर संयुक्त हों तो फिर उनमें विभेद न बचे। दो पात्रों के परस्पर सम्मिलित जल की भांति वे एक रस, एक हृदय और एक प्राण हो जाएँ। तभी प्रकृति और पुरुष, जीव और ब्रह्म की भाँति ही पति और पत्नी भी सृष्टि के अनहद नाद का उपभोग कर सकेंगे।

---

१. ऐ०ब्रा० ७.१०.
२. म०स्मृ० ९.४५.
३. ऋ०वे० १०.८५.४६.
४. अ०वे० १४.१.२०.
५. पाणिनि ४.१.३३. पत्युर्नो यज्ञसंयोगे।
६. बृहदा०उप० ३.४.१; ४.५.१.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपसंहार

संस्कृत साहित्य में विवाह संस्कार के विभिन्न पक्षों का वर्णन एवं विवेचन इससे पूर्व समाप्त किया जा चुका है। विवाह संस्कार के समग्र स्वरूप को संस्कृत साहित्य में खोजने पर कुछ ऐसे निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, जो इस विषय पर नया प्रकाश डालते हैं।

विवाह के जो आठ प्रकार सूत्रों और स्मृतियों में वर्णित किए गए, उनमें अधर्म्य विवाह प्रकारों का कुछ पूर्ववर्ती शास्त्रकारों ने उल्लेख ही नहीं किया – जब कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से वे अधर्म्य विवाह ही इतिहास के क्रम में पहले आते हैं। विवाह प्रकारों की ऐतिहासिकता और प्राचीनता के द्वारा यह तथ्य उद्‌घाटित हुआ कि पहले समाज में माता पिता का अपनी सन्तति पर कोई प्रभुत्व नहीं था, अतः लड़का और लड़की स्वच्छन्द रूप से इच्छानुसार अपने जीवन साथी का चुनाव कर सकते थे। इन दोनों के पारस्परिक प्रणय पर माता पिता अपनी स्वीकृति की मुद्रा लगा देते थे। यह स्वीकृति एक औपचारिक कृत्य मात्र ही थी, क्योंकि यदि माता पिता स्वीकृति नहीं देते थे, तो भी पुरुष कन्या का हरण करके ले जाता था। किन्तु सभ्यता का जैसे-जैसे विकास एवं विस्तार होने लगा, सन्तति-पोषण एवं पालन के फलस्वरूप माता पिता का सन्तति पर अधिकार-स्वीकार बढ़ने लगा। परिवार के विभिन्न कार्यों में उपयोगी कन्या का हरण अथवा प्रणय समाज में अच्छा नहीं माना जाने लगा। कन्या की सेवाओं से वंचित रहने की क्षति को माता पिता वर से धन लेकर पूर्ण करने लगे। सभ्यता और संस्कृति के अधिकाधिक विकसित होते जाने पर सन्तति – विशेषतया कन्या पर माता पिता का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया। तब समाज ने प्रणय अथवा हरण पर आधारित विवाहों को हेय ठहराना प्रारम्भ कर दिया। जीवित प्राणी को धन के बदले दे डालना भी बहुत उच्चकोटि में नहीं माना जाने लगा। इहलोक और परलोक सम्बन्धी मान्यताओं और विचारों के पुष्ट हो जाने पर विश्वास बढ़ता गया कि परिवार के लिए उपयोगी कन्या का दान बिना किसी लोभ के कर देना बहुत श्रेष्ठ है और पुण्य प्राप्त कराता है। इस विश्वास को बढ़ाने में सम्भवतः वर पक्ष का अधिक भाग रहा होगा क्योंकि वधू के लिए धन तो वर पक्ष को ही देना पड़ता था। पाप पुण्य की सीमाएँ बाँध कर वर पक्ष बिना मूल्य के ही वधू को प्राप्त करने लगे। इस तरह क्रमशः अधर्म्य विवाहों से धर्म्य विवाह उत्पन्न और विकसित होते गए।

विवाह में कन्या की आयु भी माता पिता के बढ़ते प्रभाव के सम्मुख घटती चली गई। इतिहास में जो प्रसिद्ध एवं श्रद्धेय नारी पात्र हैं, उनके विवाह प्रसंगों की परवर्ती लोगों ने अपने युगधर्म के अनुकूल व्याख्या करनी प्रारम्भ कर दी और भले ही वे विवाह युवावस्था के रहे हों– उनको बहुत कम आयु के विवाह घोषित किया जाने लगा। अपने स्वर को मुखर करने के लिए काव्यों के पुराने श्लोकों को हटाकर उनमें नवीन स्थापना के अनुकूल नए श्लोक जोड़े जाने लगे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस सम्बन्ध में सीता का उदाहरण उल्लेखनीय है। वाल्मीकि रामायण में स्थल-स्थल पर विवाह के समय सीता की युवावस्था के संकेत हैं, किन्तु कालान्तर में सीता के ही मुँह से कहला कर एक श्लोक में यह प्रतिपादित कर दिया गया कि विवाह के समय सीता छह वर्ष की ही थीं। भवभूति ने यद्यपि वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा अपने राम सम्बन्धी कथानक को पर्याप्त परिवर्तित कर दिया, तथापि अपने समय के प्रवाहानुकूल उन्होंने भी विवाह के समय सीता को शिशु माना। समय के अनुकूल उन्होंने सीता की शिशु अवस्था प्रतिपादित तो की, किन्तु फिर भी अनेक स्थलों पर वे भावावेश में राम-सीता के विवाह के समय युवावस्था का संकेत कर गए।

विवाह विधि के कृत्यों में भी समय के क्रम में बहुत जटिलता आ गई। इस जटिलता से धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव और बन्धन को स्पष्ट पहचाना जा सकता है।

संस्कृत साहित्य में विवाह एक अविच्छेद्य धार्मिक संस्कार के रूप में प्रतिपादित किया गया फिर भी पुरुष के पुनर्विवाह के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है। पुरुष के पुनर्विवाह के लिए जो तर्क दिए गए – वे सारे ही तर्क यद्यपि स्त्री के पुनर्विवाह के लिए भी संगत बैठते हैं तथापि धर्म एवं समाज ने स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं दी है। पितृसत्तात्मक समाज के पुरुष प्रधान होने के कारण समस्त नैतिकता एवं कथित पवित्रता का भार स्त्री को ही वहन करना अनिवार्य बन गया।

नियोग प्रथा के लिए शास्त्रकारों ने यद्यपि अनेक-विधि आधारभूमि प्रस्तुत कीं, तथापि इस प्रथा को स्वीकृति देने का जो मुख्यतम कारण रहा था – उसका उल्लेख करने का साहस किसी ने नहीं किया। पुरुष को तो कामतृप्ति के लिए अनेक विवाहों तक का अधिकार मिला, किन्तु स्त्री में भी काम प्रवृत्ति है और वह काम भावना तृप्ति चाहती है – इस को स्वीकृति नहीं दी गई। नपुंसक पति से अतृप्त स्त्री निश्चय ही अन्य उपायों से अपनी क्षुधा शान्त करती रही होगी; सूत्रकारों ने इसी कारण नियोग प्रथा को मान्यता दी – यद्यपि इसके लिए कारण दूसरे दिए गए। समाज में जैसे जैसे स्त्री की सामाजिक स्थिति पतित होती गई वैसे ही वैसे उससे नियोग का अधिकार छिनता गया और अन्त में समाप्त हो गया।

इस ग्रन्थ के उपर्युक्त निष्कर्ष समाजशास्त्रीय और मानव शास्त्रीय दृष्टियों से तो महत्त्व-पूर्ण हैं ही, साथ ही अपने समाज की अनेक प्रथाओं और विश्वासों के इतिहास और पृष्ठभूमि को जानने के लिए भी इन का महान् उपयोग है। भारतीय हिन्दू समाज आज प्रगति के नए मोड़ पर है। विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क के कारण उसकी मान्यताओं और प्रचलनों में तीव्र उतार-चढ़ाव आ रहे हैं। कहीं कहीं ज्वार भाटा-सा, ज्वालामुखी के विस्फोट का-सा भी अनुभव होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिन्दू विवाह के मूल आदर्श, धार्मिक स्वरूप और अविच्छेद्यत्व को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा जा रहा है। सन्तति और माता पिता के सम्बन्धों में भी परिवर्तन आ रहा है। इन परिवर्तनों को शान्त और समन्वयात्मक रूप से समाज में लागू करने में इस ग्रन्थ के अध्ययन सम्भवतः कुछ सम्बल सिद्ध हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट 'अ'

विभिन्न गृह्यसूत्रों में विवाह विधि के क्रमबद्ध कृत्यों की तालिका

(१) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र

१. मांगलिक दिवस चयन
२. वर प्रेक्षण
३. वधू चयन
४. वधू-रुदन
५. मांगलिक स्नान
६. पाणिग्रहण
७. सप्तपदी
८. अग्निप्रदक्षिणा
९. विवाह होम
१०. अश्मारोहण
११. लाजा-होम
१२. अग्नि प्रदक्षिणा
(१०–१२ तीन बार)
१३. वधू का पतिगृह जाना
१४. देहली (चौखट) लाँघना
१५. वृषभचर्म पर बैठना
१६. वधू-अंक में बालक बैठाना
१७. ध्रुव तथा अरुन्धती दर्शन
१८. त्रिरात्रव्रत
१९. चतुर्थी कर्म

(२) आश्वलायन गृह्यसूत्र

१. मांगलिक दिवस चुनना
२. आज्य होम
३. वर-वधू चयन
४. पाणिग्रहण
५. अग्नि प्रदक्षिणा
६. अश्मारोहण
७. लाजा-होम
८. शिखामुंचन
९. सप्तपदी
१०. वर-वधू अभिषिंचन
११. सौभाग्यवती ब्राह्मणी के घर रात्रिनिवास
१२. ध्रुव-अरुन्धती–सप्तर्षि दर्शन
१३. वधू को पतिगृह ले जाना
१४. वधूरुदन
१५. पतिगृह में वधू स्वागत
१६. वृषभ चर्म पर बैठना
१७. अग्नि होम
१८. त्रिरात्र व्रत
१९. चतुर्थी कर्म
२०. ब्राह्मण को दक्षिणा

(३) खादिर गृह्यसूत्र

१. अग्नि प्रज्वलित करना
२. मांगलिक स्नान
३. वस्त्र पहनाना
४. आज्याहुति महाव्याहृति यज्ञ
५. अश्मारोहण
६. अग्निप्रदक्षिणा
७. लाजाहोम
८. सप्तपदी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

९. पाणिग्रहण
१०. ब्राह्मण के घर रात्रि बिताना
११. ध्रुवदर्शन
१२. अर्घ्यक्रिया
१३. त्रिरात्रव्रत
१४. यज्ञ एवं वधू स्नान
१५. चतुर्थी कर्म

(४) गोभिल गृह्यसूत्र

१. मांगलिक दिवस चुनना
२. वधू चयन
३. मंगल स्नान
४. वस्त्र पहनाना
५. आज्य एवं महाव्याहृति होम
६. अश्मारोहण }
७. लाजाहोम } तीन बार
८. अग्नि प्रदक्षिणा }
९. सप्तपदी
१०. पाणिग्रहण
११. ब्राह्मण गृह में निवास
१२. वृषभ चर्म पर बैठना
१३. ध्रुव–अरुन्धती दर्शन
१४. त्रिरात्र व्रत
१५. स्थाली पाक
१६. आचार्य को दक्षिणा
१७. वधू को पतिगृह ले जाना
१८. वृषभ चर्म पर पुनः बैठना
१९. वधू अंक में बालक बैठाना
२०. आज्याहुति
२१. चतुर्थीकर्म

(५) पारस्कर गृह्यसूत्र

१. मंडप करण
२. मंगलदिवस चयन
३. संमञ्जन
४. कन्यादान
५. परस्पर समीक्षण
६. अग्नि प्रदक्षिणा
७. महाव्याहृति एवं आज्य होम
८. लाजा होम
९. पाणिग्रहण
१०. अश्मारोहण
११. सप्तपदी
१२. सूर्यदर्शन
१३. हृदयस्पर्श
१४. वधू को आशीर्वाद
१५. वृषभ चर्म पर बैठना
१६. आचार्य को दक्षिणा दान
१७. ध्रुव दर्शन
१८. त्रिरात्रव्रत
१९. स्थाली पाक
२०. चतुर्थी कर्म

(६) मानव गृह्यसूत्र

१. शुभ दिवस चयन
२. वधू चयन
३. प्रदान
४. वरागमन पर अर्घ्य दान
५. अलंकरण
६. अग्नि प्रज्वलित करना
७. आचार स्नान एवं वस्त्र ग्रहण
८. होम
९. परस्पर समीक्षण
१०. पाणिग्रहण
११. अश्मारोहण
१२. लाजा होम
१३. सप्तपदी
१४. वधू का वर के घर जाना
१५. वधू अंक में ब्रह्मचारी बिठाना
१६. त्रिरात्र व्रत
१७. चतुर्थी कर्म

(७) बौधायन गृह्यसूत्र

१. वर प्रेक्षण
२. ब्राह्मण भोजन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

३. नान्दीश्राद्ध, विवाह होम
४. वर का वधू गृहागमन
५. परस्पर समीक्षण
६. पाणिग्रहण
७. सप्तपदी
८. अर्घ्य एवं मधुपर्क
९. अलंकरण
१०. अदिति, अनुमति, सरस्वती, सविता तथा प्रजापति को होम
११. हृदय स्पर्श } भिन्न भिन्न मंत्रों द्वारा
१२. हृदय स्पर्श }
१३. पाणिग्रहण
१४. अग्नि प्रदक्षिणा
१५. अश्मारोहण
१६. पुन: अग्नि प्रदक्षिणा
१७. आहुतियाँ
१८. वधू को पतिगृह ले जाना
१९. गृह प्रवेश
२०. वृषभ चर्म पर बैठना
२१. ध्रुव-अरुन्धती-सप्तर्षि दर्शन
२२. त्रिरात्र व्रत
२३. चतुर्थी कर्म

(८) शांखायन गृह्यसूत्र

१. अग्निस्थापना
२. मांगलिक दिवस चुनना
३. वधू चयन
४. वर प्रेक्षण
५. वर द्वारा बलि
६. आज्य एवं महाव्याहृति होम
७. स्त्रियों का नृत्य
८. वधू को वस्त्र पहनाना
९. वर को मधुपर्क
१०. पाणिग्रहण
११. अश्मारोहण
१२. अग्नि प्रदक्षिणा
१३. लाजा होम
१४. सप्तपदी
१५. वधू स्नान
१६. पतिगृह की ओर यात्रा
१७. वृषभ चर्म पर बैठना
१८. वधू अंक में बालक बिठाना
१९. ध्रुव दर्शन
२०. वर-वधू का सम्मिलित भोजन
२१. त्रिरात्र व्रत
२२. चतुर्थी कर्म

(९) हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र

१. वधू चयन
२. मांगलिक दिवस चुनना
३. महाव्याहृति होम
४. विवाह होम
५. अश्मारोहण
६. पाणिग्रहण – तीन बार
७. अग्नि प्रदक्षिणा
८. लाजा होम
९. सप्तपदी
१०. वधू यात्रा
११. चौखट लाँघना
१२. वृषभ चर्म पर बैठना
१३. ध्रुव-अरुन्धती दर्शन
१४. पक्वान्न आहुति
१५. त्रिरात्रव्रत
१६. चतुर्थीकर्म

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर्तमान काल में प्रचलित दो मुख्य विवाह पद्धतियाँ

स्वामी दयानन्द द्वारा संस्कार विधि में वर्णित आर्यसमाजी विवाह विधि :

१. शुभ दिवस चयन
२. वर वधू चयन
३. वर-वधू द्वारा वस्त्र धारण किया जाना
४. ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शांति प्रकरण
५. वधू गृह में वधू द्वारा वर को मधुपर्क आदि दिया जाना
६. वर द्वारा वधू को दो वस्त्र दिया जाना
७. संमञ्जन
८. यज्ञ कुण्ड प्रदक्षिणा
९. आचमनादि करके अग्नि प्रज्वलित करना
१०. आज्याहुति, महाव्याहृति, राष्ट्रभृत एवं जया होम,
११. पाणिग्रहण
१२. अग्नि प्रदक्षिणा
१३. अश्मारोहण
१४. लाजा होम (घृत सहित)
१५. पुनः अग्नि प्रदक्षिणा
१६. शेष लाजाओं का होम
१७. केशमुंचन
१८. सप्तपदी
१९. वधू को आशीर्वाद
२०. ध्रुव-अरुन्धती दर्शन
२१. स्थाली पाक
२२. त्रिरात्रव्रत
२३. चतुर्थी कर्म
२४. वर द्वारा वधू को अपने घर ले जाना
२५. वर के घर में वधू का स्वागत

मुख्यतया पारस्कर गृह्यसूत्र के गदाधर भाष्य पर आधारित सनातनी विवाह विधि :

१. वाग्दान
२. मृदाहरण
३. हरिद्रा लेपन
४. मंडप निर्माण
५. गणपति पूजन
६. नान्दी श्राद्ध
७. घटी स्थापन
८. वर गमन
९. नीराजना
१०. मधुपर्क एवं वर पूजा
११. अग्नि-स्थापन
१२. वधू को वस्त्र पहनाना
१३. संमञ्जन
१४. गोत्रोच्चार
१५. कन्यादान एवं प्रतिग्रहण
१६. परस्पर समीक्षण
१७. अग्नि प्रदक्षिणा
१८. वैवाहिक होम
१९. लाजा होम
२०. पाणिग्रहण
२१. अश्मारोहण
२२. गाथा गान
२३. परिक्रमापूर्वक शेष लाजा होम
२४. अभिषिचन
२५. हृदय स्पर्श
२६. सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा वधू को सिन्दूर लगाना
२७. आचार्य दक्षिणा
२८. त्रिरात्रव्रत
२९. चतुर्थी कर्म
३०. स्थाली पाक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट 'ब'

वैवाहिक होम में आज्याहुति एवं महाव्याहृति

वैवाहिक कृत्यों में होम के अन्तर्गत आज्य एवं महाव्याहृति – ये दो नाम गृह्यसूत्रों में अनेक बार प्रयुक्त होते हैं। अतः यह जान लेना उपयोगी है कि वस्तुतः इन दो नामों का अभिप्राय क्या है ?

आज्य :

घी, दही, दूध अथवा चावल से बनाई गई हव्य सामग्री को यज्ञकर्त्ता मन्त्रपाठ के द्वारा पवित्र करके अपने पास रख लेता है – यही आज्य है। प्रत्येक आज्याहुति के समय इसी आज्य को अग्नि में डाला जाता है।

महाव्याहृति :

प्रणव के साथ साथ जब भूर्, भुवः, स्वः – इन तीनों शब्दों का प्रयोग किया जाता है तब उसे व्याहृति अथवा महाव्याहृति कहा जाता है।[1] अतः वैवाहिक होम में 'ओम् भूर्भुवः स्वः' के साथ साथ मन्त्रपाठ करके जब हव्य सामग्री अग्नि में डाली जाती है, तब उसे महाव्याहृति होम कहते हैं।

वैवाहिक होम के समय अग्न्याधान कर लिए जाने पर वर एवं वधू अग्नि की पश्चिम दिशा में कुशा की चटाई पर बैठ जाते हैं। वर अग्नि में आहुति देते समय वधू का हाथ अपने हाथ में पकड़ लेता है। सभी गृह्यसूत्रों ने विवाह-होम में आज्य एवं महाव्याहृति की व्यवस्था की है। केवल मन्त्रपाठों में भिन्नता है। कुछ गृह्यसूत्र अधिक मंत्रों के साथ आहुतियों का विधान करते हैं,[2] तो कुछ अन्य गृह्यसूत्र कुछ कम मन्त्रों के पाठ का विधान करते हैं।[3]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार ही आज्याहुति एवं महाव्याहृति के साथ-साथ जया एवं राष्ट्रभृत् होम का भी विधान किया है, जो वैवाहिक होम के साथ ही सम्पन्न होता है।[4]

---

१. पा०गृ० १.५. पर गदाधर भाष्य

२. आप०गृ० २.५.२.; मा०गृ० १.१३.

३. हि०गृ० १:१९.७.; पा०गृ० १.५.; खा०गृ० १.३.११.

४. पा०गृ० १.५.
दयानन्द सरस्वती – संस्कार विधि. पृष्ठ १३०-१३५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुस्तक-सूची

संस्कृत ग्रन्थ

अत्रि-स्मृति – स्मृतिसमुच्चय, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावली, पूना द्वितीय संस्करण १९२९.

अथर्ववेद – सायणाचार्य भाष्य सहित, संपा० विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण १९६१.

अभिज्ञान-शाकुन्तलम् – व्या०, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, १९६८.

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र – संपा०, एम० विंटरनित्स वियना १८८७.

आपस्तम्ब धर्मसूत्र – उज्ज्वला वृत्ति सहित, व्या०, डॉ० उमेशचन्द्र पांडेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६९.

आश्वलायन गृह्यसूत्र – हरदत्त व्याख्या सहित, सं०, महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री त्रिवेन्द्रम्, १९२३.

उत्तररामचरितम् – व्या०, तारिणीश झा, रामनारायणलाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, १९६३.

ऋग्वेद – सायण भाष्य सहित, संपा० विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टिट्यूट, होशियारपुर, प्रथम संस्करण १९६१.

ऐतरेय ब्राह्मण – अनुवादक, कीथ, हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज भाग २५, कैम्ब्रिज १९२०.

कामसूत्र – जयमंगला व्याख्या सहित, बम्बई १९३४.

कुमारसम्भव – कालिदास ग्रन्थावली, ज्ञानमण्डल, काशी १९४४.

कौटिल्य-अर्थशास्त्र – अनुवाद सहित, अनुवादक उदयवीर शास्त्री, लाहौर १९२५.

कौषीतकी ब्राह्मण – कलकत्ता, १८९०.

खादिर गृह्यसूत्र – संपा०, ए० महादेव शास्त्री एवं एल० श्रीनिवासाचार्य, मैसूर १९१३.

गीता – गीता प्रेस, गोरखपुर

गोपथ ब्राह्मण – संपा०. राजेन्द्रलाल मित्र एवं एच० विद्याभूषण, कलकत्ता १८७२.

गोभिल गृह्यसूत्र – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९३५.

गौतम धर्मसूत्र – मिताक्षरा सहित – व्याख्याकार उमेशचन्द्र पांडेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६६.

छान्दोग्य उपनिषद् – निर्णय सागर संस्करण, बम्बई १९३०.

जैमिनी गृह्यसूत्र – बड़ौदा ।

ताण्ड्यब्राह्मण – संपा०, ए० वेदान्त वागीश, कलकत्ता १८६९-७४.

तैत्तिरीय आरण्यक – संपा० हरिनारायण आप्टे, पूना १८९८.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तैत्तिरीय उपनिषद् – शांकरभाष्य सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना, पंचम संस्करण १९२९.
तैत्तिरीय ब्राह्मण – संपा०, राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता १८७०.
तैत्तिरीय संहिता – माधव भाष्य सहित, कलकत्ता १८९९.
दक्ष स्मृति – स्मृतिसमुच्चय, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूना, द्वितीय संस्करण १९२९
दश रूपक – व्याख्याकार डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस, १९५५.
दूतवाक्यम् – व्याख्याकर्त्री प्रीतिप्रभा गोयल, गौतम ब्रदर्स, कानपुर।
नारदस्मृति– धर्मशास्त्रसंग्रह, कलकत्ता १८७६
निरुक्त – सं. छज्जूराम शास्त्री तथा अन्य, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली ६., १९६३
नैषधीय चरित– निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९४२.
पराशर स्मृति – अष्टादश स्मृति बम्बई १९२४.
पारस्कर गृह्यसूत्र – हरिहर एवं गदाधर भाष्य समेत, संपा० गोपालशास्त्री नेने, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९२६.
बृहदारण्यक उपनिषद् – शंकराचार्य भाष्यसमेत, अनुवादक स्वामी माधवानन्द अद्वैत आश्रम, कलकत्ता १४. चतुर्थ संस्करण १९६५
बृहद्देवता – संपा० एवं अनुवादक रामकुमार राय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६३
बौधायन धर्मसूत्र – गोविन्द स्वामी भाष्य समेत, सम्पादक ए० चिन्नस्वामी शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९३४.
बौधायन गृह्यसूत्र – संपा. शामशास्त्री, गवर्नमेंट ओरियंटल लाइब्रेरी सीरीज, मैसूर,
भारद्वाज गृह्यसूत्र – बड़ौदा, १९५२.
मनुस्मृति – हिन्दी अनुवादक, श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९५२.
—मेधातिथि भाष्य सहित, कलकत्ता, १९३९
महाभारत – भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना
मानव गृह्यसूत्र – गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा,
मालती माधव – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९६१.
यजुर्वेद – संपा०, श्री राम शर्मा आचार्य, संस्कृतिसंस्थान, बरेली, पंचम संस्करण १९६९.
याज्ञवल्क्य स्मृति – मिताक्षरा सहित, व्याख्याकार डा० उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,
रघुवंश – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९६५.
रत्नावली – चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस १९६९.
लौगाक्षि गृह्यसूत्र – काश्मीर संस्कृत सीरीज,
वसिष्ठ धर्मसूत्र– स्मृति-समुच्चय, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावली, पूना, द्वितीय संस्करण १९२९.
—एस.बी.ई., वाल्यूम १४.
वाल्मीकि रामायण – निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२९.
—लाहौर १९३१
—गीता प्रेस, गौरखपुर
विष्णु धर्मसूत्र – संपा० जूलियस जाली, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस, तृतीय संस्करण १९६२
विष्णु पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर, १९५२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वीरमित्रोदय संस्कारप्रकाश – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९१३
व्यास स्मृति– स्मृति समुच्चय; आनन्दाश्रम संस्कृतग्रंथावली, पूना, द्वितीय संस्करण, १९२९.
शतपथ ब्राह्मण – एस०बी०ई०, वाल्यूम १२, २६, ४१, ४३, ४४
—बम्बई, १९४०
शंख स्मृति – स्मृति समुच्चय, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावली, पूना द्वितीय संस्करण १९२९.
शांखायन गृह्यसूत्र – एस०बी०ई०, वाल्यूम २९.
शातातप स्मृति – स्मृति समुच्चय, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावली, पूना, द्वितीय संस्करण १९२९.
श्रीमद् भागवत – नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, तृतीय आवृत्ति, संवत् १९८४.
स्मृति चन्द्रिका – देवण्णभट्ट, मैसूर १९१४.
स्वप्नवासवदत्तम् – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस १९५५
हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र – एस०बी०ई०, वाल्यूम ३०.

सन्दर्भ ग्रन्थ

अग्रवाल, वासुदेव शरण – पाणिनिकालीन भारतवर्ष, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, प्रथम संस्करण,
अल्तेकर ए० एस० – द पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, तृतीय संस्करण १९६२.
आप्टे, वी० एम० – सोशल एण्ड रिलीजस लाइफ इन द गृह्यसूत्र, पापुलर बुक डिपो, बम्बई, १९५४.
इन्टरनेशलन एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसज वाल्यूम १०, मैकमिलन एंड फ्री प्रेस, १९६८.
एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज, वाल्यूम ९, मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क १९५४.
एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स वाल्यूम ८, एडिनबर्ग, टी. एण्ड टी. क्लार्क १९५८.
इन्द्र – स्टेटस ऑफ वीमेन इन एनशेंट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, १९५५.
उपाध्याय, बी०एस० – इन्डिया इन कालीदास, एस० चांद एंड कम्पनी, १९६८.
उपाध्याय, बी०एस० – वीमेन इन ऋग्वेद, बनारस, प्रथम संस्करण १९४१.
कपाडिया, के०एम०–भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६३.
कपाडिया, के०एम० – हिन्दू किनशिप, पापुलर बुक डिपो, बम्बई, १९४७.
करन्दीकर, एस०वी० – हिन्दू एक्सोगैमी, तारापोरवाला सन्स एंड कम्पनी, बम्बई, १९२९.
काणे, पा०वा० – धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, १९६५.
कीथ – द रिलीजन एंड फिलासफी आफ वेद, लन्दन १९२५,
कुमारस्वामी, आनन्द – डान्स आफ शिव, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५६.
कोलब्रुक, जेम्स सी० – एबनार्मल साइकोलोजी, तारापोरवाला संस एन्ड कम्पनी. बम्बई,
गुप्त, सुधीरकुमार – संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास, भारती मन्दिर, खुरजा, द्वितीय संस्करण १९५६
ज्ञानी, शिवदत्त – वेदकालीन समाज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६७.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घुरे, जी०एस० – फैमिली एंड किन, पापुलर बुक डिपो, बम्बई, १९६२.

जायल, शाकम्भरी – द स्टेटस ग्राफ वीमेन इन एपिक्स, मोतीलाल बनारसीदास, १९६६.

जायसवाल, के०पी० – मनु एंड याज्ञवल्क्य, कलकत्ता १९३०.

दयानन्द सरस्वती – ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं संस्कार विधि, शताब्दी संस्करण, द्वितीय भाग, ग्रजमेर, प्रथम ग्रावृत्ति १९२५.

दयानन्द सरस्वती – सत्यार्थप्रकाश, ग्रजमेर १९५४.

डुबोइस, एबे.जे.ए. – हिन्दू मैनर्स कस्टम्स एन्ड सेरेमनीज, ग्राक्सफोर्ड, १९५६.

पांडेय, राजबली– हिन्दू संस्कार, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६६.

प्रभु, पी०एन० – हिन्दू सोशल ग्रारगनाइजेशन, पापुलर प्रकाशन, बम्बई, १९५४.

फतहसिंह – वैदिक दर्शन, संस्कृति सदन, कोटा, प्रथम संस्करण

बनर्जी, जी०डी० – हिन्दू ला ग्रॉफ मैरिज एण्ड स्त्रीधन, कलकत्ता, १९२३.

भट्टाचार्य, सुखमय – महाभारत कालीन समाज लोक भारती प्रकाशन, १९६६.

मायने, जान डी० – ए ट्रीटाइस ग्रान हिन्दू लॉ एण्ड यूसेज मद्रास, १९३९.

मित्र, वेद – हैप्पी मैरिड लाइफ इन एनशेण्ट इण्डिया, ग्रार्य बुक डिपो, १९६५.

मुकर्जी ग्रार०के० – हिन्दू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

मुकर्जी ग्रार०के० – द होराइजन ग्रॉफ मैरिज, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, १९५७.

मैक्डॉनल एण्ड कीथ – वैदिक इण्डेक्स – हिन्दी ग्रनुवादक – राम कुमार रॉय, चौखम्बा विद्याभवन, प्रथम संस्करण १९६२.

मैक्समूलर – सेलेक्टेड एसेज – ग्रॉक्सफोर्ड,

मोनियर विलियम्स – इण्डियन विजडम, लन्दन, चतुर्थ संस्करण १९३६.

राव, रघुनाथ – ग्रार्यन मैरिज, मद्रास.

वेदालंकार, हरिदत्त – हिन्दू परिवार मीमांसा, सरस्वती सदन, मसूरी, १९६३.

वेस्टरमार्क – हिस्ट्री ग्रॉफ ह्यूमन मैरिज, मैकमिलन, लन्दन, पञ्चम संस्करण १९२१.

वैदिक एज – विद्याभवन, बम्बई

व्यास एस.एन. – इण्डिया इन द रामायन एज, ग्रात्माराम एण्ड सन्स. दिल्ली, १९६७.

सेनगुप्ता, नीलाक्षी – इवोल्यूशन ग्रॉफ हिन्दू मैरिज, पापुलर प्रकाशन, बम्बई, १९६५.

सेनगुप्ता एन.सी – इवोल्यूशन ग्रॉफ एनशेण्ट इण्डियन लॉ, कलकत्ता १९१४.

सेक्रेड बुक्स ग्रॉफ ईस्ट–सम्पादक मैक्समूलर–वाल्यूम २९,३०,१२,२९,३०,१२,१४,२६,४१,४३,४४.

सौरेन्सन – इंडेक्स टु द नेम्स इन द महाभारत, लन्दन, १९०४-१९२५.

पत्रिकाएँ

भारतीय विद्या, बम्बई ।

एनल्स ग्रॉफ भण्डारकर ग्रोरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना ।

प्रोसीडिंग्ज ग्रॉफ ग्राल इण्डिया ग्रोरियंटल कान्फ्रेंस ।

कोष ग्रन्थ

ग्रमर कोष,

वाचस्पत्यम्

शब्द कल्पद्रुम

इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी—मोनियर विलियम्स

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सन्दर्भ अनुक्रमणिका

(अ)

अत्रि स्मृति : ९७.

अथर्ववेद : ९ १६, १७, २०, २१, २५, २७, ३१, ४७, ७५, ९६, ९८, ११४, ११५, ११७, ११९ १२३, १२६, १२७, १३४, १३६, १४२, १५३-१५५, १६१, १६७, १६८, १९१-१९३, १९९.

अभिज्ञान शाकुन्तलम् : ४, २३, ३३-३५, ५८, ५९, ८५, ११४, ११९, १९८,

अमरकोश : ९९.

अष्टाध्यायी : २९, १९९.

(आ)

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : २५, ४४, ७७, १००, १०१, ११२, १२०, १३८, १४२, १४५, १४९, १५०, १५५.

आपस्तम्ब धर्मसूत्र : २, ७, ३५, ४३, ५०, ५४, ५६, ७९, ८४, ८५, ११४, ११९, १६१, १६२, १६४, १६५, १७७, १८५-१८७, १९४.

आयुर्विज्ञान : ९५, ९७.

आश्वलायन गृह्यसूत्र : ४२, ४५, ५०, ५४, ५७, ७७, १००, ११९, १२२, १३७-१३९, १४१, १४५, १४६, १४८-१५२, १५४-१५६, १९५.

(इ)

इण्डियन लॉ : ४२, ४७.

इण्डिया इन कालिदास : ४८, ५५.

इण्डिया इन द रामायन एज : ५१.

इवॉल्यूशन ऑफ हिन्दू मैरिज : १३८, १३९.

इवॉल्यूशन ऑफ एनशेण्ट इण्डियन लॉ : ४२, ४७.

(उ)

उत्तररामचरितम् : २३, २९, ३३, ९३, १०४, १४९, १९६, १९८

(ऋ)

ऋग्वेद : ३, ९, १५-१७, २१, २३, २४, २६, २७, ३०, ३१, ३५, ४१, ५४, ६३, ६४, ६८, ६९, ७३-७८, ८५, ९४-९६, ९८, १०५, ११७, ११८, १२३, १२६, १२७, १३४-१३६, १३८, १४४-१४८, १५१-१५५, १६१, १६६, १६७, १७७, १८५, १९१-१९३, १९९.

(ए)

एबनार्मल साइकोलोजी : २०.

(ऐ)

ऐतरेय ब्राह्मण : १६, २५, ३१, ३४, ५४, ५८, १६६, १९९.

(क)

कर्पूरमञ्जरी : ८७.

कामसूत्र : ३५, ३६, ४३, ४९-५१, ५७, ५८, ६५, १००, ११८-१२०, १२२, १२३, १२५, १२८, १५५, १६५,

किनशिप यूसेजेज एण्ड द फैमिली आरगनाइजेशन : १६.

कुमारसम्भव : २२, १६, २९, ३४, ४८,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१०२, १३९-१४१, १४३, १४५, १४९, १५०, १५४, १९७, १९८.
कौटिल्य अर्थशास्त्र : ४२, ४४, ४५, ४९, ५६, ६२, १६३, १६४, १६८, १७८.
कौषीतकी ब्राह्मण : ७८.

(ख)

खादिर गृह्यसूत्र : २१, १००, १०१, १४२, १४४, १५६.

(ग)

गीता : ३६.
गोपथ ब्राह्मण : ३२, १९८.
गोभिल गृह्यसूत्र : ७७, ८२, ९८, १०१, १२२, १४२, १४५, १४८, १५१-१५६.
गोभिल स्मृति : २९.
गौतम धर्मसूत्र : २, ४, ३१, ४२, ४३, ४५, ४६, ४९, ५०, ५३, ५६, ६०, ६१, ७०, ७९, ८०, ८३-८५, १०५, ११४, ११७, ११८, १७०, १७८, १८२-१८६.

(छ)

छान्दोग्य उपनिषद् : १९. ७५, ८८.

(ज)

जयमंगला टीका : ३६, १००.
जैमिनी गृह्यसूत्र : ४९, ७७.

(त)

ताण्ड्य ब्राह्मण : ७७, १९५.
तैत्तिरीय आरण्यक : ८.
तैत्तिरीय उपनिषद् : ६, ३१.
तैत्तिरीय ब्राह्मण : २१, २३, २६, २८, ५४, १९८.
तैत्तिरीय संहिता : ६, ७, २९, ५४, ५८, १२५.

(द)

दक्ष स्मृति : १, ३६.
द प्राब्लम ऑफ कालिदास : ४५.
दशकुमार चरित : १२२.
दशरूपक : ३६.
दि आर्यन मैरिज : ९७.
दूतवाक्यम् : १८८.

(ध)

धर्मशास्त्र का इतिहास [प्रथम भाग] : ३१, ४३, ४५-४७, ५३, ५८, ६१-६३, ७८, ८७, ८८, १०५, १०६, १३२, १४५, १४६, १५७, १६७, १६८, १८७.
नारद स्मृति : ४२, ४४, ४५, ४९, ५६, ६०, ८०, १४७, १६८, १८०, १८४, १८६.
निरुक्त : १०, ३२, ४१, ५४, ५६, ७३, ११८, १२६, १७८, १८५.
नैषधीय चरित : ६९.

(प)

पारस्कर गृह्यसूत्र : ३७, ४१, ७७, ८६, ८७, १००, १०१, ११२-११४, ११६, १२२, १३७, १३८, १४०, १४२, १४८, १५०-१५४, १५६.
पाराशर स्मृति : ८०, ९९, १४५.
प्रियदर्शिका : १०४.
पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन : २४, ४४, ४७, ४९, ५६, ५८, ६५, ७५, १०६, १६६; १७६, १७७, १८०, १८६, १८८.

(ब)

बालमभट्टी टीका : ४५.
बृहदारण्यक उपनिषद् : २२, ३५, १९१, १९२, १९९.
बृहद्देवता : ४१, ८५, १२३.
बौधायन गृह्यसूत्र : १४२, १५५, १५६.
बौधायन धर्मसूत्र : २, ४, ६, ७, २१, ४२, ४४, ५०, ५३, ५५, ५६, ६० ६२, ७०, ७९, ८०, ८३, ८६, ९७, १०१, ११२, १३८, १३९, १६२, १६३, १६८, १८२, १८५, १८६.

(भ)

भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार : १०७.
भारद्वाज गृह्यसूत्र : १२०.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(म)

मनुस्मृति : १-३, ५, ७-१०, २८-३०, ३२, ३३, ३५ ३६, ४२-४५, ४९-५१, ५९-६१, ७०, ७७, ७९, ८२, ८५-८८, ९४, ९९, १००, १०४-१०७, १११, ११२, ११६, ११८-१२१, १२४, १२५, १२७, १४८, १५२, १५६, १६२-१६६, १७०, १७१, १७७-१७९, १८१-१८७, १९३, १९४, १९९.

महाभारत : १-७, १०, ११, १७-२१, २४, २६, ३०, ३२-३४, ३६, ३७, ४३, ४४, ४६, ४७, ४९, ५०-५३, ५५-५७, ५९, ६०, ६२, ६४, ६६-७०, ८३, ८६-८९, ९३, ९४, १०१ १०३, १०६, १०७, ११४, ११९,-१२१, १२३-१२८, १३६, १४०-१४२, १४५, १४७-१४९, १५२, १६३, १६६, १६८-१७१, १७६-१८६, १९५.

मानव गृह्यसूत्र : ४२, ९९, १००, ११९, १२४, १२५, १४५, १४६, १४७, १५३.

मालती माधव : ५८, १९६.

मालविकाग्निमित्रम् : ८६.

मिताक्षरा टीका : २, ४६, ८१, १०४, ११२, ११३, ११८, ११९, १२६.

मेघदूत-उत्तरमेघ : ११७.

मेधातिथि भाष्य ; ७९, १७६.

(य)

यजुर्वेद : २७, ८८, ११४.

याज्ञवल्क्य स्मृति : २, २१, २८, २९, ४२, ४४, ४५, ४७, ४९, ५२, ५४, ६०, ७०, ७६, ७७, ८०, ८१, ८४-८७, १०४, १११-११३, ११६-११९, १२४, १२६, १४७, १५२, १६२, १६६, १७०, १७१, १७८, १८१-१८४, १८६.

(र)

रघुवंश : ३, २२, २३, ३२-३४, ४८, ५५, ६०, ६९, १०४, १२०, १४३, १४५, १४९, १५०, १६६, १६७.

रत्नावली : १०४, १२०, १३९,

(ल)

लिंगपुराण : ११३

लौगाक्षि गृह्यसूत्र : ९९.

(व)

वसिष्ठ धर्मसूत्र : २, ५, ४२, ५१, ५३-५५, ६०, ७०, ७७, ७९, ८४, ८५, ८७, ९९' ११७, ११८, १४८, १६२, १६८, १७१, १७५, १८०, १८२, १८४, १८७.

वाजसनेयी संहिता : ८५.

वाल्मीकि रामायण । ४, ७, २०, २१, २६, २७, २९, ३१, ३२, ३४, ४३ ४६, ४८, ५०, ५१, ५४, ५७, ६६-६९, ८६, ९३, १०१-१०३, १०७, ११९, १२१, १२२, १३९-१४२, १४९, १६३, १६६, १६८-१७०, १९४, १९५, १९७.

विष्णु धर्मसूत्र : ५, १०, २८, ३६, ७७, ८४, ८६-८८, १६५, १७१, १८०.

विष्णु पुराण : ९४, १२५, १४२.

विष्णु स्मृति : १२४.

वीमेन इन ऋग्वेद : १७५.

वीरमित्रोदय संस्कारप्रकाश : ४९, ५६, ११३, ११६, १२२, १२५.

वेदकालीन समाज : १०.

वैखानस गृह्यसूत्र : ९९.

वैदिक इन्डेक्स : ७५, १६७, १७६, १७८.

वैदिक कोष : ३८.

वैदिक दर्शन : ९८.

व्यास स्मृति : ४, ३२, ७७, १६२.

(श)

शतपथ ब्राह्मण : ७, ८, १६, १७, २६, २८, ३०, ३१, ५६, ७३, ८२, ८५, ११७, १२०, १६२, १९३.

शबर भाष्य : ४९.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शंख स्मृति : ५.
शातातप स्मृति : ७९, १२२.
शांखायन गृह्यसूत्र : १३८, १३९, १४२. १४३, १४५, १५०, १५४-१५६.
श्रीमद् भागवत : ५२, ६३, ८३, १४१.

(स)

सायण भाष्य : ९६.
सुश्रुत संहिता : ९५.
संस्कार विधि : १०१, १२२, १४४, १५३, १५७.
सत्यार्थ प्रकाश : ७३, ७४, १६७, १७१, १७६-१७८, १८५, १८६.
स्टेट्स ऑफ विमेन इन एपिक्स : ७८, ८८, ८९, १७७, १८१.
स्वप्न वासवदत्तम् : १०३, ११४, १३९, १४०.

(ह)

हर्षचरित : ८६, १०४, १३५.
हिन्दू एक्सोगैमी : ७६-७९, ८२, ८४.
हिन्दू किनशिप : ७५, ७८, ७९, ८१.
हिन्दू परिवार मीमांसा : २४, २५, ३०.
हिन्दू संस्कार : ६६, ८८, १०५, १०८, १२५, १५७.
हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र : ७७, ९८-१०१, १४५.
हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज : १३६, १३८, १८०.
हैप्पी मैरिड लाइफ इन एनशेण्ट इण्डिया : ४७, ५०.

5408

State Museum Library Lucknow

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow